श्रीपाल-रास और जीवन-चरित्र

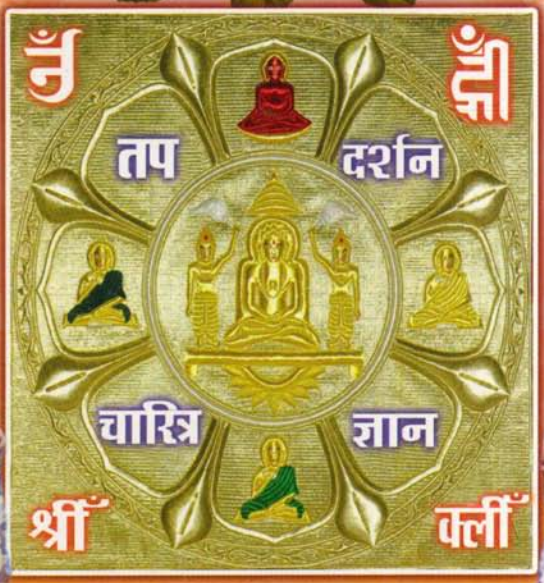

-: लेखक - संपादक :-
पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय
रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा.

परम पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय

रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा. का हिन्दी साहित्य

1. वात्सल्य के महासागर
2. सामायिक सूत्र विवेचना
3. चैत्यवन्दन सूत्र विवेचना
4. आलोचना सूत्र विवेचना
5. श्रावक प्रतिक्रमण सूत्र विवेचना
6. कर्मन् की गत न्यारी
7. आनन्दघन चौबीसी विवेचना
8. मानवता तब महक उठेगी
9. मानवता के दीप जलाएं
10. जिन्दगी जिन्दादिली का नाम है
11. चेतन ! मोहनींद अब त्यागो
12. युवानो ! जागो
13. शांत सुधारस-हिन्दी विवेचना भाग-1
14. शांत सुधारस-हिन्दी विवेचना भाग-2
15. रिमझिम रिमझिम अमृत बरसे
16. मृत्यु की मंगल यात्रा
17. जीवन की मंगल यात्रा
18. महाभारत और हमारी संस्कृति-1
19. महाभारत और हमारी संस्कृति-2
20. तब चमक उठेगी युवा पीढी
21. The Light of Humanity
22. अंखियाँ प्रभुदर्शन की प्यासी
23. युवा चेतना
24. तब आंसू भी मोती बन जाते है
25. शीतल नहीं छाया रे.(गुजराती)
26. युवा संदेश
27. रामायण में संस्कृति का अमर सन्देश-1
28. रामायण में संस्कृति का अमर सन्देश-2
29. श्रावक जीवन-दर्शन
30. जीवन निर्माण
31. The Message for the Youth
32. यौवन-सुरक्षा विशेषांक
33. आनन्द की शोध
34. आग और पानी-भाग-1
35. आग और पानी-भाग-2
36. शत्रुंजय यात्रा (तृतीय आवृत्ति)
37. सवाल आपके जवाब हमारे
38. जैन विज्ञान
39. आहार विज्ञान
40. How to live true life ?
41. भक्ति से मुक्ति (पांचवी आवृत्ति)
42. आओ ! प्रतिक्रमण करे (चौथी आवृत्ति)
43. प्रिय कहानियाँ
44. अध्यात्मयोगी पूज्य गुरुदेव
45. आओ ! श्रावक बने
46. गौतमस्वामी-जंबुस्वामी
47. जैनाचार विशेषांक
48. हंस श्राद्ध व्रत दीपिका
49. कर्म को नहीं शर्म
50. मनोहर कहानियाँ
51. मृत्यु-महोत्सव
52. Chaitya-Vandan Sootra
53. सफलता की सीढ़ियाँ
54. श्रमणाचार विशेषांक
55. विविध-देववंदन (चतुर्थ आवृत्ति)
56. नवपद प्रवचन
57. ऐतिहासिक कहानियाँ
58. तेजस्वी सितारें
59. सन्नारी विशेषांक
60. मिच्छामि दुक्कडम
61. Panch Pratikraman Sootra
62. जीवन ने तुं जीवी जाण (गुजराती)

63. आवो ! वार्ता कहुं (गुजराती)
64. अमृत की बुंदे
65. श्रीपाल मयणा
66. शंका और समाधान भाग-1
67. प्रवचनधारा
68. धरती तीरथ'री
69. क्षमापना
70. भगवान महावीर
71. आओ ! पौषध करें
72. प्रवचन मोती
73. प्रतिक्रमण उपयोगी संग्रह
74. श्रावक कर्तव्य-1
75. श्रावक कर्तव्य-2
76. कर्म नचाए नाच
77. माता-पिता
78. प्रवचन रत्न
79. आओ ! तत्वज्ञान सीखें
80. क्रोध आबाद तो जीवन बरबाद
81. जिनशासन के ज्योतिर्धर
82. आहार : क्यों और कैसे ?
83. महावीर प्रभु का सचित्र जीवन
84. प्रभु दर्शन सुख संपदा
85. भाव श्रावक
86. महान ज्योतिर्धर
87. संतोषी नर-सदा सुखी
88. आओ ! पूजा पढाएँ !
89. शत्रुंजय की गौरव गाथा
90. चिंतन-मोती
91. प्रेरक-कहानियाँ
92. आई वडीलांचे उपकार
93. महासतियों का जीवन संदेश
94. श्रीमद् आनंदघनजी पद विवेचन
95. Duties towards Parents
96. चौदह गुणस्थान
97. पर्युषण अष्टाह्निका प्रवचन
98. मधुर कहानियाँ
99. पारस प्यारो लागे
100. बीसवीं सदी के महान् योगी
101. अमर-वाणी
102. कर्म विज्ञान
103. प्रवचन के बिखरे फूल
104. कल्पसूत्र के हिन्दी प्रवचन
105. आदिनाथ-शांतिनाथ चरित्र
106. ब्रह्मचर्य
107. भाव सामायिक
108. राग म्हणजे आग (मराठी)
109. आओ ! उपधान-पौषध करें !
110. प्रभो ! मन-मंदिर पधारो
111. सरस कहानियाँ
112. महावीर वाणी
113. सदगुरु-उपासना
114. चिंतन रत्न
115. जैन पर्व-प्रवचन
116. नींव के पत्थर
117. विखुरलेले प्रवचन मोती
118. शंका-समाधान भाग-2
119. श्रीमद् प्रेमसूरीश्वरजी
120. भाव-चैत्यवंदन
121. Youth will shine then
122. नव तत्त्व-विवेचन
123. जीव विचार विवेचन
124. भव आलोचना
125. विविध-पूजाएँ
126. गुणवान् बनों
127. तीन-भाष्य
128. विविध-तपमाल
129. महान् चरित्र
130. आओ ! भावयात्रा करें
131. मंगल-स्मरण

132. भाव प्रतिक्रमण-1
133. भाव प्रतिक्रमण-2
134. श्रीपाल-रास और जीवन
135. दंड़क-विवेचन
136. आओ ! पर्युषण-प्रतिक्रमण करें
137. सुखी जीवन की चाबियाँ
138. पांच प्रवचन
139. सज्झायों का स्वाध्याय
140. वैराग्य शतक
141. गुणानुवाद
142. सरल कहानियाँ
143. सुख की खोज
144. आओ संस्कृत सीखें भाग-1
145. आओ संस्कृत सीखें भाग-2
146. आध्यात्मिक पत्र
147. शंका-समाधान (भाग-3)
148. जीवन शणगार प्रवचन
149. प्रात: स्मरणीय महापुरुष (भाग-1)
150. प्रात: स्मरणीय महापुरुष (भाग-2)
151. प्रात: स्मरणीय महासतियाँ (भाग-1)
152. प्रात: स्मरणीय महासतियाँ (भाग-2)
153. ध्यान साधना
154. श्रावक आचार दर्शक
155. अध्यात्माचा सुगंध (मराठी)
156. इन्द्रिय पराजय शतक
157. जैन-शब्द-कोष
158. नया दिन-नया संदेश
159. तीर्थ यात्रा
160. महामंत्र की साधना
161. अजातशत्रु अणगार
162. प्रेरक प्रसंग
163. The way of Metaphysical Life
164. आओ ! प्राकृत सीखें भाग-1
165. आओ ! प्राकृत सीखें भाग-2
166. आओ ! भाव यात्रा करें !! भाग-2
167. Pearls of Preaching
168. नवकार चिंतन
169. आओ ! दुर्ध्यान छोड़े !! भाग-1
170. आओ ! दुर्ध्यान छोड़े !! भाग-2
171. परम-तत्व की साधना भाग-1
172. रत्न-संदेश
172. रत्न-संदेश-भाग-1
173. गागर में सागर
174. रत्न-संदेश-भाग-2
175. My Parents
176. श्रावकाचार-प्रवचन-भाग-1
177. श्रावकाचार-प्रवचन-भाग-2
178. परम तत्त्व की साधना भाग-2
179. परम तत्त्व की साधना भाग-3
180. बाली चातुर्मास विशेषांक
181. उपधान स्मृति विशेषांक
182. नवपद आराधना
183. आत्म-उत्थान का मार्ग-भाग-1
184. हेमचन्द्राचार्य और कुमारपाल
185. आई चे वात्सल्य
186. आत्म-उत्थान का मार्ग-भाग-2
187. जैन संघ-व्यवस्था
188. चौबीस तीर्थंकर चरित्र-भाग-1
189. चौबीस तीर्थंकर चरित्र-भाग-2
190. संस्मरण
191. संबोह-सित्तरि (वैराग्य का अमृत कुंभ)
192. विवेकी बनों !
193. आत्म-उत्थान का मार्ग भाग-3
194. लघु संग्रहणी (जैन भूगोल)
195. समाधि-मृत्यु
196. कर्मग्रंथ भाग-2
197. कर्मग्रंथ भाग-3
198. आदर्श कहानियाँ
199. प्रवचन-वर्षा
200. अमृत रस का प्याला
201. महान् योगी पुरुष
202. बारह-चक्रवर्ती
203. प्रेरक-प्रवचन
204. पाँचवाँ-कर्मग्रंथ
205. छठा-कर्मग्रंथ

श्रीपाल-रास और जीवन-चरित्र

◆ लेखक-संपादक ◆

व्याख्यान वाचस्पति महाराष्ट्र देशोद्धारक पूज्यपाद आचार्यदेव

श्रीमद् विजय रामचंद्रसूरीश्वरजी म.सा. के

तेजस्वी शिष्यरत्न बीसवीं सदी के महान् योगी,

नवकार-विशेषज्ञ, प्रशांतमूर्ति पूज्यपाद पंन्यासप्रवर

श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्य के

कृपापात्र अंतिम शिष्यरत्न, मरुधररत्न, गोडवाड के गौरव,

मरुधररत्न, विपूल हिन्दी साहित्य सर्जक पूज्यपाद आचार्यदेव

श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी महाराज

134

प्रकाशक

दिव्य संदेश प्रकाशन

C/o. सुरेन्द्र जैन, 205, सोना चेम्बर्स,

507-509, जे.अेस.अेस. रोड, चीरा बाजार,

सोनापुर गली के सामने, मरीन लाईन्स (E), मुम्बई-400 002.

Tel. 022-4002 0120, Mobile : 9892069330

आवृत्ति : द्वितीय • मूल्य : 160/- रुपये • विमोचन : दि. 17-2-2019
प्रतियाँ : 1000 • स्थल : वी.वी.पुरम्, बेंगलोर (कर्णाटक)

आजीवन सदस्य योजना

आजीवन सदस्यता शुल्क - 3000/- रु.

- आप जैन धर्म के रहस्य-जैन इतिहास-जैन तत्त्वज्ञान-जैन आचार मार्ग, प्रेरणादायी कथाएँ आदि का अध्ययन करना चाहते हों तो आज ही आप दिव्य संदेश प्रकाशन मुम्बई की आजीवन सदस्यता प्राप्त कर लें। सदस्य बनते ही अध्यात्मयोगी निःस्पृह शिरोमणि स्व. पूज्यपाद पंन्यासप्रवर **श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्यश्री** एवं उन्हीं के चरम शिष्यरत्न प्रवचन प्रभावक परम पूज्य ***आचार्यदेव श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म. सा.*** द्वारा लिखित उपलब्ध 10 पुस्तकें दी जाएगी और **अर्हद् दिव्य संदेश** मासिक तथा भविष्य में हिन्दी भाषा में प्रकाशित पुस्तकें घर बैठे प्राप्त होगी। आप आजीवन सदस्यता शुल्क मुंबई या बैंगलोर के पते पर दिव्य संदेश प्रकाशन-मुंबई के नाम से चैक व ड्राफ्ट से भेजें।

प्राप्ति स्थान

1. चेतन हसमुखलालजी मेहता
भायंदर (M.S.)
M. 9867058940

2. प्रवीण गुरुजी,
C/o. श्री आत्म कमल लब्धिसूरि जैन पुस्तकालय
श्री आदिनाथ जैन टेंपल,
चिकपेठ, बेंगलोर-560 053.
M. 9036810930

3. राहुल वैद,
C/o. अरिहंत मेटल कं.,
4403, लोटन जाट गली,
पहाड़ी धीरज, सदर बाजार,
दिल्ली-110 006.
M. 9810353108

4. चंदन एजन्सीज
मुंबई, M. 9820303451

आजीवन सदस्यता शुल्क

Rs. 3000/- भिजवाने का पता एवं पुस्तक-प्राप्ति-स्थान :

(1) दिव्य संदेश प्रकाशन, C/o. सुरेन्द्र जैन,
205, सोना चेंबर्स, 507-509, जे.अेस.अेस. रोड, चीरा बाजार, सोनापुर गली के सामने, मरीन लाईंस (E), मुंबई-2. **T. 022-40020120**

(2) प्रकाश बड़ोल्ला, 52, 3rd Cross, शंकरमाट रोड, शंकरपुरा, बैंगलोर-560 004. Tel. (O.) 4124 7478 M. 8971230600

गुरुवंदना

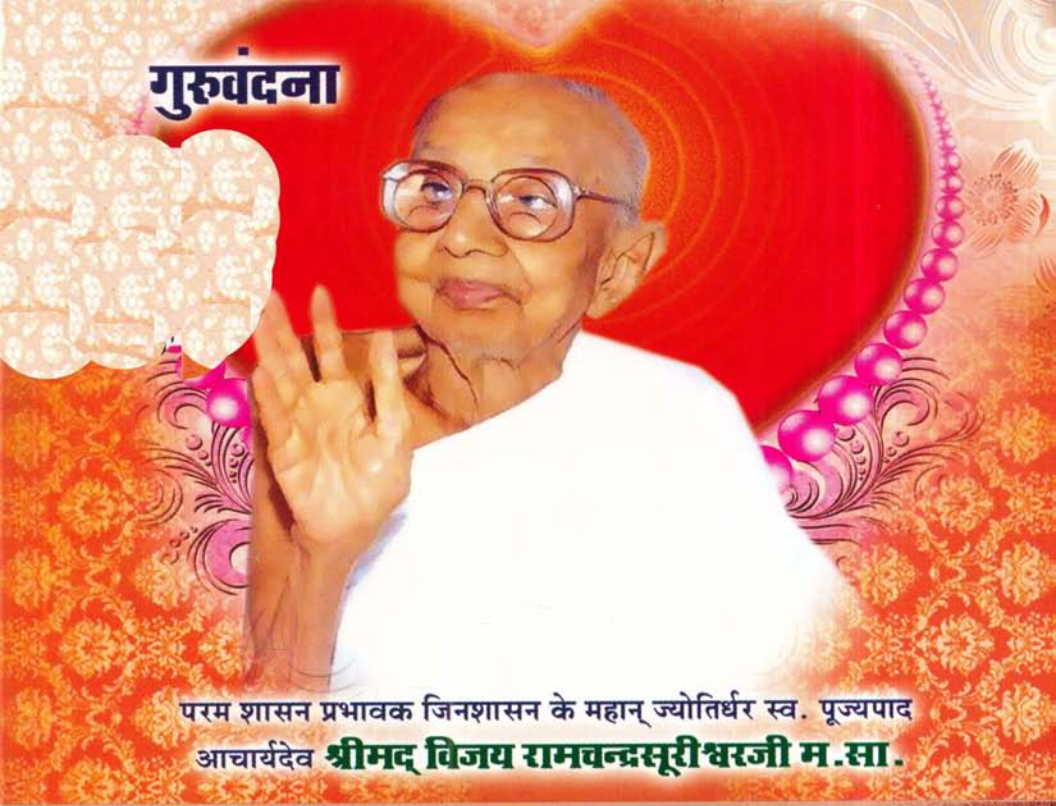

परम शासन प्रभावक जिनशासन के महान् ज्योतिर्धर स्व. पूज्यपाद
आचार्यदेव **श्रीमद् विजय रामचन्द्रसूरीश्वरजी म.सा.**

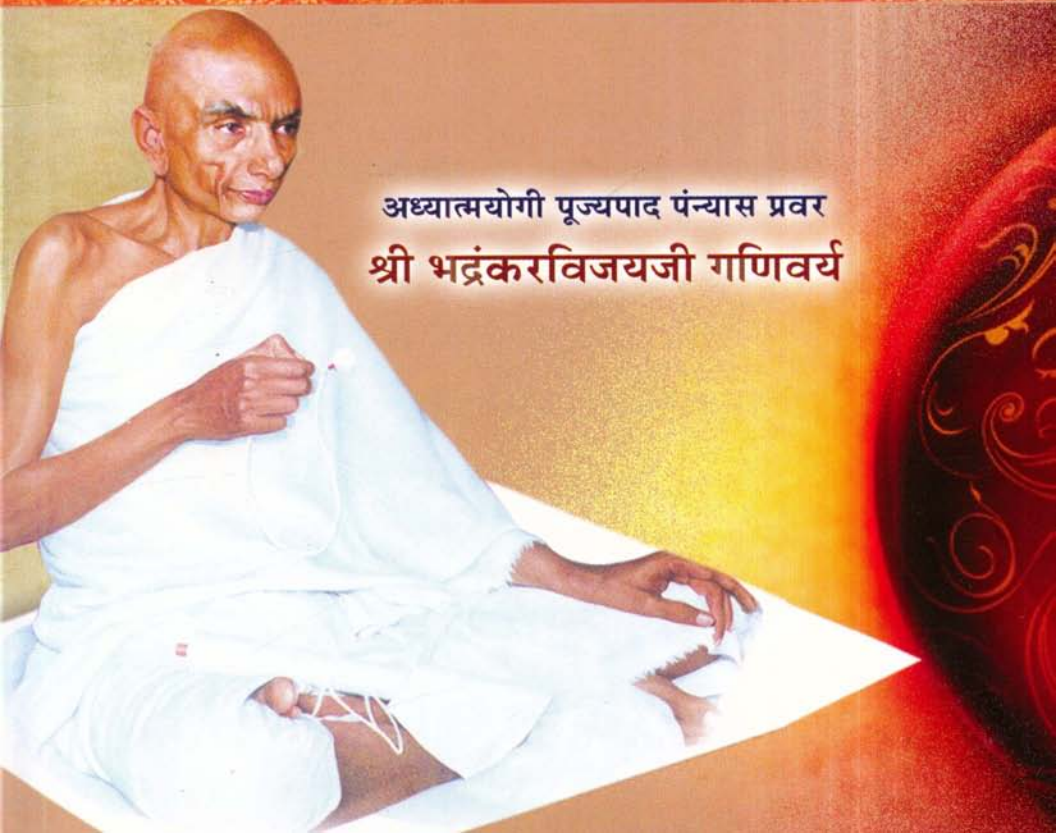

अध्यात्मयोगी पूज्यपाद पंन्यास प्रवर
श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्य

हिन्दी साहित्यकार पू. आचार्यदेव
श्रीमद् विजय **रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा.**

प्रकाशन सहयोगी

प्रवचन प्रभावक मरुधर रत्न आचार्यदेव श्रीमद् विजय
रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा. के सांसारिक
माताजी-पिताजी बाली (राज.) निवासी
के आत्मश्रेयार्थे

स्व. श्री छगनराजजी चौपडा

स्व. श्रीमती चंपाबाई चौपडा

पुत्र-पुत्र वधुएँ : बाबुलालजी-रतनबाई, रमेशकुमारजी-ममताबाई
पौत्र-पौत्र वधुएँ : नरेश-विजीता, भावेश-दीपिका, सचिन-रिंकू
पौत्री-दामाद : अनिता-दिनेशजी सोलंकी, रीटा,
सोनल-जिज्ञेशजी बाफना, शीतल-हितेशजी मेहता
पौत्री : हीर, पल • पौत्र : कल्प, सम्यग्
एवं समस्त चौपडा परिवार, गोरेगांव-भांडुप-बाली

प्रकाशन सहयोगी

स्व. श्रीमती नाथीबाई
गुलाबचन्दजी सालेचा

शा. गुलाबचन्दजी
हुकमाजी सालेचा

स्व. श्रीमती नाथीबाई गुलाबचन्दजी हुकमाजी सालेचा

की पुण्य स्मृति में

शा गुलाबचन्द, सुपुत्र-पुत्रवधु : **राजेशकुमार-भावनादेवी, नरेशकुमार-मीनादेवी**

सुपौत्र : **वेद, अर्हम्, आदि** एवं समस्त **सालेचा परिवार** मरुधर में अमरसर (सरत)

फर्म : **महाशय ग्रुप,** मैसूरु

MAHASHAY
— GROUP —

19/B, Industrial Suburb, 3rd Stage,
Vishweshwara Nagar, Mysuru - 570 008.
Cell : 94801 69641, 98401 69642
e-mail : mahashayparivarsanghyatra@gmail.com

MAHASHAY MARKETING
19/B, Industrial Suburb, Vishweshwaranagar, Mys

MAHASHAY DISTRIBUTORS
D43, Yadavagiri Industria Estate, Mysuru.

MAHASHAY PLYWOOD
19/B, Industrial Suburb, Vishweshwaranagar, Mysuru.

M. CERAZONE
B201, Yadavagiri Industria Estate, Mysuru.

M. CERAMIC STUDIO
3, Industrial Suburb, Vishweshwaranagar, Mysuru.

M. SURFACE
100, Bannimantap A Layout, Industrial Area, Mysuru.

प्रकाशक की कलम से

मरुधररत्न **पू.आचार्यदेव श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा.**के संयम जीवन ने 43 वें वर्ष में मंगल प्रवेश के शुभ दिन ।

अध्यात्म-योगी निःस्पृह शिरोमणि, नमस्कार महामंत्र के अजोड़ साधक प्रशांतमूर्ति पूज्यपाद **पंन्यासप्रवर श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्य** के अंतिम शिष्यरत्न मरुधररत्न, प्रवचन प्रभावक, हिन्दी साहित्यकार **पूज्यपाद आचार्यदेव श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा.** द्वारा हिन्दी भाषा में आलेखित 134वीं पुस्तक **श्रीपाल रास और जीवन** की द्वितीय आवृत्ति प्रकाशन करते हुए हमें अत्यंत ही हर्ष हो रहा है ।

यद्यपि आज से लगभग 20 वर्ष पूर्व पूज्य श्री द्वारा आलेखित **'श्रीपाल-मयणा'** जीवन चरित्र प्रकाशित हो चुका था । परंतु वे प्रतियाँ कभी से अप्राप्य थीं ।

आज से लगभग 300 वर्ष पूर्व पू. महोपाध्याय **श्री विनयविजयजी म.** ने श्रीपाल रास की भी रचना की थी । रास गुजराती भाषा में तो अनेक बार छपा है । परंतु यह रास हिन्दी भाषा में बहुत कम बार छपा है ।

पर्युषण के दिनों में जिस प्रकार सर्वत्र **कल्पसूत्र** का वाचन होता है तो नवपद ओली के दिनों में सर्वत्र नौ आयंबिल के साथ **श्रीपाल और मयणा** के रास का गुंजन होता है । श्रीपाल-मयणा के जीवन-चरित्र के साथ उनका रास भी प्रसिद्ध हो, तो ज्यादा लोगों को रास के आस्वाद का लाभ मिल सकता है, इसी मंगल भावना से पूज्य आचार्यश्री ने श्रीपाल के जीवन के साथ उनके रास का भी संपादन किया है ।

पूज्य आचार्यश्री का साहित्य हिन्दीक्षेत्र में अत्यंत ही लोकप्रिय बना है, हमें आत्मविश्वास है कि पूज्यश्री का यह प्रकाशन भी हिन्दी भाषी क्षेत्र में अतीव उपयोगी सिद्ध होगा ।

लेखक की कलम से

श्रीपाल रास अनुपम काव्य कृति

(काव्य एक-कवि दो)

लेखक : प्रवचन प्रभावक हिन्दी साहित्यकार
पू.आचार्यदेव श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा.

जैन दर्शन के मर्म को समझना हो तो जैन दर्शन में निर्दिष्ट चारों अनुयोगों को जानना-समझना जरूरी है ।

द्रव्यानुयोग-गणितानुयोग के बोध से जैन दर्शन में निर्दिष्ट तात्त्विक पदार्थों का बोध होता है । जैन दर्शन को मान्य विश्व-व्यवस्था, षट् द्रव्यों का स्वरूप, जीव आदि नौ तत्व, राजलोक का प्रमाण, द्वीप-समुद्रों की लंबाई चौड़ाई आदि का बोध होता है ।

चरण-करणानुयोग के माध्यम से जैनों की आचार संहिता का बोध होता है । साधु और श्रावक की दिनचर्या, जीवन शैली का बोध होता है ।

धर्म कथानुयोग के माध्यम से जैन धर्म में निर्दिष्ट आचार मार्ग को अपने जीवन में आत्मसात् करनेवाले तारक तीर्थंकर परमात्मा तथा अन्य महासत्त्वशाली महापुरुष और महासतियों के जीवन चरित्रों का बोध होता है ।

इन चार अनुयोगों को लक्ष्य में रखकर भूतकाल में अनेक महापुरुषों ने सैकड़ों धर्मग्रंथों का सर्जन किया है । इस प्रकार के धर्म ग्रंथों से जैन वाङ्मय भरापूरा है ।

एक समय था संस्कृत और प्राकृत जैनों की अपनी भाषा थी । जैनों की मुख्य भाषा संस्कृत-प्राकृत थी । जैन धर्म के मर्म को समझने के इच्छुक राजा-महाराजा, महामंत्री आदि भी संस्कृत-प्राकृत भाषा का अभ्यास करते थे ।

18 देश के अधिपति सम्राट् कुमारपाल महाराजा, महामंत्रीश्वर वस्तुपाल, तेजपाल आदि ने संस्कृत-प्राकृत का मात्र अभ्यास ही नहीं किया था, उन्होंने संस्कृत भाषा में काव्यों की रचना भी की थी ।

धीरे धीरे समय ने पल्टा खाया और जैन श्रावक संघ में से संस्कृत-भाषा का अभ्यास कम होता गया ।

इसी के फलस्वरूप उसके बाद के महापुरुषों ने गुजराती भाषा में अपनी रचनाएँ प्रारंभ कीं । वर्तमानकाल में जिन मंदिर में जो पूजाएँ पढ़ाई जाती हैं, वे सभी रचनाएँ लगभग 300-400 वर्ष प्राचीन हैं ।

प्रकांड विद्वान्, प्रतिभासंपन्न, न्याय विशारद न्यायाचार्य **पूज्य उपाध्याय प्रवर श्री यशोविजयजी म.** जो लघु हरिभद्र कहलाते हैं, उन्होंने नव्यन्याय की शैली में भी विद्वद् भोग्य अनेक अद्‌भुत ग्रंथों की रचना की है तो साथ में अत्यंत सरल गुजराती भाषा में बालभोग्य शैली में स्तुति, स्तवन व रास आदि की भी रचनाएं की है ।

प्रस्तुत श्रीपाल रास के रचयिता महोपाध्याय **विनयविजयजी म.** तथा महोपाध्याय **श्री यशोविजयजी म.** हैं ।

महोपाध्याय श्री विनयविजयजी म. भी संस्कृत भाषा के प्रकांड विद्वान् और प्रतिभाशाली महापुरुष थे । उन्होंने संस्कृत भाषा में अनेक ग्रंथों की रचना की है ।

1) कल्पसूत्र-सुबोधिका :- वि.सं. 1969 जेठ सुदी 2 के शुभ दिन **पू.उ. श्री विनयविजयजी म.** ने कल्पसूत्र ग्रंथ पर सुबोधिका नाम की टीका पूर्ण की थी । अत्यंत सरल, सुबोध व सरसशैली की रचना इतनी अधिक प्रसिद्ध बनी है कि आज पर्वाधिराज पर्युषण के दिनों में अधिकांश साधु भगवंत इसी सुबोधिका के आधार पर कल्पसूत्र पर प्रवचन करते हैं ।

2) लोकप्रकाश :- विनयविजयजी म. की यह एक अद्‌भुत रचना है । इसके चार भाग हैं । द्रव्यलोक, क्षेत्रलोक, काललोक और भावलोक । ये चार भाग 21000 श्लोक प्रमाण हैं । इन चार भागों में आगम-प्रकरण आदि ग्रंथों के कुल 1308 साक्षी पाठ हैं । इस ग्रंथ की रचना वैशाख सुदी 5 वि.सं. 1708 में पूर्ण हुई थी ।

3) हैम लघु प्रक्रिया :- कलिकाल सर्वज्ञ आचार्य हेमचन्द्रचन्द्राचार्यजी ने संस्कृत भाषा के व्याकरण के रूप में **'सिद्धहेमचन्द्रशब्दानुशासनम्'** की रचना की थी । उसकी छ हजार श्लोक प्रमाण लघुवृत्ति, 18000 श्लोक प्रमाण बृहद्‌वृत्ति तथा 84000 श्लोक प्रमाण बृहद्‌न्यास की भी रचना की थी । **पूज्य विनयविजयजी म.** ने वि.सं. 1710 में साधनिका की शैली में

2500 श्लोक प्रमाण **'हैम लघु प्रक्रिया'** ग्रंथ की रचना की, जो संस्कृत के अभ्यासी विद्यार्थियों के लिए अत्यंत ही उपकारक है ।

4) शांत सुधारस :- आत्मा के अंतरंग आनंद की अनुभूति करने के लिए **पू. विनयविजयजी म.** ने गेय काव्य के रूप में इस अद्‌भुत ग्रंथ की रचना की है । वैराग्य के पोषण के लिए यह एक अद्‌भुत ग्रंथ है । अनित्य आदि 12 भावनाएँ और मैत्री आदि चार भावनाओं से युक्त यह ग्रंथ खूब प्रसिद्ध है ।

इसके सिवाय **पूज्य विनय विजयजी म.** ने जिनसहस्त्र नाम स्तोत्र आदि अनेक ग्रंथों की भी रचनाएँ की हैं ।

गुर्जर काव्य रचनाएँ :– संस्कृत प्राकृत भाषा से अनभिज्ञ आराधकों के हित के लिए **पू. विनयविजयजी म.** ने गुजराती भाषा में अनेक स्तुति-स्तवन एवं सज्झायों की रचनाएँ की हैं । उन्होंने चौबीस भगवान के 24 स्तवन, बीस विहरमान प्रभु के बीस स्तवन भी रचे हैं तो अंतिम आराधना के लिए अति उपयोगी पुण्य प्रकाश के स्तवन की भी रचना की है । इसके सिवाय षड़ावश्यक स्तवन आदि जिन विनति स्तवन, भगवती सूत्र की सज्झाय आदि रचनाएँ भी की हैं ।

पू. उपाध्याय श्री यशोविजयजी म. एवं पू. उपा. श्री विनयविजयजी म.सा. की परस्पर मैत्री

दोनों उपाध्यायजी भगवंत समकालीन थे । **पू. विनय विजयजी म.** दीक्षा पर्याय में बड़े थे तो **पू. यशोविजयजी म.** ज्ञान में बड़े थे ।

पू. यशोविजयजी म. ने **'धर्मपरीक्षा'** नाम का ग्रंथ रचा । उस ग्रंथरचना के साथ उन्होंने पूर्वाचार्य रचित अनेक ग्रंथों के साक्षी-पाठ भी दिए । ग्रंथरचना के बाद उन साक्षी पाठों के मूल स्थानों को शोधकर उनका संग्रह करने का काम **पू. विनयविजयजी म.** को सौंपा गया । यद्यपि उन साक्षी पाठों के मूल स्थानों को शोधकर उनका निर्देश करने का काम सरल नहीं था परंतु परस्पर के मैत्री भाव के कारण **पू. विनयविजयजी म.** ने यह कार्य खूब उत्साह के साथ किया ।

'धर्मपरीक्षा' ग्रंथ की प्रशस्ति में **पू. उपा. श्री यशोविजयजी म.** ने **पू. विनयविजयजी म.** के प्रति कृतज्ञता भाव बतलाते हुए उनके इस कार्य की अनुमोदना भी की है ।

◆ **पू. विनयविजयजी म.** अपनी वृद्धावस्था में सूरत के पास रांदेरगाँव में चातुर्मास बिराजमान थे, उस समय वहाँ के संघ ने पूज्यश्री को सरल-गुजराती भाषा में गेय काव्य के रूप में **'श्रीपाल महाराजा के रास'** की रचना के लिए विनंति की ।

पू. विनयविजयजी म. प्रार्थनाभंग में भीरु थे, अतः संघ की विनंति को ठुकराना उनके लिए मुश्किल था । शारीरिक स्थिति को देखते हुए उन्हें अपने आयुष्य का विश्वास नहीं था । आज तक उन्होंने जो भी रचनाएँ प्रारंभ की थीं, वे सब पूर्ण हुई थीं, परंतु इस बार उनका अंतःकरण साक्षी नहीं भर रहा था । रास की रचना का प्रारंभ होने के बाद रास पूर्ण होगा ही, ऐसा उन्हें आत्मविश्वास नहीं था । अतः उन्होंने कहा `आज तक मेरी कोई भी रचना अधूरी नहीं रही है, अतः यह रचना भी अधूरी तो नहीं रहनी चाहिए । यदि **यशोविजयजी** मेरी अधूरी रचना को पूर्ण करने का वचन दें तो मैं इस रास की रचना का प्रारंभ कर सकता हूँ ।'

रांदेर संघ ने जाकर **पू. विनयविजयजी म.** का संदेश **पू. यशोविजयजी म.** तक पहुँचाया । संघ की भावना को ध्यान में रखकर **पू. यशोविजयजी म.** ने संघ की विनंति स्वीकार की ।

वि.सं. 1737 में रांदेर में **पू. विनयविजयजी म.** ने अत्यंत ही मधुर शैली में श्रीपालरास की रचना का प्रारंभ किया ।

चार खंड रूप इस श्रीपालरास के दो खंड पूरे हो गए । तीसरे खंड की चौथी ढाल की रचना प्रारंभ हुई । कुल 750 गाथाओं की रचना हो चुकी थी ।

रास की रचना में `श्रीपाल वीणावादन के लिए राज सभा में गए हैं और वहां वीणा बजाते समय वीणा के तार टूट गए ।'

`त्रट त्रट तूटे तांत, गया जाए खसी हो लाल,

ते देखी विपरीत सभा सघली हसी हो लाल,

(तृतीय खंड-चौथी ढाल गाथा-20)

अर्थ : राजकुमारों को खुश करने के लिए श्रीपाल ने वीणा के तार खींचे, उसी समय वे तार टूटने लगे-पर्दे दूर हो गए । यह सब विपरीत देख सारी सभा हँसने लगी ।'

इधर श्रीपाल रास की रचना में वीणा के तार टूटने लगे और इधर **विनयविजयजी म.** के शरीर की नसें टूटने लगीं । उनका आयुष्य वहीं पूरा हो गया और वे स्वर्ग सिधार गए ।

इसके बाद इस अधूरी रचना को **पू. यशोविजयजी म.** ने पूर्ण किया । **पू. विनयविजयजी म.** रसिक कवि थे, जब कि **यशोविजयजी म.** तात्त्विक कवि थे । उन्होंने **विनयविजयजी म.** की शैली में रास रचना प्रारंभ की परंतु वे वैसी रचना न कर पाए । आखिर श्रीपाल रास के चौथे खंड को अपनी तात्त्विक शैली में ही पूर्ण किया ।

इस रास की रचना के माध्यम से उन्हें तात्त्विक आत्मानुभूति भी प्राप्त हुई ।

इस प्रकार इस रास की रचना के माध्यम से **महोपाध्याय श्रीमद् यशोविजयजी म.** को भी महान् लाभ प्राप्त हुआ ।

रास की महिमा

पू. यशोविजयजी म. ने रास के अंत में इस रास की महिमा के प्रभाव का वर्णन करते हुए कहा-

'जे भावे ए भणशे गुणशे, तस घर मंगल मालाजी ।'

जो पुण्यशाली नवपद ओली के दिनों में इस रास का मंगल पाठ करेगा, उसके घर पर मंगल की माला का सर्जन होगा...और अनुक्रम से वह शाश्वत-मोक्षपद प्राप्त करेगा ।

कुदरत का संकेत

पू. विनयविजयजी म. ने जब श्रीपालरास की रचना का प्रारंभ किया, तब उनके मुख से उसके मंगलाचरण के रूप में ***'कल्पवेली कवियणतणी'*** के शब्द निकल पड़े । ग्रंथ का प्रारंभ रगण से हो गया जो अपशकुनी माना जाता है । उसके बाद उन्हें भी ख्याल आ गया कि यह ग्रंथरचना पूर्ण नहीं हो पाएगी और आखिर ऐसा ही हुआ ।

चिरंजीवी रचनाएँ

कई कवियों की रचनाएँ ऐसी होती हैं जो उनके जीवन काल में ही भूला दी जाती हैं, जब कि कई कवियों की रचनाएँ उनके अस्तित्व काल में तो प्रसिद्ध होती ही हैं, परंतु उनके स्वर्ग गमन के बाद वे और प्रसिद्ध हो जाती हैं ।

पू. महोपाध्याय विनयविजयजी म. एक विशिष्ट कोटि के पुण्यशाली प्रतिभा संपन्न महापुरुष थे । इसके फलस्वरूप उनकी रचनाएँ भी अत्यंत ही प्रसिद्ध बनी हैं ।

जैसे-पर्वाधिराज के दिनों में उन्हीं की कल्पसूत्र की टीका पढ़ी जाती है तो नवपद ओली के दिनों में उन्हीं के द्वारा विरचित रास घर-घर में गूंजता रहता है ।

'सिद्धारथना रे नंदन विनवुं' उनका अत्यंत ही लोकप्रिय स्तवन है तो मृत्यु की वेला में उन्हीं के द्वारा विरचित **'पुण्य प्रकाश'** का स्तवन पढ़ा जाता है ।

वैराग्य के पोषण के लिए **'शांतसुधारस'** ग्रंथ कंठस्थ किया जाता है तो तत्त्व के अवबोध के लिए उन्हीं के द्वारा विरचित **'लोकप्रकाश ग्रंथ का स्वाध्याय किया जाता है ।'** सिद्ध हैम व्याकरण को अच्छी तरह से समझने के लिए आपने **'लघु हैमप्रक्रिया'** की रचना की । इस प्रकार **महोपाध्याय श्रीमद् विनयविजयजी म.सा.** की सभी रचनाएं अत्यंत ही लोकप्रिय और सुप्रसिद्ध हैं ।

परमोपकारी गुरुदेव अध्यात्मयोगी पूज्य पंन्यास प्रवर
श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्य श्री की असीम
कृपा से ही इस ग्रंथ का आलेखन-संपादन कर पाया हूँ,
इसमें कहीं भी जानते-अजानते
भूल हुई हो तो त्रिविध-त्रिविध

मिच्छा मि दुक्कडम् !

माघ कृष्णा पंचमी, वि.संवत् 2075 **आ. रत्नसेनसूरि**
आराधना भवन, मण्ड़या,

अनुक्रमणिका

क्र. सं.	विषय	पृ. सं.
	नवपद वंदना	1
1.	धर्म-देशना	8
2.	बुद्धि-परीक्षा	11
3.	वर-पसंदगी	18
4.	विदेश-प्रयाण	38
5.	धवलसेठ की दुर्जनता	54
6.	पुण्य-प्रभाव	66
7.	राज्य-प्राप्ति	76
8.	पूर्व-भव	88
9.	नवपद ध्यान	101
	श्रीपाल-मयणा रास	111
	द्वितीय खंड	133
	तीसरा खंड	153
	चौथा खंड	181

ॐ ह्रीँ श्री सिद्धचक्राय नमो नमः

नवपद आराधना विधि

महामंगलकारी श्री नवपदजी की ओली का प्रारंभ करनेवाले को प्रथम आसो मास की ओली से शुरुआत करनी चाहिए । तिथि में क्षय-वृद्धि न हो तो आसो सुद 7 तथा चैत्र सुद 7 से शुरु करें व सुद 15 तक नौ आयंबिल करें। साढ़े चार साल लगातार नौ ओली अवश्य करें ।

ओली दरम्यान नौ दिन में की जाने वाली सामान्य क्रियाएं :–

1. एक प्रहर अथवा चार घड़ी रात बाकी हो तब उठकर मंद स्वर से उपयोगपूर्वक राई प्रतिक्रमण करें ।
2. पद के गुण की संख्या के अनुसार लोगस्स का काउस्सग्ग करें ।
3. लगभग सूर्योदय के समय पडिलेहण करें ।
4. आठ थोय के साथ देववंदन करें ।
5. श्री सिद्धचक्रजी के यंत्र की वासक्षेप से पूजा करें ।
6. अलग-अलग नौ मंदिर अथवा नौ प्रतिमाजी के सामने नौ चैत्यवंदन करें ।
7. गुरुवंदन कर व्याख्यान श्रवण कर पच्चक्खाण करें ।
8. मध्याह्न समय स्वद्रव्य से अष्टप्रकारी पूजा करें ।
9. विधिपूर्वक पच्चक्खाण पार कर निराशंस भाव से आयंबिल करें ।
10. त्रिकाल देववंदन करें ।
11. प्रतिदिन क्रमशः अरिहंतादि पद की 20 माला गिनें ।
12. शाम को गुरु भगवंत के सान्निध्य में प्रतिक्रमण करें ।
13. रात्रि में एक प्रहर बाद संथारा पोरिसी सुनकर संथारे पर शयन करें ।
14. नौ दिन विशुद्ध ब्रह्मचर्य का पालन करें ।

नवपद वंदना

अरिहंत वंदना

करी अतुल आतम बळ वडे, आंतर रिपु निकंदना
दूषण अढारे दूर कर्या, आतम स्वरुपनी नंदना
गुणगण अनंता जेहना, केमे करी य गणाय ना
अरिहंतना शुभ चरणमां, करूँ भावथी हूँ वंदना (1)

केवल लही द्रष्टा बने, सवी द्रव्य खेतर काळना
जाणे बधा भावो छता, तन मन थकी लेपाय ना
विहरे जो वायुनी परे, वसुधातले प्रतिबंध ना
अरिहंतना शुभ चरणमां, करूँ भावथी हूँ वंदना (2)

जे देवनिर्मित समवसरणे, बेसी देता देशना
वाणी अमीय समाणी सुणतां, तृप्ति कदीए थाय ना
चोत्रीश अतिशय शोभतां, पांत्रीस गुण वाणी तणा
अरिहंतना शुभ चरणमां, करूँ भावथी हूँ वंदना (3)

मार्गोपदेशक गुण भलो, व्यसनी सदैव परार्थना
सुरअसुर किन्नर भक्तिभावे, हर्षथी करे अर्चना
जे नामनुं संस्मरण दरित, दूर करे भवभव तणा
अरिहंतना शुभ चरणमां, करूँ भावथी हूँ वंदना (4)

सिद्ध वंदना

लोकाग्रभागे सिद्धशिला, ऊपरे जे बिराजता,
निज पूर्ण केवलज्ञाने, लोकालोकने निहाळता,
आनंद वेदन सुख अनुपम, दुःख तो लवलेश ना,
सवि सिद्धना शुभ चरणमां, करूँ भावथी हूँ वंदना (1)

जे निष्कषायी नाथ, निर्मोही निराकारी सदा
अविनाशी अकल, अरूपवंती आत्मगुणनी संपदा
निर्मुक्त जे वळी नित्य, देहातीत निजरूप रंजना
सवि सिद्धना शुभ चरणमां, करूँ भावथी हूँ वंदना (2)

कदी जायना एवा सुखोना, स्वामी सिद्ध जिनेश्वरो
क्षय थायना एवो खजानो, भोगवे परमेश्वरो
रिद्धि अने सिद्धि अनंती, जेहनी करे सेवना
सवि सिद्धना शुभ चरणमां, करूँ भावथी हूँ वंदना (3)

घाती अघाती कर्म जे, साथी अनादिकाळना
तेने करी चकचूर स्वामि, जे थया निज भावना
अक्षय स्थिति शाश्वत सुखो, भोक्ता महा साम्राज्यना
सवि सिद्धना शुभ चरणमां, करूँ भावथी हूँ वंदना (4)

आचार्य वंदना

परमेष्ठिना त्रीजा पदे जे, स्थान पावन पामता
छत्रीस गुणोने धारता, षड् शत्रुगण निवारता
वहेता व्रतोना भारने, करता स्व-परनी सारणा
आचार्यना शुभ चरणमां, करूँ भावथी हूँ वंदना (1)

धुरी जे जिनशासन, तणा देता मधुरी देशना
प्रतिबोधता भवि लोकने, जे भावता शुभ भावना
शासन प्रभावक जे कह्या, नेता चतुर्विध संघना
आचार्यना शुभ चरणमां, करूँ भावथी हूँ वंदना (2)

गीतार्थता जेने वरी, व्यवहार कुशलता भरी
भाख्या जे तीर्थंकर समां, शास्त्रोतणा ज्ञानेश्वरी
जयकार शासननो करे, पालक सदा जिन आणना
आचार्यना शुभ चरणमां, करूँ भावथी हूँ वंदना (3)

ज्ञानादि पंचाचार जे, पाले पलावे हेतथी
साधु तथा समुदायनुं, करे योग-क्षेम विवेकथी
तोलीने लाभालाभ जे, रक्षक बने श्री संघना
आचार्यना शुभ चरणमां, करूँ भावथी हूँ वंदना (4)

उपाध्याय वंदना

शासन तणा उद्यानने, लीलुडु नित जे राखता
चोथे पदे जे अलंकर्या, नील वरण कांतिसु राजता

पोते भणे परने भणावे, भंडार गुण विनय तणा
उपाध्यायना शुभ चरणमां, करूँ भावथी हूँ वंदना (1)

शास्त्रोतणा गूढार्थभेदो, बुद्धिबलथी खोलता
जे सारथी समुदायना, सन्मार्गने संस्थापता
अज्ञानना अंधारपट, उलेचता शिशुवृंदना
उपाध्यायना शुभ चरणमां, करूँ भावथी हूँ वंदना (2)

शासन तणा साम्राज्यना, महामंत्रीपद पर राजता
जे पद तणा संस्मरणथी, मंदो सुपावे प्राज्ञता
उपयोगवंत प्रधान जयणा, भाव भीरु पापना
उपाध्यायना शुभ चरणमां, करूँ भावथी हूँ वंदना (3)

जे गुप्तरत्न निधान सम, पच्चीस गुणे करी ओपता
गच्छने चलावे पण सूरिनी, आण कदीए न लोपता
करे सारणा क'दी वारणा, नित चोयणा प्रतिचोयणा
उपाध्यायना शुभ चरणमां, करूँ भावथी हूँ वंदना (4)

साधु वंदना

तजी मात तात स्वजन संबंधी, प्यारा सौ परिवारने
मुकी माया ने ममता नठारी, स्वार्थ भर्या संसारने
करे साधना एकांतमां, एक पूर्ण पदनी झंखना
ए श्रमणना शुभ चरणमां, करूँ भावथी हूँ वंदना (1)

तप त्यागने स्वाध्यायमां, तल्लीन जे निशदिन रहे
उपसर्ग ने परिषह तणी, वणझार जे हंसता सहे
दशविध साधु धर्मनी, करे भावथी आराधना
ए श्रमणना शुभ चरणमां, करूँ भावथी हूँ वंदना (2)

तलवार धार समा महाव्रत, पालता जे आकरा
नैष्ठिक ब्रह्मे राचता, सवि जीवना जे आसरा
वर हेमनी परे ओपता, सेतु सकल कल्याणना
ए श्रमणना शुभ चरणमां, करूँ भावथी हूँ वंदना (3)

साधे जे निरतिचार, पाँच महाव्रतोना योगने
जे वासी-चंदन कल्प ना, वांछे सुरादि भोगने
इच्छे प्रशंसा न कदी, निंदक प्रति पण द्वेष ना
ए श्रमणना शुभ चरणमां, करूँ भावथी हूँ वंदना (4)

सम्यग् दर्शन वंदना

मारा प्रभुए जे प्ररूप्युं, ते ज साचु एक छे
ते सत्य छे निःशंक छे, ते प्राण छे आधार छे
श्रद्धा खडग जेवी अडग, मुज अंतरे हो स्थापना
दर्शन तणा शुभ चरणमां, करूँ भावथी हूँ वंदना (1)

छोने चमत्कारो बताडे, देवताओ भलभला
तोडी शके ना कोई मुज, श्रद्धा तणी शुभ श्रृंखला
समकितधारी श्राविका, सुलसाना गुण कहेवाय ना
दर्शन तणा शुभ चरणमां, करूँ भावथी हूँ वंदना (2)

जे बीज छे शिवपदतणुं, सडसठ विभेदे वर्णव्युं
क्षयोपशम क्षायिक उपशम, दृष्टि निर्मळता भर्युं
जेनुं अनुपम स्थान छद्दे, पदे श्री सिद्धचक्रना
दर्शन तणा शुभ चरणमां, करूँ भावथी हूँ वंदना (3)

तनथी रहे संसारमां, पण मोक्षमां मनडुं रमे
तप त्याग संयम भावना, जेनी रगरगमा रमे
उत्कृष्ट छासठ सागरूनी, स्थिति होवे खंडना
दर्शन तणा शुभ चरणमां, करूँ भावथी हूँ वंदना (4)

सम्यक् ज्ञान वंदना

कर्मो खपावी घातीया, केवळ लही प्रभु शुभ समे
खोले खजानो गूढ हितकर, मोह मिथ्या तम शमे
आपे त्रिपद गणधारने, करे चौद पूरव सर्जना
सज्ज्ञानना शुभ चरणमां, करूँ भावथी हूँ वंदना (1)

छे शास्त्र 'दीपक' सारीखा, मोहांधकार घने वने
छे शास्त्र दिवादांडी सम, मिथ्या महोदधि तारणे

पद पद परम पावन शुचि, अनेकांतवाद निदर्शना
सज्ज्ञानना शुभचरणमां, करूँ भावथी हूँ वंदना (2)

आतम स्वरूपने शोधवा, सज्ज्ञान छे साचो सखा
स्व-पर प्रकाशक जे कह्युं, आत्मिक गुण अमुलखा
मति-श्रुत-अवधिज्ञान, मन-केवल विभेदो ज्ञानना
सज्ज्ञानना शुभचरणमां, करूँ भावथी हूँ वंदना (3)

ज्ञानी खपावे चीकणा, कर्मो जे श्वासोश्वासमां
ते क्रोडो वर्षे ना छुटे, अज्ञानना अंधारमां
ज्ञाने हीणा पशु सम कह्या, किस्या कहुं गुण ज्ञानना ?
सज्ज्ञानना शुभचरणमां, करूँ भावथी हूँ वंदना (4)

सम्यक् चारित्र वंदना

चारित्रमोह विनाशथी, भविजन सुसंयम पामता
इन्द्रिय नोइन्द्रिय दमी, आतमविशुद्धि धारता
छे पंचसमिति गुप्तित्रय, अष्ट मातनी ज्यां सेवना
चारित्रना शुभ चरणमां, करूँ भावथी हूँ वंदना (1)

चारित्र छे तलवारनी, धारा समु व्रत आकरूं
आज्ञा तणी आराधना, दुष्कर छतां गुण आगरूं
मननी करी विलीनता, गीतार्थ गुरु समुपासना
चारित्रना शुभ चरणमां, करूँ भावथी हूँ वंदना (2)

वसवुं गुरुकुळवासमां, आतम समर्पित भावथी
प्रतिश्रोत वहेवुं खंतथी, इच्छाऽऽदिना निरोधथी
ज्यां चौद राज तणा जीवोने, छे अभयनी घोषणा
चारित्रना शुभ चरणमां, करूँ भावथी हूँ वंदना (3)

पाल्या अनंता द्रव्य चारित्रो, छतां भव ना शम्या
पलवार संयम भावथी, पाळी परमपद उपन्या
छे राजमारग आ ज एक, ज अन्य को शिवपंथ ना
चारित्रना शुभ चरणमां, करूँ भावथी हूँ वंदना (4)

तोडे निकाचित घाती घन, कर्मो तणा समुदायने
कुवासना कुविकार सघळा, दूर करे कुसंस्कारने
आधि उपाधिने व्याधिओ, जेनो करे संगाथ ना
ते तप तणा शुभ चरणमां, करूँ भावथी हूँ वंदना (1)

धातु तपावे तन तणी, कुविचार धारा मनतणी
करी शुद्धि आ जीवनतणी, पहोंचाडतो शिवपथभणी
बाह्य अभ्यंतर बार भेदो, शास्त्रमां छे जेहना
ते तप तणा शुभ चरणमां, करूँ भावथी हूँ वंदना (2)

जे थया कृतकृत्य ते, तीर्थंकरो पण तप तपे
दीक्षा सुकेवळज्ञान ने, निर्वाण काळे अघ खपे
इच्छित आपे विघन, कापे दुरित द्वंद्व निकंदना
ते तप तणा शुभ चरणमां, करूँ भावथी हूँ वंदना (3)

संवत्सरी वर्षा लगे प्रभु, ऋषभजी ए तप कर्यो
महावीर प्रभु षड् मास करी, उपवास निर्जल संचर्यो
पचास भेदे जे करावे, सकाम निर्जरा साधना
ते तप तणा शुभ चरणमां, करूँ भावथी हूँ वंदना (4)

1 धर्म-देशना

जंबुद्वीप ! भरतक्षेत्र !! मगध देश !!!

राजगृही नगरी ! श्रेणिक महाराजा !

मगध देश के सम्राट् श्रेणिक महाराज के नंदा, चेलना, धारिणी आदि अनेक रानियाँ थीं ।

नंदा रानी ने बुद्धिनिधान अभयकुमार को जन्म दिया था । अभयकुमार चारों प्रकार की (वैनयिकी, पारिणामिकी, औत्पत्तिकी और कार्मिकी) बुद्धि का भंडार था ।

परमात्मा महावीर प्रभु का परम भक्त श्रेणिक महाराजा न्याय और नीतिपूर्वक प्रजा का पालन करता था । प्रभु महावीर स्वामी के प्रति उसके दिल में अनन्य भक्ति थी ।

पृथ्वीतल को पावन करते हुए अनेक भव्य जीवों को प्रतिबोध देते हुए भगवान महावीर प्रभु राजगृही नगरी के निकट क्षेत्र में पधारे ।

राजगृही नगरवासियों को धर्मबोध देने के लिए महावीर प्रभु ने अपने प्रथम शिष्यरत्न गणधर गौतमस्वामी को राजगृही नगर में जाने के लिए आज्ञा प्रदान की । महावीर प्रभु की आज्ञा को शिरोधार्य कर विनयमूर्ति गौतमस्वामी भगवंत राजगृही नगरी में पधारे ।

श्रेणिक महाराजा को जैसे ही गौतमस्वामी भगवंत के आगमन के समाचार मिले, उनका हृदय खुशी के मारे झूम उठा । गौतम स्वामी प्रभु के दर्शन और उनकी धर्मदेशना का अमीपान करने के लिए श्रेणिक महाराजा अपने विशाल परिवार के साथ आडंबरपूर्वक नगर के बाह्य उद्यान में पहुँच गये ।

पाँच अभिगम (सचित्त त्याग, अचित्तग्रहण, उत्तरासन, अंजलिबद्ध प्रणाम और प्रणिधान) पूर्वक गौतमस्वामी भगवान को तीन प्रदक्षिणा (सम्यग् दर्शन, ज्ञान और चारित्र की प्राप्ति के लिए) देकर वे उचित स्थान पर बैठ गये ।

उस समय परोपकार में तल्लीन गौतम स्वामी भगवंत ने मेघ के समान अत्यंत गंभीर स्वर से धर्मदेशना प्रारंभ की-

'हे महानुभावो ! इस अनादिकालीन संसार में परिभ्रमण कर रही आत्मा को मनुष्यभव की प्राप्ति अत्यंत ही दुर्लभ है । महान् पुण्योदय के बिना मनुष्यजन्म की प्राप्ति नहीं होती है । मनुष्यजन्म की प्राप्ति के बाद भी आर्यदेश, उत्तम कुल की प्राप्ति होना अत्यंत कठिन है । आर्यदेश आदि सामग्री मिलने के बाद वीतराग देव, निर्ग्रंथ गुरु और केवली प्ररूपित धर्म-सामग्री की प्राप्ति होना अत्यंत ही दुर्लभ है ।

सुदेव, सुगुरु और सुधर्म की सामग्री मिलने मात्र से ही व्यक्ति सद्धर्म की आराधना नहीं कर पाता है । सद्धर्म की आराधना के लिए अनुकूल सामग्री मिलने के बाद भी आत्मा प्रमाद के वशीभूत होकर सब कुछ हार जाती है । मद्य, विषय, कषाय, निद्रा और विकथा रूपी प्रमाद जीव को धर्म आराधना में विघ्न पैदा करते हैं । अतः मुमुक्षु आत्मा को इन पाँचों प्रकार के प्रमाद का त्याग कर सद्धर्म की आराधना के लिए विशेष प्रयत्न करना चाहिए ।

जिनेश्वर भगवंतों ने धन की मूर्च्छा उतारने के लिए दान धर्म बतलाया है, अतः दान देते समय अधिक धन पाने की लालसा नहीं होनी चाहिए, बल्कि **'मेरी आत्मा में धन के प्रति जो आसक्ति है, वह दूर हो'** यही भाव होना चाहिए ।

पाँचों इन्द्रियों के विषय-सुखों की मूर्च्छा दूर करने के लिए शील धर्म बतलाया है । शील धर्म के पालन के फलस्वरूप मनुष्यभव और देवलोक संबंधी विषय-सुखों को पाने की इच्छा नहीं होनी चाहिए । विषय संबंधी सुख तो आत्मा को संसार में भटकाने वाले हैं, अतः उन सुखों को पाने की लालसा नहीं होनी चाहिए, बल्कि 'मेरी आत्मा इन विषय-सुखों में विरक्त बने और मैं जल्दी ही आत्मा के मूलभूत स्वभाव के परम सुख का अनुभव करूँ, यही भावना शील धर्म का पालन करते समय अंतरात्मा में रहनी चाहिए ।

आहार की आसक्तियों को तोड़ने के लिए और रसनेन्द्रिय पर विजय पाने के लिए जिनेश्वर भगवंतों ने तप धर्म बतलाया है । तप का उद्देश्य इच्छाओं पर नियंत्रण पाना है, अतः इसी भावना से तप धर्म की आराधना करनी चाहिए, न कि इस लोक या परलोक संबंधी विषयसुखों को पाने की लालसा से ।

भाव धर्म की उत्पत्ति मन में होती है । मन स्वभाव से चंचल है । चंचल मन को वश में करना अत्यंत ही कठिन कार्य है । उसे स्थिर व वश में करने के लिए जिनेश्वर भगवंतों ने सालंबन ध्यान बतलाया है । यद्यपि मन को जीतने के लिए शास्त्रों में अनेक आलंबन बतलाए हैं, किंतु 'नवपद' का ध्यान सर्वश्रेष्ठ है ।

अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु, सम्यग् दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप ये नवपद हैं ।

जिनेश्वर के धर्म में ये नवपद अत्यंत ही सारभूत हैं । इन नवपदों में समग्र जैन शासन का समवतार हो जाता है । इन नवपदों को छोड़कर इस जगत् में कोई श्रेष्ठ तत्त्व नहीं है ।

नवपद के आराधक में तीन गुण अवश्य होने चाहिए ।

1. खंतो अर्थात् क्षमावान्-क्रोध कषाय को जीतनेवाला ।

2. दंतो अर्थात् इन्द्रियविजेता-पाँचों इन्द्रियों को अपने वश में रखनेवाला ।

3. संतो अर्थात् मानसिक विकारों से मुक्त ।

जिनाज्ञानुसार नवपद की आराधना करनेवाला श्री श्रीपाल की तरह इस लोक और परलोक में परम सुख का अनुभव करता है ।

गौतम स्वामी के मुख से **'श्रीपाल'** का नाम सुनते ही श्रेणिक महाराजा ने पूछा, ``हे भगवंत ! ये श्रीपाल कौन हैं ? और उन्होंने किस प्रकार नवपद की आराधना करके परम सुख का अनुभव किया ?''

श्रेणिक महाराजा का यह प्रश्न सुनकर भव्य जीवों के प्रतिबोध के लिए गौतम स्वामी भगवंत ने श्रीपाल और मयणा का विस्तृत चरित्र सुनाया ।

2

बुद्धि-परीक्षा

जंबु द्वीप !
भरत क्षेत्र का मध्य खंड !!
मालव देश और उज्जयिनी नगरी ।
प्रजापाल राजा !

प्रजापाल राजा नाम से ही प्रजापाल नहीं थे, बल्कि काम से भी प्रजापाल थे । प्रजाजनों का वे अच्छी तरह से पालन करते थे । प्रजा के सुख दुःख को वे अपना सुख-दुःख समझते थे । सज्जनों के संरक्षण और दुर्जनों को दंडित करने में वे पूर्ण रूप से जागरूक थे । प्रजापाल राजा के कुशल नेतृत्व को प्राप्त कर मालव देश की प्रजा भयमुक्त थी । उन्हें चोरी-डकैती का कोई भय नहीं था ।

प्रजापाल राजा के मुख्य दो रानियाँ थीं-

एक का नाम था-**सौभाग्यसुंदरी**, जो माहेश्वर कुल में उत्पन्न होने के कारण मिथ्यादृष्टि थी ।

. राजा की दूसरी रानी का नाम था-**रूपसुंदरी** । जैन कुल में उत्पन्न होने के कारण उसके रोम-रोम में जैन धर्म के प्रति अद्भुत समर्पण भाव था । उसके हृदय मंदिर में जिनेश्वर देव प्रतिष्ठित थे । रूप और कला के सुभग मिलन के साथ ही उसके जीवन में सुसंस्कारों की सुवास थी । जैन धर्म के विशद तत्त्वज्ञान व कर्मविज्ञान की वह ज्ञाता ही नहीं थी बल्कि तत्त्वज्ञान के उन गहन पदार्थों को उसने अपने जीवन में आत्मसात् भी किया था ।

जीवनपथ पर आने वाले अनेक उतार-चढ़ाव, सानुकूल व प्रतिकूल संयोगों में वह मेरु की भाँति निश्चल थी । उसके रक्त की बूंद-बूंद में जिनधर्म के प्रति गाढ़ आस्था रही हुई थी । वीतराग देव, निर्ग्रंथ गुरु और केवलीभाषित धर्म के प्रति उसके जीवन में पूर्ण समर्पण भाव था । नारी जीवन के उच्चतम आदर्शों से उसका जीवन ओतप्रोत था ।

दोनों रानियों में परस्पर प्रेमभाव होने पर भी उनकी रुचियों में बड़ा अंतर था । सौभाग्यसुंदरी के दिल में भौतिक समृद्धि के प्रति गाढ़ अनुराग था, तो रूपसुंदरी के दिल में आध्यात्मिक गुणसमृद्धि के प्रति अपूर्व लगाव था ।

एक शुभ दिन सौभाग्यसुंदरी ने एक पुत्री को जन्म दिया, जिसका नाम रखा गया-**सुरसुंदरी** ।

कुछ समय बाद रत्नप्रसूता रूपसुंदरी ने भी एक पुत्री को जन्म दिया, जिसका नाम रखा गया-**मयणासुंदरी** ।

बालक को सबसे पहली शिक्षा-दीक्षा अपनी माँ से प्राप्त होती है । माँ के आचार-विचारों से बालक सबसे अधिक प्रभावित होता है ।

माँ यदि संस्कारी होगी, माँ के दिल में सद्धर्म के प्रति आस्था और श्रद्धा होगी, तो उसका प्रभाव संतान पर हुए बिना नहीं रहेगा ।

सच्ची माता वही है, जो बालक के देह मात्र का ही पालन-पोषण नहीं करती है, बल्कि उसके जीवन को सुसंस्कारों से सुवासित करने का भी प्रयत्न करती है ।

समय का प्रवाह आगे बढ़ने लगा । विद्याध्ययन के लिए योग्य वय होने पर सौभाग्यसुंदरी ने अपनी पुत्री सुरसुंदरी शिवभूति पंडित को सौंप दी ।

कुशाग्र बुद्धिवाली सुरसुंदरी ने पंडित के पास रहकर लेखन कला हासिल की, उसके बाद क्रमशः गणित, छंदशास्त्र, अलंकार शास्त्र, काव्य शास्त्र, नाट्य शास्त्र, नृत्यकला, गीतगान, चिकित्सा, चित्रकला आदि अनेकविध कलाओं में उसने निपुणता प्राप्त की ।

बुद्धि और पुरुषार्थ का जहाँ सुयोग हो, वहाँ कौनसी वस्तु असंभव है ?

सुरसुंदरी बुद्धिशाली भी थी और साथ में पुरुषार्थ भी करती थी । इस प्रकार उसने अल्पकाल में ही शिवभूति पंडित के पास जो-जो कलाएँ थीं, वे समस्त कलाएँ हासिल कर लीं ।

स्त्रियों की विविध कलाओं में निपुण होने पर भी उसे सद्धर्म का शिक्षण नहीं मिल पाया था, इसके परिणामस्वरूप विद्या-अध्ययन के बाद जीवन में नम्रता आने के बजाय उसके जीवन में अभिमान बढ़ने लगा ।

ज्ञान का पाचन हो जाय तो जीवन में नम्रता आती है और ज्ञान का अजीर्ण हो जाय तो जीवन में गर्व पैदा होता है ।

राजा अपने विशाल परिवार के साथ क्रमशः आगे बढ़ रहा था । अचानक उसने दूर से आते हुए एक जनसमुदाय को देखा ।

राजा ने मंत्री से पूछा, ''ये लोग कौन आ रहे हैं ?''

जाँच करके मंत्री ने कहा, ''राजन् ! ये सभी नवयुवक पराक्रमी पुरुष थे । परंतु कोढ़ रोग से ग्रस्त होने के कारण इनकी शारीरिक स्थिति अत्यंत ही खराब हो गई है । इन्होंने उंबर व्याधि से ग्रस्त कोढी को राजा के रूप में स्थापित किया है, उसे वे 'उंबर राणा' कहते हैं । उसे खच्चर के ऊपर बिठाया गया है । एक श्वेत कोढ वाला पुरुष उंबर राणा के मस्तक पर छत्र धारण करता है । कोढ़ रोग के कारण जिनके नाक गल गए हैं, ऐसे दो पुरुष चामर धारण करते हैं । यह उंबर राणा अन्य कोढियों के साथ पृथ्वीतल पर घूमता रहता है और राजा-महाराजा से मुँह मांगा दान प्राप्त कर अपना जीवन निर्वाह करता है ।

(पृष्ठ सं. 21 पर)

श्रीपाल की ललकार सुनकर महाकाल राजा ने पीछे मुड़कर देखा । श्रीपाल के अद्‌भुत रूप व लावण्य को देखकर महाकाल ने कहा, ''अरे ! तुम व्यर्थ क्यों मरने जा रहे हो ?''

कुमार ने कहा, ''राजन् ! तुम्हारे इस आडंबर से तो कायर पुरुष डरते हैं, परंतु तेरे तीक्ष्ण बाणों से भी मुझे किसी प्रकार का डर नहीं है ।''

इस प्रकार सिंह की भाँति गर्जना कर रहे श्रीपाल कुँवर पर राजा ने बाणों की बौछार चालू कर दी । परंतु आश्चर्य ! कुमार को एक भी बाण नहीं लगा । इधर कुमार के बाण छोड़ने से कई सैनिकों के अंग भंग हो गए । कई सैनिक इधर-उधर भागने लगे । कितने ही सैनिक भूमि पर गिर पड़े ।

महाकाल राजा ने भी बहुत से बाण छोड़े, परंतु औषधि के प्रभाव से कुमार को एक भी बाण नहीं लगा ।

(पृष्ठ सं. 44 पर)

अपनी पुत्री मयणासुंदरी के भविष्य को उज्ज्वल बनाने के लिए रूपसुंदरी ने उसे सुबुद्धि नाम के पंडित के पास भेजा ।

सुबुद्धि पंडित जैन धर्म के गहन तत्त्वों को अच्छी तरह से समझता था । वह जिनमत में अत्यंत ही निपुण था । अतः उसने मयणासुंदरी को स्त्रियों की 64 कलाओं के शिक्षण के साथ-साथ धर्मकला की भी गहन शिक्षा दी ।

पुरुष अपने जीवन में 72 कलाओं को और स्त्री अपने जीवन में 64 कलाओं को हासिल कर ले, परंतु यदि उन्होंने धर्म कला प्राप्त नहीं की है तो उनकी वे कलाएँ उन्हें भौतिक दृष्टि से भले ही समृद्धि दिला दें, परंतु वे भीतर से तो दरिद्र ही रहते हैं ।

पूर्व जन्म की आराधना-साधना के फलस्वरूप मयणा में विनय था, विवेक था, श्रद्धा व आस्था थी । अपने विद्यागुरु के प्रति वह अत्यंत ही आदरवाली थी । इन सब प्राथमिक गुणों के फलस्वरूप वह अल्प काल में ही जिनमत के गहन रहस्यों को समझने में समर्थ बन गई । यौवन के प्रांगण में कदम उठाने पर भी उसके जीवन में किसी प्रकार की स्वच्छंदता या उच्छृंखलता नहीं थी ।

.गणित की संख्या के साथ-साथ उसने तत्त्वज्ञान के पदार्थ भी कंठस्थ कर लिये थे ।

1) इस जगत् में हर पदार्थ में एक सत्ता (अस्तित्व) रही हुई है ।

2) जैन धर्म में मुख्य दो नय हैं- 1) द्रव्यार्थिक नय और 2) पर्यायार्थिक नय ।

3) काल के तीन भेद हैं-भूत, भविष्यत् और वर्तमान ।

4) गति के चार भेद हैं - देव, मनुष्य, तिर्यंच और नरक ।

5) पाँच अस्तिकाय हैं-धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय और जीवास्तिकाय ।

6) छह द्रव्य हैं-धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय, जीवास्तिकाय और काल ।

7) सात नय हैं-नैगम नय, संग्रह नय, व्यवहार नय, ऋजुसूत्र नय, शब्दनय, समभिरूढ नय, एवंभूत नय ।

8) आठ कर्म हैं-ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयुष्य, नाम, गोत्र और अंतराय ।

9) नौ तत्त्व हैं-जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष ।

10) दस यति धर्म हैं-क्षमा, मार्दव, आर्जव, संतोष, तप, संयम, सत्य, शौच, अकिंचनता, ब्रह्मचर्य ।

इस प्रकार गणित की संख्याओं के साथ-साथ मयणासुंदरी ने जैन धर्म के पदार्थ भी याद कर लिये ।

कर्म विज्ञान में भी उसने गहरा ज्ञान प्राप्त किया । कर्म क़ा बंध क्यों होता है ? कब होता है ? किस प्रकार होता है ? कर्म के बंध, उदय, उदीरणा, सत्ता तथा कर्म के बंध की प्रकृति, स्थिति, रस व प्रदेश बंध आदि का भी ज्ञान प्राप्त किया ।

ज्ञान का वास्तविक फल विनय है । मयणा ज्यों-ज्यों ज्ञान प्राप्त करती गई, त्यों-त्यों आम्रवृक्ष की भाँति अधिक-अधिक नम्र बनती गई ।

पंडित सुबुद्धि शांत, दांत, जितेन्द्रिय, धीर, गंभीर और जिनमत में कुशल थे, ऐसे योग्य विद्यागुरु को प्राप्त कर मयणासुंदरी ने अपना जीवन धन्य बना लिया ।

सकल कलाओं में निपुण, निर्मल सम्यक्त्व और शील गुण से युक्त ऐसी मयणासुंदरी ने यौवन के प्रांगण में प्रवेश किया, चंद्र की सोलह कलाओं की भाँति उसका रूप और सौंदर्य भी एकदम खिल उठा । उतना होने पर भी मयणा को न तो अपनी विद्या का अभिमान था और न ही अपने रूप का ।

एक शुभ दिन उपस्थित सभासदों को संबोधित करते हुए मंत्री ने कहा, ``विद्या अध्ययन को पूर्ण कर दोनों राजपुत्रियाँ आज हमारे बीच उपस्थित हैं । महाराजा की अभिलाषा है कि प्रजाजनों के बीच ही राजकुमारियों के ज्ञान की परीक्षा ली जाय ।''

मुख्य मंत्री की इस घोषणा के बाद प्रजाजन भी उत्साही बन गए ।

उसके बाद बारी-बारी से दोनों राजकुमारियों को शास्त्र के अनेक गहन पदार्थों के बारे में प्रश्न पूछे गए ।

शास्त्र के गहन पदार्थों के संतोषजनक जवाबों को सुनकर प्रजापाल राजा और प्रजाजन अत्यंत ही खुश हुए ।

अंत में राजा ने उनके बुद्धिचातुर्य को जानने के लिए सुरसुंदरी को एक प्रहेलिका पूछते हुए कहा-

'कुण लक्षण जीवित तणुं रे, कुण मनमथ घर नारि ।
कुसुम कुण उत्तम कह्युं रे, परणी शुं करे कुमारि रे ।।

जीवन का लक्षण क्या है ? कामदेव की स्त्री कौन है ? उत्तम फूल कौन सा है ? विवाह के बाद कन्या कहाँ जाती है ?

इन चारों प्रश्नों का एक ही शब्द में जवाब दो ।

प्रश्न सुनकर तुरंत ही सुरसुंदरी ने कहा, **'सास रइ जाय'**

इस एक शब्द में सुरसुंदरी ने चारों प्रश्नों के जवाब दे दिये ।

जीवन का लक्षण हैं-**'सास अर्थात् श्वास'**

कामदेव की पत्नी हैं-**'रइ अर्थात् रति'**

सबसे श्रेष्ठ फूल है-**'जाइ अर्थात् जाई का फूल'**

विवाह के बाद कन्या जाती है-**'सासरइ अर्थात् श्वसुर गृह'**

सुरसुंदरी के इस जवाब को सुनकर राजा खुश हो गया ।

उसके बाद राजा ने मयणासुंदरी को संबोधित करते हुए पूछा- तुम मुझे एक शब्द में जवाब दो-'आद्य अक्षर के बिना जो जगत् को जीवन देने वाला है, मध्य अक्षर के बिना जो जगत् का संहार करने वाला है तथा अंत्यक्षर के बिना जो सभी को प्रिय होता है ।

आद्य अक्षर विण जेह छे रे, जग जीवाडणहार ।
तेह ज मध्याक्षर विना रे, जग संहारण हार रे ।।
अंत्याक्षर विण आपणुं रे लागे सहु ने मीठ रे ।।

राजा की यह बात सुनकर सूक्ष्म बुद्धिवाली मयणा ने कहा-**काजल ।**
'मयणा कहे सुणजो पिता रे, ते मे नयणे दीठ रे ।'

काजल में से पहला अक्षर निकाल दिया जाय तो 'जल' बचता है, जो जगत् को जीवन देनेवाला है ।

काजल में से मध्य अक्षर निकाल देने पर 'काल' होता है, जो जगत् का संहार करनेवाला है । काजल का अंतिम अक्षर निकाल देने पर 'काज' (कार्य) बचता है, अर्थात् काम करने वाला सभी को प्रिय होता है ।

मयणा के इस प्रत्युत्तर को सुनकर राजा प्रसन्न हो गया ।

उसके बाद राजा ने सुरसुंदरी को पादपूर्ति करने के लिए एक पद देते हुए कहा-

'पुण्य पामीजे एह रे'

उसी समय सुरसुंदरी ने कहा-

''सुरसुंदरी कहे चित्त चातुरी रे, धन यौवन वर देह ।
मन वल्लभ मेलावड़ो रे, पुण्ये पामीजे एह रे ।''

अर्थात्-

पुण्य के उदय से चतुराई, धन, यौवन, सुंदर शरीर व मनवल्लभ पति का मिलन होता है ।

सुरसुंदरी के इस जवाब को सुनकर राजा एकदम खुश हो गया, इतना ही नहीं सारी प्रजा भी खुश हो गई । राजा ने सुरसुंदरी को अध्ययन करानेवाले पंडित की भी मुक्तकंठ से प्रशंसा की ।

उसके बाद राजा ने मयणासुंदरी को **'पुण्ये पामीजे एह रे'** पद की पादपूर्ति करने का आदेश दिया ।

उसी समय मयणा ने कहा-

''मयणा कहे मति न्याय नी रे, शील शु निर्मल देह ।
संगति गुरु गुणवंतनी रे, पुण्ये पामीजे एह रे ।।''

अर्थात्-

हे पिताजी ! न्याय युक्त बुद्धि, शील से पवित्र देह और गुणवान गुरु की संगति पुण्य से प्राप्त होती है ।

मयणा के इस जवाब को सुनकर उसकी माता और उसके शिक्षक को प्रसन्नता हुई, परंतु अन्य किसी को कुछ भी आनंद नहीं आया ।

दृष्टि-दृष्टि में भेद-पुण्य के दो प्रकार :–

सुरसुंदरी व मयणासुंदरी ने पुण्य के उदय से प्राप्त होने वाली जो-जो वस्तुएँ बतलाई हैं, यद्यपि उन सब वस्तुओं की प्राप्ति पुण्य के उदय से होती है, परंतु दृष्टि-दृष्टि में बड़ा भेद है ।

सुरसुंदरी मिथ्यादृष्टि है, उसे इस लोक की भौतिक सामग्री में ही सुख के दर्शन हो रहे हैं और इस कारण पुण्य के फलस्वरूप उसने लौकिक सामग्री प्राप्ति की ही बात की है । ऐसी सामग्री की प्राप्ति तो पापानुबंधी पुण्य से भी हो जाती है । लोकोत्तर जैन शासन में पापानुबंधी पुण्य को हेय (त्याज्य) माना गया है । पापानुबंधी पुण्य के उदय से प्राप्त भौतिक सुख-सामग्री आत्मा के लिए अत्यंत ही खतरनाक है । पापानुबंधी पुण्य का उदय होने पर आत्मा को ऐसी ही दुर्बुद्धि सूझती है कि जिसके फलस्वरूप वह आत्मा संसार के उन क्षणिक व तुच्छ सुखों में अत्यंत आसक्त बन जाती है । उन सुखों के त्याग की बात उसे अच्छी नहीं लगती है । ऐसे सुख का भोग भी आत्मा का परिभ्रमण ही बढ़ाता है ।

मयणासुंदरी सम्यग्दृष्टि आत्मा है, उसे हेय क्या ? उपादेय क्या ? *इस का पूर्ण विवेक है, अतः पुण्य के फलस्वरूप* उसने ऐसी ही वस्तुएँ बतलाई, जो आत्मा का एकांत हित करने वाली हैं ।

न्याय पूर्ण बुद्धि, निर्मल शील व सद्गुरु का योग आत्मा के लिए एकांत हितकारी हैं । इन वस्तुओं की प्राप्ति से आत्मा इस जन्म में भी सुख पाती है, परलोक में भी सद्गति प्राप्त करती है और परंपरा से भी शाश्वत अजरामर पद प्राप्त करती है ।

पुण्य के फलस्वरूप मयणा ने जो वस्तुएँ बतलाईं, उन वस्तुओं की प्राप्ति पुण्यानुबंधी पुण्य के उदय से ही हो सकती है ।

पुण्यानुबंधी पुण्य की यह विशेषता है कि उससे प्राप्त सुख-सामग्री में आत्मा आसक्त नहीं बनती है ।

पुण्यानुबंधी पुण्य के उदय वाली आत्मा तो शक्कर ऊपर बैठी हुई मक्खी की भाँति है, जो सुख का स्वाद लेते हुए भी, अवसर आने पर उसका त्याग भी कर देती है ।

अधिकांश दुनिया इहलौकिक सुख में लुब्ध है, अतः उन्हें तो सुर-सुंदरी की बात ही अच्छी लगेगी, मयणा की बात नहीं ।

3 वर-पसंदगी

कुरु जंगल देश में शंखपुरी नाम की नगरी थी, जो बाद में **'अहिछत्रा'** के नाम से प्रसिद्ध हुई। उस नगरी में दुश्मनों के लिए काल समान दमितारि नाम का राजा राज्य करता था। वह राजा हर वर्ष प्रजापाल राजा के दरबार में आया करता था।

योगानुयोग उस दिन दमितारि राजा का पुत्र अरिदमन राजकुमार राजसभा में आया हुआ था। उसके अद्‌भुत रूप, लावण्य और यौवन को देखकर सुरसुंदरी के मन में उसके प्रति एक आकर्षण पैदा हो गया। सुरसुंदरी ने उसे कटाक्षभरी नजर से देखा।

सुरसुंदरी व मयणासुंदरी के ज्ञान की परीक्षा करने के बाद अभिमान में आकर राजा ने कहा, 'हे पुत्रियो ! मैं तुम पर प्रसन्न हुआ हूँ, अतः जो भी इच्छा हो, वह माँगो।

''मैं निर्धन को धन देता हूँ, रंक को राजा बना देता हूँ, मेरे ही प्रसाद से सारी जनता सुखी है। मेरी प्रसन्नता में ही लोक सुखी है और मेरी नाराजगी से सभी लोग दुःखी हैं।''

राजा की यह बात सुनकर सुरसुंदरी ने कहा, ''पिताजी ! आपकी बात में कोई संदेह नहीं है, इस जगत् को जीवन देने वाले दो ही हैं-एक आप और दूसरा मेघ।''

सुरसुंदरी की यह बात सुनकर सारी राजसभा एकदम खुश हो गई और प्रजाजन भी कहने लगे, ''इस दुनिया में सुरसुंदरी के समान कोई चतुर कन्या नहीं है।''

लोगों की यह बात सुनकर राजा भी खुश हो गया और सुरसुंदरी को वर प्रदान करते हुए बोला, 'हे सुरसुंदरी ! तू वर माँग ! मनोवांछित वस्तु माँगकर तू अपनी मनोकामना पूर्ण कर।''

पिता की यह बात सुनकर लज्जा का त्याग कर सुरसुंदरी ने कहा, ''पिताजी, यदि माँगने से सब कुछ मिलता हो तो समस्त कलाओं में कुशल, रूप और लावण्य से युक्त यह अरिदमन राजकुमार मेरा वर हो।''

अपने इष्ट की सिद्धि के लिए पिता की स्तुति करती हुई वह बोली,

``पिताजी ! सेवकजन के मनोरथों को पूर्ण करने में आप ही साक्षात् कल्पवृक्ष समान हो ।''

उसी समय खुश होकर राजा ने कहा, ``हे पुत्री ! यह अरिदमन राजकुमार तेरा पति हो ।''

राजा की स्वीकृति को सुनकर सभाजन भी कहने लगे, ``हे राजन् ! यह संयोग अत्यंत ही सुंदर हुआ है ।''

उसके बाद राजा ने मयणासुंदरी को कहा, `हे वत्स ! बोल, तेरा वर कौन हो ?''

जिनवचन के पान से भावित मतिवाली मयणासुंदरी ने कुछ भी जवाब नहीं दिया और लज्जा के कारण उसने अपना मुँह नीचे कर लिया ।

राजा ने पुनः पूछा तो हँसती हुई मयणा ने जवाब दिया, ``हे पिताजी ! आप तो विवेकी हो, मुझे ऐसा अनुचित प्रश्न क्यों पूछते हो ? सुकुल में उत्पन्न हुई बाला कभी यह नहीं कहती है कि वह मेरा पति हो, वह तो पिता के दिये हुए वर को प्रमाण मानती है ।

``हे पिताजी ! वर प्रदान करने में माता-पिता तो सिर्फ निमित्त मात्र हैं । जन्म-जन्मांतर के संबंधों के अनुसार ही जीवों के इस जीवन में संबंध होते हैं ।

पिताजी ! आप यह झूठा अभिमान न करें कि मैं जो करता हूँ, वैसे ही यहाँ होता है । सच तो यह है कि पूर्व भव में जिसने जैसे कर्म उपार्जित किए होते हैं, उसे उन शुभ-अशुभ कर्मों के उदय के अनुसार सुख-दुःख की प्राप्ति होती है ।

यदि कन्या पुण्यवती होगी तो हल्के कुल में देने पर भी सुखी हो जाएगी और कन्या भाग्यहीन होगी तो उत्तम कुल में देने पर भी दुःखी हो जाएगी ।

हे पिताजी ! आप यह गर्व न करें कि मेरे ही प्रसाद व अप्रसाद से लोग सुखी और दुःखी होते हैं । जो पुण्यशाली होते हैं उन पर आप शीघ्र प्रसन्न हो जाते हैं और जो पुण्यहीन होता है, उस पर आप नाराज हो जाते हैं ।''

मयणा के इन वचनों को सुनकर राजा को गुस्सा आ गया । उसने कहा, ``अरे ! तू मेरी ही कृपा से तो ये वस्त्र-अलंकार धारण करती है, तो फिर ऐसी बातें क्यों करती है ?''

मयणा ने कहा, ``पिताजी ! गत जन्म के सुकृत के कारण ही मैं आपके यहाँ पैदा हुई हूँ और इस कारण सुख का अनुभव करती हूँ ।''

पूर्व भव में किए हुए सुकृतों और दुष्कृतों के अनुसार ही जीव, इस जन्म में सुख-दुःख प्राप्त करता है ।

''देव-दानव-इन्द्र-राजा-चक्रवर्ती और बुद्धिशाली व्यक्ति भी कर्म के शुभ-अशुभ परिणाम में परिवर्तन नहीं ला सकता है ।''

मयणा के इन वचनों को सुनकर कुपित हुए राजा ने कहा, ``अहो ! यह पुण्यहीन लगती है, जो मेरी बात को बिल्कुल नहीं मानती है ।''

राजा के इन वचनों को सुनकर सभाजनों ने कहा, ``हाँ राजन् ! यह भोली-भाली कन्या क्या समझती है ? आप खुश हो तो साक्षात् कल्पवृक्ष के समान हो और आप नाराज हो तो साक्षात् कृतांत के समान हो ।''

सभाजनों की यह बात सुनकर मयणा ने कहा, ``अहो ! तुच्छ स्वार्थ की सिद्धि के लिए ये लोग जान-बूझकर झूठ बोलते हैं ।''

``हे पिताजी ! आपकी कृपा से ही यदि सेवकजन सुखी बन जाते हों तो आपकी सेवा में लगे हुए कुछ सेवक सुखी और कुछ सेवक दुःखी क्यों हैं ? अतः हे पिताजी ! आपको जो उचित लगे, वह ही मेरा वर हो, यदि मेरा पुण्य होगा तो निर्गुणी वर भी गुणवान बन जाएगा और पुण्य नहीं होगा तो मेरे कर्म के दोष से वह सुंदर वर भी असुंदर हो जाएगा ।''

मयणा के इन वचनों को सुनकर राजा अत्यंत ही कोपायमान हो गया और सोचने लगा, ``अहो ! यह कैसी मूर्ख कन्या है ? इसने मेरा अपमान कर दिया ।'' राजा को रोषायमान देखकर चतुर मंत्री ने सोचा, ``राजा अभी आवेश में है, अभी राजा कुछ भी निर्णय लेगा तो वातावरण बिगड़ जाएगा, अतः बिगड़ी हुई परिस्थिति को संभालना बहुत जरूरी है ।'' इस प्रकार विचार कर मंत्री ने कहा, ``राजन् ! राजवाटिका में जाने का समय हो चुका है, आपकी आज्ञा हो तो राजसभा का विसर्जन कर दिया जाए !''

राजा ने तत्काल हाँ भर दी । उसी समय राजसभा भंग कर दी गई ।

मंत्री ने राजा के लिए अश्व मँगवा लिया था । राजा अपने मंत्री आदि परिवार के साथ राजवाटिका के लिए निकल पड़ा ।

कोपायमान मानव को मधुर भोजन में भी स्वाद नहीं आता है, बस, प्रजापाल राजा का मन भी कोप से भरा होने के कारण आज उसे राजवाटिका

में घूमने का आनंद नहीं आ रहा था । राजा अपने विशाल परिवार के साथ क्रमशः आगे बढ़ रहा था । अचानक उसने दूर से आते हुए एक जनसमुदाय को देखा ।

राजा ने मंत्री से पूछा, ''ये लोग कौन आ रहे हैं ?''

जाँच करके मंत्री ने कहा, ''राजन् ! ये सभी नवयुवक पराक्रमी पुरुष थे । परंतु कोढ़ रोग से ग्रस्त होने के कारण इनकी शारीरिक स्थिति अत्यंत ही खराब हो गई है । इन्होंने उंबर व्याधि से ग्रस्त कोढ़ी को 'राजा के रूप में स्थापित किया है, उसे वे 'उंबर राणा' कहते हैं । उसे खच्चर के ऊपर बिठाया गया है । एक श्वेत कोढ़ वाला पुरुष उंबर राणा के मस्तक पर छत्र धारण करता है । कोढ़ रोग के कारण जिनके नाक गल गए हैं, ऐसे दो पुरुष चामर धारण करते हैं । यह उंबर राणा अन्य कोढ़ियों के साथ पृथ्वीतल पर घूमता रहता है और राजा-महाराजा से मुँहमाँगा दान प्राप्त कर अपना जीवन निर्वाह करता है ।

मंत्री की यह बात सुनकर राजा ने अपना मार्ग बदल दिया । राजा को मार्ग बदलते देख उन कोढ़ियों ने भी अपना मार्ग बदल दिया । तभी राजा ने मंत्री को कहा, ''तुम आगे जाकर उन्हें मुंहमाँगी रकम देकर रवाना कर दो, क्योंकि इन रोगियों का दर्शन भी दुःखदायी है ।''

राजा की आज्ञानुसार मंत्री कुछ करने के लिए तैयारी कर ही रहा था कि इसी बीच **गलितांगुलि** नाम का कोढ़ी राजा के सामने उपस्थित हो गया और प्रार्थना करते हुए बोला, ''हे स्वामिन् ! उंबरराणा नाम का हमारा राजा है । हम जहाँ भी जाते हैं, वहाँ से हमें बहुत सा धन-वस्त्र मिल जाते हैं । उंबर राणा के प्रभाव से हम सुखी हैं ।''

''परंतु हे राजन् ! हमारे मन में एक ही चिंता है, इस उंबर राणा के कोई रानी नहीं है । हे राजन् ! आप कृपा करके एक कन्या प्रदान कर दोगे तो आपका बहुत बड़ा उपकार होगा ।''

तत्क्षण मंत्री ने कहा, ''तुमने अनुचित माँग की है । तुम्हारे कोढ़ रोग को जान कर कौन व्यक्ति अपनी कन्या देना चाहेगा ?''

गलितांगुलि ने कहा, ''हमने तो राजा की यह कीर्ति सुनी थी कि यह राजा किसी की भी प्रार्थना का भंग नहीं करता है । अतः या तो उस निर्मल कीर्ति को खो दिया जाय अथवा कुकुल में पैदा हुई कोई कन्या प्रदान करके

भी अपनी कीर्ति बनाये रखे ।''

राजा ने कहा, ''अच्छा, मैं तुम्हें एक कन्या प्रदान कर दूंगा । एक कन्या जैसी सामान्य वस्तु के लिए कौन व्यक्ति अपनी उज्ज्वल कीर्ति को कलंकित करना चाहेगा ?''

क्रोधाग्नि के कारण जिसका निर्मल विवेक नष्ट हो चुका है, ऐसे प्रजापाल राजा ने मन में सोचा, ''मेरी पुत्री मेरा कुछ भी नहीं मानती है, तो क्यों न मैं उसे ही प्रदान कर दूँ ?''

इस प्रकार विचार कर राजा अपने महल में आया । उसने मयणा सुंदरी को बुलाकर कहा, ''बेटी ! आज भी यदि तू मेरी बात स्वीकार करती हो कि 'मेरी कृपा से तू सुखी है' तो मैं उत्तम वर के साथ तेरा पाणिग्रहण करा दूंगा और तुझे बहुत सा धन दूंगा । और यदि अभिमान से यही बात मानती हो कि अपने कर्म के अनुसार ही सब कुछ होता है तो तेरे भाग्य से कोढ़ी उंबर राणा आ गया है ।''

पिता की यह बात सुनकर हँसकर मयणा ने कहा, ''हे पिताजी ! मेरे कर्म संयोग से जो कोई भी आया हो वह मुझे स्वीकार है । राजा हो या रंक, उससे मुझे कोई मतलब नहीं है ।''

मयणा के इस जवाब को सुनकर राजा एकदम आगबबूला हो उठा । उसने सोचा, ''अरे ! यह पापिनी मेरा कुछ भी नहीं मानती है, अब तो एक कोढ़ी के साथ ही इसका पाणिग्रहण कराकर इसे कड़क शिक्षा करूँ, ताकि इसकी अकल ठिकाने आ जाय ।'' इस प्रकार विचार कर राजा ने उंबरराणा को राज दरबार में आने के लिए आदेश दे दिया ।

राजा का आदेश होते ही वह उंबरराणा अपने कुछ साथियों को लेकर खच्चर पर बैठकर राजसभा में उपस्थित हो गया । तत्काल राजा ने अपनी दूसरी पुत्री मयणा सुंदरी को भी वहाँ बुला लिया ।

राजदरबार में उंबर राणा को देखकर कुतूहल से अनेक प्रजाजन भी राज दरबार में आ गए ।

क्रोध से अंधे बने राजा ने मयणा को कहा, ''तेरे कर्मसंयोग से यह कोढ़ी आ गया है । अतः इसके साथ पाणिग्रहण कर तू सुखी (?) हो ।''

पिता के इन वचनों को सुनकर मयणा के दिल में लेश भी खेद नहीं हुआ । वह सोचने लगी, ''ज्ञानी भगवंतों ने अपने ज्ञान के बल से जो कुछ

देखा है, उसमें कुछ भी संदेह रखने जैसा नहीं है । पाँच की साक्षी में पिता ने जो 'कंत' प्रदान किया है, देव की तरह उसकी मुझे आराधना करनी ही चाहिए ।''

इसी बीच उंबर राणा ने राजा को संबोधित करते हुए कहा, ''हाँ राजन् ! आप यह अनुचित प्रवृत्ति न करें । क्या रत्न की माला कौए के कंठ में पहनाई जाती है ? कहाँ कौआ और कहाँ रत्नों की माला ? एक ओर तो मैं अपने पूर्व के पापोदय से इस प्रकार के कष्ट सहन कर रहा हूँ, वहाँ दूसरी ओर जान-बूझकर इस उत्तम कन्यारत्न के जीवन को बर्बाद क्यों करूँ ?

अतः हे राजन् ! यदि आप मुझे कोई कन्या देना चाहते हो तो मेरे योग्य कोई दासीकन्या प्रदान कर दें और यदि यह शक्य न हो तो कोई चिन्ता नहीं आपका कल्याण हो ।''

उसी समय राजा ने कहा, ''यह मेरी पुत्री मेरा कुछ भी मानती नहीं है और अपने ही कर्म के फल को मानती है, उसके ही कर्म के संयोग से तुम यहाँ आए हो, अतः उसे अपने कर्म का फल भुगतने दो, उसमें मेरा क्या दोष है ?''

राजा का आदेश होते ही तत्काल मयणासुंदरी खड़ी हो गई और श्रेष्ठ मुहूर्त को साधने के लिए उत्सुकता बतलाती हुई सीधी उंबरराणा के निकट पहुँच गई और उसने उंबरराणा का हाथ पकड़ लिया ।

एक कोढ़ी के साथ मयणा के पाणिग्रहण को देख मयणा की माता रूपसुंदरी, उसके मामा तथा उसका परिवार विलाप करने लगा और सोचने लगा, ''अहो ! यह कैसा अयोग्य संबंध हो गया ?''

बस, थोड़ी ही देर के बाद मयणा उंबरराणा के साथ खच्चर पर बैठ गई और उसके साथ नगर के बाहर आवास पर जाने के लिए रवाना हो गई ।

एक कोढ़ी के साथ हुए मयणा के पाणिग्रहण को देखकर नगरवासी परस्पर बोलने लगे, ''अहो ! यह कैसा अयोग्य संयोग हो गया है ?''

कुछ लोग राजा की निंदा करते हुए कहने लगे, ''अहो ! राजा ने अपनी पुत्री का यह कैसा अयोग्य संबंध करा दिया है ? आवेश में आकर उसने अपनी पुत्री के भावी हित का भी विचार नहीं किया ?''

कुछ लोग मयणा की निंदा करते हुए बोलने लगे, ''अहो ! यह कितनी अभिमानी हो गई है ? कितनी जिद्दी है, पिता की एक भी बात को मानने के लिए तैयार नहीं है ।''

कुछ लोग मयणा को पढ़ानेवाले पंडित की निंदा करते हुए बोलने लगे, ''अहो ! उस पंडित ने मयणा को यह कैसा शिक्षण दिया है । मयणा की तो जिंदगी ही नष्ट हो जाएगी ।''

कुछ लोग जैनधर्म की निंदा करते हुए बोलने लगे, ''अहो ! यह कैसा धर्म है ? यह तो जानबूझकर खड्डे में गिरना सिखाता है । मयणा ने पिता की बात मानली होती तो उसे क्या नुकसान हो जाने वाला था ?''

इस प्रकार लोकमुख से विविध निंदाओं को सुनती हुई मयणा अपने पति के साथ नगर बाहर आ गई । वहाँ पर उसके साथियों ने उंबर राणा व मयणा के विवाह के विविध कृत्य पूर्ण किए ।

इधर सुरसुंदरी के विवाह के लिए राजा ने ज्योतिषी को बुलाया और मुहूर्त के लिए पूछा-

ज्योतिषी ने कहा, ''राजन् ! विवाह के लिए आज का ही दिन शुद्ध है, परंतु श्रेष्ठ मुहूर्त का समय तो चला गया । जिस समय मयणा ने उंबर राणा का हाथ पकड़ा, वह ज्योतिष की दृष्टि से श्रेष्ठ मुहूर्त था ।''

ज्योतिषी की यह बात सुनकर राजा नाराज हो गया और कहने लगा, **''धूल पड़े तेरे ज्योतिष शास्त्र में । जिस समय एक राजपुत्री कोढ़ी का हाथ पकड़ती है, उसे तू श्रेष्ठ मुहूर्त कहता है, तेरी बुद्धि को धिक्कार हो । मैं तो आज ही अपनी पुत्री का विवाह कराऊंगा ।''** इस प्रकार कहकर राजा ने सुरसुंदरी के विवाह-महोत्सव की तैयारियाँ प्रारंभ करवा दी ।

राजा का आदेश होते ही तत्काल एक नई दुल्हन की भाँति संपूर्ण नगर को सजा दिया गया । स्थान-स्थान पर ध्वजा पताकाएँ व तोरण बाँध दिए गए । अरिदमन राजकुमार को भी उत्तम वस्त्रों व अलंकारों से सजाया गया । चारों ओर धवल-मंगल गीत-गान प्रारंभ हुए ।

वर-वधू को लग्नमंडप में लाया गया । वहाँ बहुत ही धूमधाम के साथ अरिदमन राजकुमार और सुरसुंदरी का पाणिग्रहण कराया गया । सुरसुंदरी के अनुरूप योग्य वर को देखकर सभी प्रजाजन सुरसुंदरी की मुक्तकंठ से प्रशंसा करने लगे । ''सचमुच, सुरसुंदरी होशियार है, वह पिता की आज्ञांकित बेटी है, वह अपने पिता के आशीर्वाद पा सकी । उसका पंडित व उसका धर्म भी श्रेष्ठ है ।'' इस प्रकार लोग शिवधर्म की मुक्तकंठ से प्रशंसा करने लगे और जैनधर्म की निंदा करने लगे ।

रात्रि के समय मयणा को अपने पास देखकर उंबरराणा के मन में विचार आया, ``अहो ! मेरी संगति से इसका जीवन भी बर्बाद हो जाएगा, अतः क्यों न अभी भी बिगड़ी हुई बाजी को सुधार दूँ'', इस प्रकार विचार कर उंबर राणा ने मयणा को संबोधित करते हुए कहा, ``हे सुंदरी ! अभी भी दीर्घदृष्टि से विचार कर, अभी भी कुछ बिगड़ा नहीं है, विवाह तो जीवन भर का संबंध है, अतः खूब विचार करके कार्य करना चाहिए।''

``हे सुंदरी ! मेरे संग से तेरी सुवर्ण जैसी काया भी नष्ट हो जाएगी। तू रूप में देवांगना समान है, अतः एक कोढ़ी के साथ तेरा संबंध उचित नहीं है, अभी भी शर्म रखने की जरूरत नहीं है। तू अपनी माँ के पास चली जा, और किसी श्रेष्ठ नररत्न के साथ तू पाणिग्रहण कर, जिससे विधाता के द्वारा निर्मित तेरा रूप भी सफल हो।''

उंबर राणा के मुख से उन वचनों को सुनकर मयणा का हृदय दुःख से भर आया। उसकी आँखों से सावन-भादों की तरह आँसू बहने लगे...फिर शांत होकर अत्यंत ही विनम्र स्वर से वह बोली, ``हे स्वामिन् ! आप तो चतुर हो, आप अपने मुख से ऐसे उच्चार कभी न करें। इन वचनों से तो मेरे प्राण चले जाएंगे। आप ही मेरे जीवनसाथी हो...दूसरे का नाम भी सहन करने में मैं सक्षम नहीं हूँ।''

``सूर्य कभी पश्चिम दिशा में नहीं उगता है, समुद्र कभी अपनी मर्यादा का लोप नहीं करता है, इसी प्रकार सती स्त्री भी जीवन में एक ही को पति के रूप में स्वीकार करती है।''

``हे स्वामिन् ! एक तो महिला के रूप में जन्म ही मेरा पापोदय है...और शीलरहित नारी-जन्म की तो कीमत ही क्या है ?

एक महिला के लिए उसका शील ही श्रेष्ठ अलंकार है।

हे स्वामिन् ! आप ही मेरे लिए जीवन पर्यंत शरण हो।''

मयणा की इस दृढ़ता से उंबर राणा को खूब आश्चर्य हुआ। उसने भी सोचा, ``ऐसे नारीरत्न के साथ मेरा संबंध होना यह भी मेरे भाग्य की निशानी है।''

रात्रि व्यतीत हुई। प्रातःकाल हुआ। पूर्व दिशा में सूर्य का उदय हुआ।

उस समय मयणा ने अपने पतिदेव से कहा, ``स्वामिन् ! ऋषभदेव प्रभु के दर्शन के लिए चलते हैं ।''

मयणा के वचन से उंबर राणा भी प्रभु-दर्शन के लिए तैयार हो गया । दोनों ऋषभदेव प्रभु के मंदिर में पहुँचे । आनंद से पुलकित अंगवाली मयणा ने भावपूर्वक प्रभु को प्रणाम किया और उसके बाद वह मुक्तकंठ से प्रभु की स्तुति करने लगी ।

उसने कहा, ``हे प्रभो ! आपकी जय हो, आप जगत् में चिंतामणि रत्न समान हो...आप ही मोक्षमार्ग के दाता हो । इस भव और परभव में आपके बिना दूसरा कोई आधार नहीं है । आप ही शरणागत के दुःख-दौर्भाग्य को दूर करने में सक्षम हो । हे ऋषभदेव प्रभो ! आप त्रिभुवन के सूर्य हो । हे प्रभो ! आप मेरे मनोरथ को पूर्ण करो ।''

मयणा ने भावपूर्वक प्रभुस्तुति की और उसी समय प्रभु के कंठ में रही हुई फूलों की माला तथा प्रभु के हाथ में रहा बिजोरे का फल उछला ।

भक्ति के फलस्वरूप शासनदेव के इस चमत्कार को देखकर उंबर राणा ने वह फल अपने हाथों में ग्रहण किया और मयणा ने वह माला अपने हाथों में ग्रहण की ।

मंदिर से बाहर निकलने के बाद मयणा ने अपने स्वामी से कहा, ``हे स्वामिन् ! प्रभुदर्शन से हुए इस चमत्कार के फलस्वरूप अब आपका यह रोग सदा के लिए दूर हो जाएगा ।''

उसके बाद मयणा अपने पति के साथ उपाश्रय में गई, जहाँ पूज्य आचार्य मुनिचंद्रसूरिजी म. धर्मदेशना दे रहे थे । मयणा ने आचार्य भगवंत को भावपूर्वक वंदना की । तत्पश्चात् वह भी देशना श्रवण के लिए बैठ गई ।

आचार्य भगवंत ने अपनी धर्मदेशना में कहा कि, ``सुमनुष्यत्व, सुकुल, सुरूप, सौभाग्य, आरोग्य, दीर्घआयुष्य आदि सामग्री पुण्य के उदय से प्राप्त होती हैं ।''

धर्मदेशना-समाप्ति के बाद आचार्य भगवंत ने सुपरिचित उस मयणा को कहा, ``हे वत्स ! श्रेष्ठ लक्षणों से युक्त यह पुण्यवान् पुरुष कौन है ?''

महान् आत्माओं की भाषा भी श्रेष्ठ होती है । उनके मुख से कभी हल्के शब्द नहीं निकलते हैं ।

आचार्य भगवंत के इस प्रश्न को सुनकर मयणा ने अपना सारा वृत्तांत आचार्य भगवंत को सुना दिया । अंत में उसने यही कहा, ``हे गुरुदेव ! मुझे अन्य दुःख की कोई चिंता नहीं है, परंतु ये अज्ञानी लोग जिनशासन की भयंकर निंदा करते हैं, यही दुःख मुझे खटक रहा है ।''

गुरुदेव ने कहा, ``मयणा ! तू मन में लेश भी खेद मत कर । महान् पुण्योदय से तुझे चिंतामणि रत्न समान इस नररत्न की प्राप्ति हुई है । यह नररत्न तो भाग्यशाली है, भविष्य में ऐसे दिन आएंगे कि यह राजाओं का भी राजा होगा और जिनशासन की शोभा बढ़ाएगा ।''

मयणा ने गुरुदेव को विनंती करते हुए कहा, ``हे पूज्य गुरुदेव ! आप शास्त्र के ज्ञाता हो, अतः ऐसा कोई उपाय बतलाएँ, जिससे आपके श्रावक के देह में रहा रोग नष्ट हो जाय ।''

मयणा के इन वचनों को सुनकर आचार्य भगवंत ने कहा, ``मंत्र, तंत्र, औषधि तथा अन्य सावद्य उपचारों का उपदेश देना, यह साधु का कर्तव्य नहीं है । फिर भी इस महापुरुष से जगत् में शासन का उद्योत होनेवाला है, अतः इसके लिए मैं एक यंत्र बतलाता हूँ ।''

पण ए सुपुरुष एह थी, थाशे धर्म उद्योत रे ।
तेणे एक यंत्र प्रकाशशुं, जस जग जागति ज्योत रे ।।

इस प्रकार मयणासुंदरी को आश्वासन देकर मुनिचंद्रसूरिजी म. ने आगमग्रंथों का अवलोकन-अवगाहन कर दूध में से मक्खन की भाँति श्री सिद्धचक्र यंत्र का उद्धार किया ।

नवपद का माहात्म्य बतलाते हुए आचार्य भगवंत ने कहा, ``अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु, सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप ये नवपद हैं । इन नवपदों को छोड़कर अन्य कोई तत्त्व या परमार्थ नहीं है । इन नवपदों में समग्र जिनशासन का अवतरण हो जाता है । आज तक जितनी भी आत्माएँ मोक्ष में गई हैं, मोक्ष में जाएंगी अथवा मोक्ष में जा रही हैं, वे सब नवपद के ध्यान से ही गई हैं, जाएंगी और जा रही हैं ।''

''जो व्यक्ति इन नवपदों की हृदय से भक्ति करता है, वह त्रिभुवन का स्वामित्व प्राप्त करता है ।

इन नवपदों से युक्त श्री सिद्धचक्र यंत्र है । जिसके मध्य में अरिहंत हैं, चारों दिशाओं में सिद्ध आदि चार हैं तथा विदिशाओं में सम्यग् दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप हैं ।

इस सिद्धचक्र की विधिपूर्वक आराधना करने से अक्षय मोक्ष-सुख प्राप्त हो सकता है, तो अन्य लब्धियों की प्राप्ति में तो क्या आश्चर्य है !''

मुनिचंद्रसूरिजी म. ने कहा, ''हे सुंदरी ! तुम तीन जगत् में प्रसिद्ध अष्ट महासिद्धि को प्रदान करने वाले श्री सिद्धचक्र की परम भक्तिपूर्वक आराधना करो ।''

जो क्षमावान है, जितेन्द्रिय है और जिसने मानसिक विकारों को जीत लिया है, वही व्यक्ति सिद्धचक्र का सच्चा आराधक हो सकता है । जिसकी आराधना आसो सुद 7 से प्रारंभ करनी चाहिए । नौ दिन आयंबिल करने चाहिए । विधिपूर्वक त्रिकाल पूजा और प्रभुजी की अष्टप्रकारी पूजा करनी चाहिए । इन नौ दिनों में ब्रह्मचर्य के पालन पूर्वक भूमि पर संथारा करना चाहिए । इस प्रकार चैत्र मास में भी नवपद की विधिपूर्वक आराधना करनी चाहिए । यह ओली 9 बार निरंतर करनी चाहिए । नौ ओली की समाप्ति होने पर अपनी शक्ति के अनुसार विधिपूर्वक उद्यापन महोत्सव करना चाहिए ।

इस नवपद की आराधना से दुष्ट कोढ़, क्षय, भगंदर आदि भयंकर महारोग नष्ट हो जाते हैं ।

जो पुरुष नवपद की आराधना करता है उसे दासपना, नौकरपना, अंगों की विकलता, दौर्भाग्यादि दोष, अंधापन आदि प्राप्त नहीं होते हैं ।

जो स्त्री नवपद की आराधना करती है, उसे दौर्भाग्य, विष-कन्यापन, वैधव्य, वंध्यापन आदि दोष नहीं होते हैं ।

उंबर राणा और मयणासुंदरी को श्री सिद्धचक्र महायंत्र आराधना की संपूर्ण विधि बतलाने के बाद पूज्य आचार्य भगवंत ने वहाँ उपस्थित अन्य श्रावकों को संबोधित करते हुए कहा, ''हे महानुभावो ! उत्तम लक्षणों से लक्षित यह व्यक्ति निकट भविष्य में जिनशासन का महान् प्रभावक होगा, अतः भावपूर्वक इनकी साधर्मिक भक्ति करनी चाहिए ।''

गुरु भगवंत के उपदेश को इशारे में समझने वाले सुश्रावक तत्काल

उंबरराणा और मयणा को अपने घर ले गए और उत्तम वस्त्र, श्रेष्ठ भोजन आदि से उनकी भक्ति करने लगे ।

वहाँ पर रहते हुए उंबरराणा ने मयणा के वचनानुसार गुरु उपदेश से श्री सिद्धचक्र आराधना की संपूर्ण विधि सीख ली ।

इस प्रकार वहाँ रहते हुए कई दिन व्यतीत हो गए । आसो मास आया और आसो सुदी सप्तमी से मयणा सहित कुमार ने आयंबिल तपपूर्वक श्री सिद्धचक्र की आराधना प्रारंभ कर दी । दोनों ने श्री सिद्धचक्र भगवंत की सुंदर पूजा व भक्ति की । पहले दिन आयंबिलपूर्वक अरिहंत पद की आराधना की, जिसके फलस्वरूप श्रीपाल की बाहर की त्वचा निर्मल हो गई । ज्यों-ज्यों दिन बीतने लगे, त्यों-त्यों उनके देह की कांति भी बढ़ने लगी ।

नौवें दिन श्री सिद्धचक्र यंत्र के न्हवण जल को शरीर पर लगाने से उनका पूरा शरीर रोगरहित हो गया ।

मयणा ने कहा, ``हे स्वामिन् ! पूज्य गुरुदेव के प्रभाव से ही यह सब कुछ प्राप्त हुआ है । ***माता-पिता आदि सभी हितकारी हैं, परंतु गुरु के समान हितकारी कोई नहीं है ।***

पूज्य गुरुदेव के प्रभाव से इस लोक के कष्ट दूर होते हैं, परलोक में दुर्गति से रक्षण होता है । सद्गुरु की सेवा करने से सद्बुद्धि की प्राप्ति होती है, अतः गुरु ही दीपक और देव के समान हैं ।''

उंबरराणा के देह में हुए अद्भुत चमत्कार को देखकर सभी लोग कहने लगे, ``धन्य हो ऐसे ज्ञानी गुरु भगवंत को-और इस महान् धर्म को ।'' इस प्रकार लोग जिनधर्म की भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे, जिसके फलस्वरूप अनेक आत्माओं ने बोधिबीज प्राप्त किया ।

श्री सिद्धचक्र यंत्र के अभिषेक जल को अपने शरीर पर लगाने से उंबर राणा के सभी 700 साथियों का भी कोढ़ रोग मूल से समाप्त हो गया ।

एक शुभ दिन मयणासुंदरी अपने पतिदेव के साथ परमात्मा के दर्शन कर बाहर आ रही थी । जिन मंदिर से बाहर आते ही उसने एक प्रौढ़ नारी को देखा । उस नारी को देखते ही कुमार का हृदय रोमांचित हो उठा...वह तत्क्षण अपनी माँ को पहिचान गया । वह आगे बढ़ा और अपनी माँ के चरणों में गिर पड़ा ।

एक पुरुष के लिए माँ को छोड़कर अन्य किसी स्त्री के चरणों में झुकने का नहीं होता है, इस प्रकार विचार कर मयणा समझ गई कि यह प्रौढ नारी, मेरे पतिदेव की माता होनी चाहिए । तत्काल मयणा ने भी अपनी सास के चरणों में प्रणाम किया । माँ ने उन दोनों को शुभाशीष प्रदान की ।

अपनी प्राणप्यारी माँ को देखकर कुमार गद्‌गद हो गया । माँ भी अपने पुत्र की नीरोग काया को देखकर एकदम प्रसन्न हो उठी ।

कुमार ने कहा, ``माताजी ! यह सब आपकी पुत्रवधू का प्रभाव है ।''

कुमार की बात सुनकर माँ खुश हो गई ।

माँ ने अपनी आपबीती सुनाते हुए कहा, ``बेटा ! तेरे कोढ़निवारण की औषध की शोध के लिए मैं कोशांबी नगरी में गई थी । वहाँ पर मैंने एक ज्ञानी गुरुवर को देखा । मैंने उनको भावपूर्वक वंदना की । उन्होंने मुझे धर्म का उपदेश दिया ।

उसके बाद मैंने उनसे पूछा, ``हे भगवन् ! मेरा पुत्र नीरोग बनेगा या नहीं ?''

मेरे इस प्रश्न का जवाब देते हुए मुनिवर ने कहा, ``हे भद्रे ! उंबर नाम की व्याधि के कारण तेरा पुत्र उन कोढ़ियों के टोले में उंबर राणा के नाम से प्रसिद्ध हुआ । वे कोढ़ी एक बार उज्जयिनी नगरी में पहुँचे । वहाँ के महाराजा प्रजापाल की पुत्री के साथ तुम्हारे पुत्र का पाणिग्रहण हो चुका है और सिद्धचक्र की आराधना के प्रभाव से वह रोगमुक्त भी बन गया है । वह अभी अपनी पत्नी के साथ उज्जयिनी नगरी के बाहर साधर्मिक के घर रहा हुआ है ।''

``गुरु भगवंत के मुख से इन वचनों को सुनकर मैं प्रसन्न हो गई । अभी मैं कोशांबी नगरी से आ रही हूँ...और हे वत्स ! वधू सहित तुझे देखकर मेरा हृदय खुशी से नाच उठा है ।

``हे वत्स ! तुम वधू सहित चिरकाल जीओ । अब मेरे लिए यह जिनधर्म ही जीवनपर्यंत शरण-भूत है ।''

प्रतिदिन जिनेश्वर भगवंत की पूजा-भक्ति करते हुए वे तीनों खुशी से अपना समय व्यतीत करने लगे ।

एक दिन की बात है ।

मयणासुंदरी अपने पतिदेव और सास के साथ जिनमंदिर में प्रभुजी

की अंग व अग्र पूजा करने के बाद भावपूजा स्वरूप चैत्यवंदन कर रही थी ।

इधर मयणा की माता रूपसुंदरी, मयणा के कोढ़ी के साथ हुए लग्न के बाद नाराज होकर अपने भाई पुण्यपाल के महल में चली गई थी । जिनवचनों का पुनःपुनः स्वाध्याय करने से धीरे-धीरे उसका शोक दूर हुआ । योगानुयोग उसी दिन वह जिनमंदिर में प्रभु दर्शन के लिए आई ।

अचानक उसने मयणा के साथ देवकुमार के समान अद्भुत रूपवाले तेजस्वी राजकुमार को देखा और तत्क्षण वह सोचने लगी, अहो ! मेरी पुत्री के समान दिखनेवाली यह वधू कौन है ? इस प्रकार गौर से देखने पर उसे मालूम पड़ा कि यह उसकी पुत्री मयणासुंदरी ही है ।

मयणा को पहिचानने के साथ ही उसे अत्यंत आघात लगा । वह सोचने लगी, ***'सचमुच, मेरी पुत्री मयणा ने उस कोढ़ी पति का त्याग कर दिया और अन्य रूपवान पुरुष के साथ संबंध कर लिया है ।***

यद्यपि मयणा जिनमत में निपुण है, ऐसी तुच्छ घटना उसके जीवन में संभव नहीं है, परंतु इस भव-नाटक में क्या असंभव है ?

इसने तो मेरे कुल को कलंकित कर दिया है और जिनधर्म को भी दूषित किया है । पुत्री की मृत्यु से मुझे इतना दुःख नहीं होता, जितना दुःख उसके इस प्रकार के आचरण से हो रहा है ।'

इस प्रकार विचार करती रूपसुंदरी का हृदय दुःख से भर आया और वह रुदन करती हुई करुण स्वर से बोली, ``अहो ! मेरी कुक्षि पर वज्र पड़ो । मेरी कुक्षि से उत्पन्न हुई कन्या भी ऐसा अकार्य करने के लिए तैयार हो गई ?''

रूपसुंदरी के इन वचनों को सुनकर विचक्षण ऐसी मयणासुंदरी सब कुछ समझ गई । चैत्यवंदन समाप्त कर वह अपनी माता के पास आई और हाथ जोड़कर प्रणाम करती हुई कहने लगी, ``माताजी ! हर्ष के स्थान में ऐसा शोक क्यों ? आपके दामाद तो रोगमुक्त हुए हैं, अतः आपको खुशी होनी चाहिए, इसके बजाय आप खेद क्यों कर रही हो ? आप जो अन्य विकल्प सोच रही हो, यह बात तो पूर्व में उदय होने वाला सूर्य पश्चिम में उग जाय, तो भी संभव नहीं है ।''

उसी समय कुमार की माता ने भी कहा, ``हे सुंदरी ! आप मन में

कुछ भी झूठा विकल्प न करें, आपकी पुत्री के प्रभाव से मेरा पुत्र रोगमुक्त हो गया है। तुम धन्य हो कि तुम्हारी कुक्षि में ऐसा स्त्रीरत्न उत्पन्न हुआ है।''

इन बातों को सुनकर रूपसुंदरी भी खुश हो गई और बोली, ``क्या ऐसी बात है ?''

उस समय मयणासुंदरी ने कहा, ``माताजी ! जिनमंदिर में संसार संबंधी बातें करने से 'निसीहि' का भंग होता है, अतः आप घर चलें, वहाँ सब बातें विस्तार से हो सकेंगी।''

उसके बाद वे चारों जिनमंदिर से बाहर आए और साधर्मिक के घर पहुँचे। वहाँ पर मयणासुंदरी ने श्रीसिद्धचक्र के माहात्म्य के साथ अपना समग्र वृत्तांत सुना दिया, जिसे सुनकर रूपसुंदरी के आश्चर्य का भी पार न रहा।

रूपसुंदरी के मन का समाधान हो गया। उसके दिल में मयणा के प्रति सद्भाव उत्पन्न हुआ।

रूपसुंदरी ने कुमार की माता से प्रश्न करते हुए पूछा, ``मैं आपके पुत्र की वंशोत्पत्ति जानना चाहती हूँ।''

रूपसुंदरी की जिज्ञासा जानकर कुमार की माता ने अपना व कुमार का परिचय कराते हुए कहा, ``अंग देश में चंपा नामकी नगरी है, जहाँ दुश्मनों के लिए सिंह समान सिंहरथ राजा राज्य करते थे। उनकी रानी का नाम कमलप्रभा है, जो कोंकण देश के राजा की बहिन है। लग्न जीवन में दीर्घकाल व्यतीत हो जाने पर भी उन्हें किसी पुत्र की प्राप्ति नहीं हुई। आखिर एक दिन कमलप्रभा रानी ने एक तेजस्वी पुत्ररत्न को जन्म दिया। राजा ने उसका नाम श्रीपाल रखा। वह श्रीपाल जब दो वर्ष का था, तभी राजा के देह में शूल की भयंकर पीड़ा उत्पन्न हुई...अनेक उपचार करने पर भी राजा बच न सके और उनकी मृत्यु हो गई।

कमलप्रभा महारानी और प्रजाजनों को अत्यंत ही आघात लगा। मतिसागर मंत्री ने महारानी को आश्वासन दिया...और एक शुभ दिन...शुभ मुहूर्त में उस बालक का राज्याभिषेक किया गया।

श्रीपाल छोटा था, परंतु राज्य की समस्त बागडोर मतिसागर महा-मंत्री के हाथों में थी। एक बार श्रीपाल के चाचा अजितसेन के दिल में पाप

मतिसागर महामंत्री की हितकारी बात कमलप्रभा महारानी ने स्वीकार कर ली...और रात्रि का प्रारंभ होने के साथ ही वह महारानी राजकुमार को लेकर जंगल की ओर चल पड़ी ।

एक ओर रात्रि का अंधकार धीरे-धीरे गाढ़ होता जा रहा था, दूसरी ओर जंगली प्राणियों की भयंकर चीत्कारें सुनाई दे रही थीं । रास्ता भी ऊबड़-खाबड़ था । कभी पत्थर से चोट लगती...तो कभी काँटों की भयंकर पीड़ा । परंतु एक पुत्ररक्षण की भावना से कमलप्रभा हिम्मत जुटाकर आगे कदम बढ़ाए जा रही थी ।

(पृष्ठ सं. 33 पर)

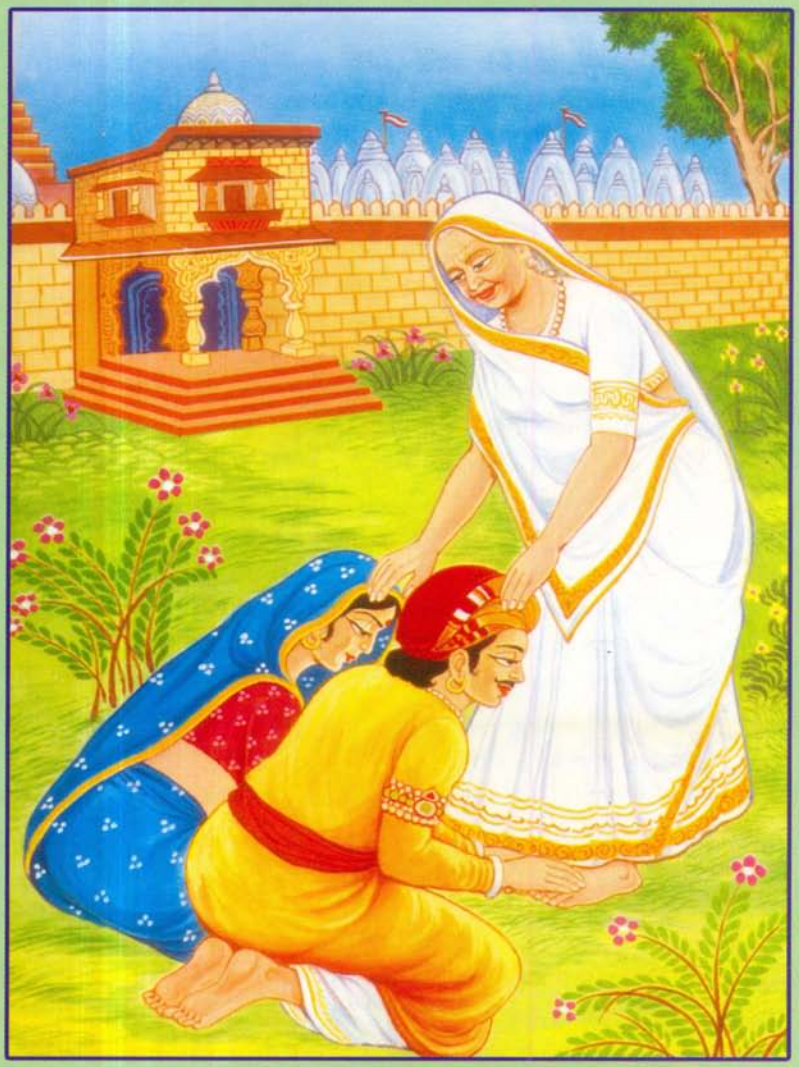

एक शुभ दिन मयणा सुंदरी अपने पतिदेव के साथ परमात्मा के दर्शन कर बाहर आ रही थी । जिनमंदिर से बाहर आते ही उसने एक प्रौढ़ नारी को देखा । उस नारी को देखते ही कुमार का हृदय रोमांचित हो उठा...वह तत्क्षण अपनी माँ को पहिचान गया । वह आगे बढ़ा और अपनी माँ के चरणों में गिर पड़ा ।

एक पुरुष के लिए माँ को छोड़कर अन्य किसी स्त्री के चरणों में झुकने का नहीं होता है, इस प्रकार विचार कर मयणा समझ गई कि यह प्रौढ़ नारी, मेरे पतिदेव की माता होनी चाहिए । तत्काल मयणा ने भी अपनी सास के चरणों में प्रणाम किया । माँ ने उन दोनों को शुभाशीष प्रदान की ।

(पृष्ठ सं. 29 पर)

आया । उनके भीतर रहा शैतान जागृत हुआ और उन्होंने श्रीपाल एवं मतिसागर मंत्री की हत्या करने का षड्यंत्र रचा । उनके मन की यह मैली मुराद थी कि यदि श्रीपाल नहीं रहेगा तो समस्त राज्य का मालिक मैं बन जाऊंगा । बस, राज्य के लोभ से उन्होंने श्रीपाल और मतिसागर की हत्या का पूरा षड्यंत्र जमा दिया...परंतु श्रीपाल के सद्भाग्य से उस षड्यंत्र की गंध महामंत्री तक पहुँच ही गई ।

जिस रात्रि में श्रीपाल की हत्या का पूरा षड्यंत्र रचा हुआ था, उसी रात्रि के प्रारंभ में वह मतिसागर महामंत्री श्रीपाल की माता कमलप्रभा के पास पहुँच गया और कहने लगा, ``माताजी ! अजितसेन की बुद्धि भ्रष्ट हो चुकी है, वह किसी भी उपाय से श्रीपाल राजा और मेरी हत्या करना चाहता है । उसके समग्र षड्यंत्र की गंध मुझे आ चुकी है, अतः अब सावधान रहने की जरूरत है । मेरी तो इच्छा है कि आप आज ही रात को श्रीपाल कुमार को लेकर नगर का त्याग कर दो । श्रीपाल बचेगा तो भविष्य में राज्य भी प्राप्त हो जाएगा ।''

मतिसागर महामंत्री की हितकारी बात महारानी ने स्वीकार कर ली...और रात्रि का प्रारंभ होने के साथ ही वह राजकुमार को लेकर जंगल की ओर चल पड़ी ।

एक ओर रात्रि का अंधकार धीरे-धीरे गाढ़ होता जा रहा था, दूसरी ओर जंगली प्राणियों की भयंकर चीत्कारें सुनाई दे रही थीं । रास्ता भी ऊबड़-खाबड़ था । कभी पत्थर से चोट लगती...तो कभी काँटों की भयंकर पीड़ा । परंतु एक पुत्ररक्षण की भावना से कमलप्रभा हिम्मत जुटाकर आगे कदम बढ़ाए जा रही थी ।

'सचमुच, कर्म को शर्म नहीं है । राजा को रंक और रंक को राजा बनाने में उसे क्षण भर की भी देर नहीं लगती है । कर्मसत्ता निष्ठुर है । मरे हुए को मारने में उसे लेश भी लज्जा नहीं आती है ।

माँ के हृदय में पुत्र का भारी मोह होता है । पुत्रमोह के अधीन बनकर वह सब कुछ सहन करने के लिए तैयार हो जाती है ।

कमलप्रभा कष्ट उठाकर भी धीरे कदमों से आगे बढ़ रही थी । रात्रि व्यतीत हुई । पूर्व दिशा में सूर्य का आगमन हुआ । धरती पट्ट पर प्रकाश फैलने लगा । आकाश में पंखियों का कलरव प्रारंभ हो गया । कोयल के मधुर स्वर

से आकाश मंडल गूंजने लगा । प्रकृति मंडल में सर्वत्र आनंद था, परंतु कमलप्रभा के दिल में अत्यंत ही भय भरा हुआ था । उसे सतत इस बात का भय सता रहा था कि अजितसेन के सैनिक आ गए तो मैं कैसे बच पाऊंगी ? अरे ! इस बालक का रक्षण कैसे कर पाऊंगी ?

प्रातःकाल होने पर उसने सामने से आ रहे लोगों के समूह को देखा । निकट आने पर पता चला कि वे सब कोढ़ रोग से ग्रस्त हैं । उन्हें देखकर कमलप्रभा भयभीत हो गई और भय के मारे रुदन करने लगी ।

अद्‌भुत रूप व लावण्य से युक्त एक नारी-रत्न को रोती सूरत में देखकर कोढ़ियों के टोले के अग्रणी ने कहा, ``बहन ! तुम भयभीत न हो । निष्कारण क्यों डर रही हो ? जो भी हो, कहो, हम तुम्हारे बंधु हैं ।''

जैसे कीचड़ में कमल पैदा होता है, उसी प्रकार कई बार हल्के कुल में भी उत्तम आत्माएँ देखने को मिलती हैं ।

वे सब पुरुष देह से कोढ़ी अर्थात् रोगग्रस्त थे, परंतु उनके दिल में अमीरी थी । वे तत्काल कमलप्रभा के दुःख दर्द में सहभागी बनने के लिए तैयार हो गए । कमलप्रभा ने अपनी सारी आपबीती उन्हें सुना दी ।

कमलप्रभा की दुःख-दर्दभरी बातों को सुनकर उन सबने आश्वासन देते हुए कहा, ``बहन ! तुम निर्भय बन जाओ । हम तुम्हारा रक्षण करेंगे ।''

इस प्रकार कह कर उन्होंने कमलप्रभा को एक खच्चर के ऊपर बिठा दिया । बाहर से किसी को पता न चले इसके लिए कमलप्रभा ने वस्त्रों से अपना मुंह ढक लिया ।

कुछ समय बाद कमलप्रभा के पदचिह्नों के अनुसार कमलप्रभा की छानबीन करते हुए कुछ सैनिक कोढ़ियों के टोले के पास आए और पूछने लगे, ``क्या तुमने किसी रानी को यहाँ से जाते-आते देखा है ?''

कोढ़ियों ने कहा, ``हमने तो किसी स्त्री को यहाँ नहीं देखा है, फिर भी हमारी तलाश करनी हो तो कर सकते हो । इसके फलस्वरूप रानी तो मिलेगी या नहीं ? किंतु हमारी प्रसादी (कोढ़रोग) आपको अवश्य मिल जाएगी ।''

सैनिकों ने सोचा, ``मुफ्त में रोग को आमंत्रण देना मूर्खता ही है ।'' इस प्रकार विचार कर वे सभी सैनिक वहाँ से आगे बढ़ गए ।

धीरे-धीरे समय व्यतीत होने लगा ।

श्रीपाल कुँवर भी बड़ा होने लगा । कोढ़ियों के संग से बचने की पूरी-पूरी कोशिश करने पर भी पूर्व के अशुभ कर्म के संयोग से श्रीपाल कुंवर के शरीर में उंबर नाम का कोढ़ रोग फैल गया ।

उसके औषध की तलाश के लिए मैं कोशांबी नगरी में गई और वहाँ किसी महात्मा से पता चला कि प्रजापाल राजा की पुत्री के साथ उसका पाणिग्रहण हो गया है और श्री सिद्धचक्र भगवंत की मंगलकारी आराधना के फलस्वरूप उसका कोढ़ रोग भी दूर हो गया है ।

हे सुंदरी ! वह कमलप्रभा मैं स्वयं ही हूँ और यह श्रीपाल कुँवर मेरा ही पुत्र है ।''

कमलप्रभा के मुख से इस समग्र वृत्तांत को जान कर रूपसुंदरी के आश्चर्य का पार न रहा । वह सोचने लगी, ''अहो ! मयणा का पुण्य बलवान है, जिसके साथ उसका पाणिग्रहण हुआ था, वे तो चंपा के अधीश सिंहरथ राजा के पुत्र हैं ।''

अपने दामाद के उत्तम वंश व राजसमृद्धि का वर्णन सुनकर रूपसुंदरी एकदम खुश हो गई । तत्काल अपने भाई के घर जाकर उसने मयणासुंदरी व श्रीपाल कुँवर का सारा वृत्तांत सुना दिया । जिसे सुनकर पुण्यपाल के भी हर्ष का पार न रहा ।

रूपसुंदरी ने श्रीपाल कुँवर, मयणासुंदरी व कमलप्रभा आदि को अपने भाई पुण्यपाल के घर चलने के लिए आग्रह किया ।

सभी ने रूपसुंदरी के आमंत्रण को सहर्ष स्वीकार किया । वे सभी पुण्यपाल के घर आ गए । पुण्यपाल ने श्रीपाल व मयणा के आवास के लिए सुंदर महल प्रदान किया ।

एक दिन मयणासुंदरी श्रीपाल कुँवर के साथ महल के झरोखे में बैठी हुई नगर के दृश्यों को निहार रही थी...अचानक नगर परिभ्रमण के लिए निकले हुए महाराजा प्रजापाल की दृष्टि मयणा पर पड़ी । तेजस्वी और दिव्य शरीरवाले पुरुष के साथ बैठी हुई मयणा को देखकर राजा सोचने लगा, ''अहो ! क्रोध में अंधा होकर एक तो कोढ़ी को अपनी पुत्री प्रदान कर मैंने बुरा कार्य किया, परन्तु इस मयणा ने भी काम में अंधी होकर इस कोढ़ी पति का त्याग कर बुरा कार्य ही किया है ।''

''क्रोध और काम दोनों भयंकर दोष हैं। क्रोध और काम में अंधा होने वाला व्यक्ति अपने हित-अहित का विचार नहीं कर पाता है। कामांध और क्रोधांध दोनों व्यक्ति विवेक से भ्रष्ट हो जाते हैं। उन्हें कर्तव्य-अकर्तव्य का कोई भान नहीं रहता है।''

इस प्रकार विचार करते हुए प्रजापाल राजा का चेहरा एकदम उदास हो गया। पुण्यपाल प्रजापाल राजा के अभिप्राय को अच्छी तरह से समझ गया। तत्क्षण उसने राजा को आदर सहित अपने महल में बुलाया और उन्हें विस्तार से सिद्धचक्र भगवंत के प्रभाव से हुए अद्‌भुत चमत्कार आदि की घटना सुना दी।

मयणा की धर्म-दृढ़ता, कर्म की विचित्रता और श्री सिद्धचक्र की महिमा आदि को जानकर राजा के आश्चर्य का पार न रहा। तत्काल वह मयणा के भवन में गया। अपने पिता को प्रत्यक्ष देखकर मयणा ने अपने पति के साथ पिता के चरणों में प्रणाम किया।

उसी समय प्रजापाल ने कहा, ''बेटी ! मुझे धिक्कार हो, अभिमान के वश होकर मैं अकार्य करने के लिए तैयार हो गया।

''हे वत्स ! तू धन्य है, तू पुण्यवती है, तू विवेकी है, तत्त्व की ज्ञाता है, धीर और गंभीर है।''

''हे पुत्री ! तूने मेरे कुल का उद्धार किया है, तूने अपनी माँ का गौरव बढ़ाया है। तूने जिनधर्म की प्रभावना की है।''

''हे वत्स ! मेरी आत्मा में अज्ञानता का अंधकार छाया हुआ है। अभिमान के कारण विवेक रूपी चक्षु नष्ट हो चुके हैं। अतः मैंने तेरा जो कुछ अपराध किया हो, उसके लिए तू मुझे क्षमा कर दे।''

पिता द्वारा इस प्रकार क्षमा याचना करने पर मयणा बोली, ''हे पिताजी ! आप लेश भी खेद न करें, जो कुछ भी हुआ है वह सब मेरे ही कर्म के उदय से हुआ है, अतः इसमें आपका कुछ भी अपराध नहीं है।

''निश्चय से इस जगत् में कोई भी जीव किसी को सुख-दुःख नहीं देता है, सभी जीव अपने ही कर्म के उदयानुसार सुख-दुःख का अनुभव करते हैं। अतः किसी को भी यह झूठा गर्व नहीं करना चाहिए कि मैं जो करता हूँ, वही होता है। वास्तव में, कर्म के शुभ-अशुभ परिणाम को बदलने में देव-देवेन्द्र भी समर्थ नहीं हैं।

``हे पिताजी ! जिनेश्वर भगवंत के द्वारा बतलाए हुए तत्त्वों को आप स्वीकार करो ।''

मयणा के मधुर, गंभीर और प्रेरक वचनों को सुनकर प्रजापाल राजा भी एकदम खुश हो गया । उसने जिनधर्म स्वीकार किया । सिंहरथ राजा के पुत्र को अपने दामाद के रूप में प्राप्त कर राजा का हृदय प्रसन्नता से भर आया ।

राजा ने अपनी पुत्री व दामाद का भव्यातिभव्य नगरप्रवेश कराने का निश्चय किया । बस, राजा का आदेश होते ही पूरे नगर को ध्वजा-पताका से सजा दिया गया । मयणा व श्रीपाल को हाथी पर बिठाकर राजा ने भव्य नगर प्रवेश कराया । चारों ओर नगर में मयणा के सत्त्व शील धर्म की प्रशंसा होने लगी । सर्वत्र जिनशासन का जयजयकार होने लगा ।

एक दिन की बात है ।

हाथी, घोड़े, रथ तथा सैनिकों के साथ श्रीपाल कुँवर आनंद-क्रीड़ा के लिए नगर के बाह्य उद्यान में घूमने के लिए जा रहे थे । उस समय उनका मुखमंडल पूर्ण चंद्र की तरह सुशोभित था, उनका भाल अर्धचंद्र की तरह देदीप्यमान था, उनके होठ प्रवाल की भाँति रक्तवर्णी थे । उनके दाँत दाड़िम की कली की भाँति उज्ज्वल थे । उनका कंठ शंख की भाँति मनोहर था ।

नगर के अनेक नर-नारी उनके मुखमंडल को देखकर अपने नेत्रों से अमृतपान कर रहे थे ।

उस समय किसी भोलीभाली कन्या ने अपनी माँ को पूछा, ``माँ ! माँ ! यह मनोहर पुरुष कौन है ?''

माँ ने कहा, ``बेटी ! यह तो अपने महाराजा के दामाद श्रीपाल कुँवर हैं ।''

नगर में अपने श्वसुर के नाम से हो रही इस पहिचान को सुनकर श्रीपाल को अत्यंत ही आघात लगा ।

उसने सोचा, ``उत्तम पुरुष स्वयं के नाम / काम से, मध्यम पुरुष पिता के नाम / काम से प्रख्यात होते हैं ।'' इस नगर में अपने श्वसुर के नाम से प्रख्यात होकर मैं अधमाधम की श्रेणी में आ गया हूँ ।

उद्यान-क्रीड़ा पूर्ण करके श्रीपाल अपने राजभवन में आ पहुँचा, परंतु उसके मुखपर कोई प्रसन्नता नहीं थी ।

4 विदेश-प्रयाण

``वत्स ! क्या आज तेरा स्वास्थ्य ठीक नहीं है ? क्या किसी ने तेरी आज्ञा का भंग किया है ? अथवा किसी ने तेरा पराभव किया है ? क्या तेरी पत्नी ने तेरा अविनय किया है ?'' माँ ने पूछा ।

कुमार ने कहा, ``माताजी ! आपने जो कारण बतलाए हैं, उनमें से एक भी कारण नहीं है । मेरी उदासीनता का एकमात्र कारण है कि मैं इस नगर में अपने गुणों से या अपने पिता के गुणों से प्रख्यात नहीं हूँ । इस नगर में मेरी प्रसिद्धि श्वसुर के नाम से हो रही है, यह तो अधमाधमता की निशानी है ।''

माँ ने कहा, ``वत्स ! तो यहाँ से चतुरंगी सैन्य ले जाकर अपने पिता के राज्य को ग्रहण कर और अपने मन को शल्यमुक्त बना ।''

श्रीपाल ने कहा, ``माताजी ! श्वसुर के बल से अपने राज्य को ग्रहण करना, यह तो मेरे लिए अत्यंत ही खेद का कारण होगा, जब तक मैं अपनी भुजा के बल से अर्जित धन-लक्ष्मी व सैन्य से पिता के राज्य को प्राप्त न करूँ, तब तक मुझे चैन नहीं पड़ेगा । अतः माँ ! मैं देशांतर जाना चाहता हूँ । इसके लिए मुझे आशीर्वाद दीजिए ।''

माँ ने कहा, ``बेटा ! तू तो अभी बालक है, सरल और सुकोमल है । देशांतर में घूमना कष्टप्रद बात है ।''

कुमार ने कहा, ``माताजी ! ऐसा मत बोलो । धीर-वीर पुरुषों के लिए यह बात संभव नहीं है । जब तक मैंने कदम नहीं उठाया है, तब तक ही तुम ऐसा बोलोगी ।''

माँ ने कहा, ``तो मैं भी तेरे साथ चलूंगी ।''

कुमार ने कहा, ``माँ ! विदेश में तेरा साथ चलना ठीक नहीं है । वहाँ तू साथ रहेगी तो मैं मुक्त होकर भ्रमण नहीं कर पाऊंगा ।''

श्रीपाल के इन वचनों को सुनकर माँ ने आशीर्वाद देते हुए कहा, ***''बेटा ! तू कुशल रहना, उत्तम काम करना । भुजा के बल से शत्रुओं को परास्त कर मुझे शीघ्र दर्शन देना और बीच मार्ग में कोई संकट आ जाय तो नवपद को मत भूलना ।''***

उसी समय मयणा ने कहा, ''स्वामिन् ! देह की छाया जैसे देह से अलग नहीं रहती है, उसी प्रकार मैं आपसे दूर नहीं रह पाऊंगी, अतः आप मुझे साथ में ले चलें ।''

श्रीपाल ने कहा, ''प्रिये ! तू उत्तम धर्मकार्य में तत्पर होकर माँ की सेवा करती हुई यहीं पर रह ।''

मयणा ने कहा, ''कोई भी सुशीला नारी अपने पति का वियोग नहीं चाहती है, परंतु जब आप की आज्ञा ही है तो वह मुझे प्रमाण है ।''

पतिव्रता नारी की यही विशेषता होती है कि वह अपनी इच्छाओं को गौण करके भी पति की आज्ञा को सर्वाधिक महत्त्व देती है ।

''हे स्वामिन् ! आप अरिहंतादि नव पदों को क्षणभर के लिए भी मत भूलना । अपनी माँ को याद रखना और कभी-कभी इस दासी को भी याद करना । आप अपना कार्य पूर्ण कर शीघ्र घर लौटना । विदेश में अन्य स्त्रियों के साथ पाणिग्रहण करो तो भी मुझे भूल मत जाना ।''

''हे स्वामिन् ! **आज से मैं नित्य एकाशना करूंगी । सचित्त आहार का त्याग करूंगी । स्नान व शणगार का भी त्याग करूंगी ।''**

पति के विरह में एक सती स्त्री जिस प्रकार अपना जीवन अत्यंत ही सादगी से जीती है, उसी प्रकार मयणा सुंदरी ने भी श्रीपाल के वियोग में अत्यंत ही सादगी-पूर्ण जीवन जीने का संकल्प किया ।

कमलप्रभा माता ने श्रीपाल के मस्तक पर मंगल तिलक किया । तत्पश्चात् अपनी माता के चरणों में नमस्कार कर श्रीपाल कुँवर ने एक तलवार को अपने हाथों में ग्रहण कर चंद्रनाडी का स्वर चलने पर कदम उठाया...और वह क्रमशः आगे बढ़ने लगा ।

गाँव-नगर के विविध दृश्यों को देखता हुआ श्रीपाल कुँवर एक निर्भय सिंह की भाँति पर्वत के शिखर पर पहुँच गया । वहाँ उसने एक विद्या साधक पुरुष को देखा ।

कुमार ने कहा, ''तुम कौन हो और क्या कर रहे हो ?''

उसने कहा, ''मैं अपने गुरु के द्वारा दी गई विद्या की साधना कर रहा हूँ, परंतु उत्तर साधक के अभाव में मेरी विद्या सिद्ध नहीं हो रही है । यदि आप मेरे उत्तर साधक बनेंगे तो मैं कृतार्थ हो जाऊंगा ।''

तत्क्षण परोपकारी कुमार ने उसकी बात मान ली ।

श्रीपाल कुँवर उत्तरसाधक बना और उस साधक ने अपनी साधना प्रारंभ की । एक रात्रि में ही उसकी विद्या सिद्ध हो गई ।

प्रत्युपकार की भावना से उस साधक पुरुष ने श्रीपाल कुँवर को कहा, ***''आप ये औषधियाँ स्वीकार करें । एक औषधि के प्रभाव से पानी में नहीं डूबोगे और दूसरी औषधि के प्रभाव से पर-शस्त्र का निवारण होगा ।''***

यद्यपि कुमार ने निःस्वार्थ भाव से ही उसकी सेवा की थी, उसके दिल में प्रतिफल की कोई इच्छा नहीं थी, परंतु साधक पुरुष का अत्यंत ही आग्रह होने से उसने उन दोनों औषधियों को स्वीकार किया ।

उसी समय धातुवाहिक पुरुषों ने उस विद्यासाधक पुरुष को कहा, ''आपके द्वारा निर्दिष्ट कल्प के अनुसार हमने रससिद्धि की परंतु अभी तक उस रस से सुवर्ण सिद्ध नहीं हो रहा है ।''

कुमार ने कहा, ''तुम मेरे सामने यह प्रयोग वापस करो ।''

उन्होंने वह प्रयोग कुमार के सामने पुनः प्रारंभ किया और तब उन्हें सुवर्ण रस की सिद्धि हो गई ।

उन धातुवाहिक पुरुषों ने कहा, ''आपके प्रभाव से यह सुवर्ण रस सिद्ध हुआ है, अतः आप यह सुवर्ण ग्रहण करो ।''

कुमार ने कुछ भी लेने से इन्कार कर दिया । आखिर आग्रह करके भी उन लोगों ने कुमार के वस्त्रांचल में कुछ सुवर्ण बाँध ही दिया ।

श्रीपाल कुँवर क्रमशः आगे बढ़ता हुआ भरूच नगर में पहुँचा । वहाँ कुछ सुवर्ण देकर उसने सुंदर वस्त्र-अलंकार आदि खरीदे । उसके बाद वह देवकुमार की भाँति लीलापूर्वक नगर में घूमने लगा । घूमते-घूमते वह एक उद्यान में जा पहुँचा ।

इधर कोशांबी नगरी में धवल नाम का सेठ रहता था । उसके पास अमाप संपत्ति थी । वह देश-विदेश में व्यापार करता हुआ अनेकविध सामग्री के साथ भरूच नगर में आया । वहाँ उसने बहुत सा व्यापार किया । उसके पास कुल 500 सामुद्रिक वाहन थे । भरूच से प्रयाण के पूर्व उसने बहुतसा

माल खरीदा । उसके पास 10,000 सैनिक भी थे । धवल सेठ ने प्रयाण का दिन निश्चित किया...परंतु दुर्भाग्य से खूब प्रयत्न करने पर भी 500 वाहन चले नहीं । इस घटना को देख धवल सेठ को चिंता होने लगी । वह वाहन से नीचे उतर कर किसी सिकोत्तरी नारी के पास गया और उसने वाहनों के स्तंभित होने का कारण पूछा ।

उस नारी ने कहा, ``किसी देवता ने तुम्हारे वाहन स्तंभित कर दिए हैं, अतः जब तुम 32 लक्षण युक्त किसी पुरुष की बलि दोगे, तभी ये वाहन आगे चल सकेंगे ।''

धवल सेठ के मन में बत्तीस लक्षण युक्त पुरुष को पाने की चिंता सताने लगी ।

सभी को अपने प्राण प्यारे होते हैं, अपना बलिदान देने के लिए कौन तैयार होगा ?

आखिर धवलसेठ कीमती भेंट लेकर राजा के पास गया और उसने राजा से विनंति की ``हे राजन् ! मेरे वाहन स्तंभित हो गए हैं, अतः बलि चढ़ाने के लिए कोई पुरुष प्रदान करें ।'

राजा ने कहा, ``इस नगर में यदि कोई अनाथ या परदेशी व्यक्ति मिल जाए तो उसे पकड़कर तुम उसकी बलि दे सकोगे ।''

धवल सेठ के सैनिकों ने नगर में आए किसी परदेशी व्यक्ति की खोज चालू की । काफी देर तक खोज करने के बाद उन्हें कोई अज्ञात पुरुष नहीं मिल पाया । आखिर में उन्हें उद्यान में बैठे श्रीपाल कुँवर मिल गए ।

उन्होंने सोचा, ``यह परदेशी व्यक्ति है, अतः क्यों न इसकी बलि दे दी जाए ।''

राजा का आदेश प्राप्त कर धवल सेठ के सैनिक श्रीपाल कुँवर को पकड़ने की तैयारी करने लगे । तभी कुमार ने सिंह गर्जना करते हुए कहा, ``बलि देनी हो तो उस धवल पशु की दो, क्या कभी सिंह की बलि दी जाती है ?''

धवल के सैनिक कुछ बल प्रयोग करें, इसके पूर्व तो श्रीपाल कुँवर की सिंहगर्जना को सुनकर कई सैनिक इधर-उधर भागने लगे ।

धवल की विनंति को स्वीकार कर श्रीपाल को पकड़ने के लिए राजा ने भी अपने चुने हुए सैनिक भेजे...परंतु उन सैनिकों के द्वारा फेंके गए सभी हथियार निष्फल ही गए। औषधि के प्रभाव से श्रीपाल को थोड़ा भी आघात नहीं लगा, जबकि श्रीपाल के शस्त्रप्रहार से कई सैनिक मूर्छित होकर भूमि पर गिर पड़े तो कई सैनिकों के नाक, कान आदि का विच्छेद हो गया...परंतु दयालु कुमार ने किसी भी सैनिक को मारा नहीं।

हजारों सैनिक मिलकर भी श्रीपाल कुँवर को परास्त नहीं कर सके यह दृश्य देखकर धवल सेठ ने सोचा, ***''प्रचुर माहात्म्य को धारण करने वाला यह पुरुष या तो विद्याधर होना चाहिए अथवा देव पुरुष। अतः ऐसे पुरुष के साथ बल से नहीं किंतु छल से ही काम लेना चाहिए।''*** इस प्रकार सोचकर धवलसेठ ने हाथ जोड़कर कुँवर से विनती करते हुए कहा, ''आपके इस प्रभाव को देखकर लगता है कि आप कोई सामान्य पुरुष नहीं हैं, अतः आप मुझ पर कृपा करें और मेरे स्तंभित हुए वाहनों को चला दें।''

कुमार ने कहा, ''तुम्हारे वाहनों को चला दूँ तो तुम मुझे क्या दोगे ?''

सेठ ने कहा, ''एक लाख दीनार।''

कुमार ने सेठ की बात स्वीकार कर ली और थोड़ी ही देर में वह समुद्र तट पर आ पहुँचा। अनेक लोगों के साथ श्रीपाल कुँवर मुख्य यान में चढ़ गया। उसके बाद उसने सभी वाहनों के वाहनचालकों को तैयार रहने का आदेश दिया।

तत्क्षण कुमार ने नवपद का ध्यान किया और जोर से आवाज दी। कुमार की आवाज सुनकर दुष्टदेवी भाग गई और उसी समय वे सभी वाहन चलने लगे।

अचानक हुए इस चमत्कार को देखकर धवल सेठ के आश्चर्य का पार न रहा। उसने सोचा, ''यदि यह विद्याधर पुरुष समुद्रयात्रा में हमारे साथ रहे तो हमें किसी प्रकार के विघ्न नहीं होंगे।'' इस प्रकार विचार कर धवल ने श्रीपाल कुँवर को पूर्व निश्चित एक लाख सोना मोहर दे दी और बोला, ''हे भाग्यशाली ! मेरी इस सामुद्रिक यात्रा में मेरे पास 10,000 सैनिक हैं। मैं प्रत्येक को प्रतिवर्ष 1000 दीनारें देता हूँ। यदि तुम भी मेरे यहाँ नौकरी करना चाहते हो तो बोलो तुम कितना वेतन लोगे ?''

धवलसेठ की यह बात सुनकर श्रीपाल कुँवर ने हँसते हुए कहा ``तुम इन सबको जितना वेतन देते हो उतना वेतन यदि मुझे दो तो मैं तुम्हारे यहाँ नौकरी करने के लिए तैयार हूँ ।''

कुमार की यह बात सुनकर धवलसेठ ने हिसाब लगाया और बोला, ``मैं इन 10,000 को 1 करोड़ दीनार देता हूँ और उतना ही वेतन तुम माँगो, यह बात उचित नहीं है । क्या तुम अकेले 10,000 व्यक्तियों से अधिक काम कर सकोगे ?''

पुनः धवलसेठ ने कहा, ``हाँ ! यदि तुम वेतन के रूप में 10,000 दीनारें लेना चाहते हो तो मैं देने के लिए तैयार हूँ...परंतु इससे अधिक देने की मेरी तैयारी नहीं है ।''

कुमार ने कहा, ``आप तो मेरे लिए पिता तुल्य हो, आपसे मुझे कुछ भी वेतन नहीं चाहिए । मैं देशांतर जाना चाहता हूँ । अतः मैं भी आपके साथ चलूंगा । यदि भाड़ा लेकर मुझे साथ में चलने दोगे तो मुझे बड़ी खुशी होगी ।''

सेठ ने कहा, ``मुझे प्रति मास 100 दीनार देना ।''

कुमार ने भाड़ा देने की बात स्वीकार कर ली ।

भाड़ा देकर श्रीपाल कुँवर मुख्य वाहन में चढ़ गया । थोड़ी ही देर बाद प्रयाण की भेरी बज उठी...क्रमशः सभी वाहन आगे बढ़ने लगे ।

इंसान जब चलता है, तब उसकी छाया की भाँति उसका पुण्य-पाप कर्म उसके साथ ही चलता है । पुण्य का पवन अनुकूल हो तो चारों ओर प्रतिकूल परिस्थितियों में भी जीवात्मा आनंद की अनुभूति कर सकती है...और पुण्य का पवन प्रतिकूल हो तो अनुकूल परिस्थितियों में भी सर्वत्र प्रतिकूलताएँ खडी हो जाती हैं ।

श्रीपाल कुँवर धवलसेठ के साथ रत्नद्वीप की ओर जा रहा था । श्रीपाल कुँवर सामुद्रिक यात्रा का आनंद ले रहा था । बीच मार्ग में जल व ईंधन भरने के लिए धवलसेठ के सभी यान बर्बर कुल पर आ पहुँचे । सभी लोग बर्बर बंदरगाह पर नीचे उतरे । धवलसेठ भी यान से नीचे उतरा । उसी समय बर्बर देश के महाकाल राजा के आदेश से नियुक्त पुरुष कर वसूल करने के लिए सेठ के पास आए । परंतु सेठ ने कर (टैक्स) देने से इन्कार कर दिया ।

बस, राजा की आज्ञा का भंग करने के कारण राजा के सैनिक युद्ध के लिए तैयार हो गए । उसी समय धवल सेठ ने भी अपने सैनिकों को उकसाया, वे भी लड़ने के लिए तैयार हो गए । युद्ध के प्रसंगों को जानकर राजा भी अश्वरत्न पर आरूढ़ होकर वहाँ पर उपस्थित हो गया । महाकाल व धवलसेठ के सैनिकों के बीच भयंकर युद्ध प्रारंभ हुआ । प्रारंभ में तो धवलसेठ के सैनिकों ने अपना अद्‌भुत पराक्रम दिखलाया...परंतु महाकाल राजा के आगमन के बाद महाकाल के सैनिकों में अपूर्व उत्साह आ गया । बस, महाकाल के सैनिकों के आगे धवल सेठ के सैनिक टिक नहीं पाए...वे सब अपने प्राण बचाने के लिए इधर-उधर भाग गए । उन सैनिकों ने धवल सेठ को वृक्ष से बाँध दिया । उसके बाद राजा नगर की ओर आगे बढ़ा ।

राजा के नगर में चले जाने के बाद श्रीपाल कुँवर धवलसेठ के पास आया और बोला, ''तुम्हारे वे सब सैनिक कहाँ चले गए जिन्हें तुम 1 करोड़ दीनारें देते हो ?''

धवल ने कहा, ''घाव पर नमक छिड़कने जैसी बात क्यों कर रहे हो ? एक तो मैं दुःखी हूँ और उस पर ऐसी बातें करते हो ?''

कुमार ने कहा, ''मैं तुम्हें परेशान करने की बात नहीं कर रहा हूँ, मेरा तो कहना है कि तुमने मुझे उतना वेतन दिया होता तो आज तुम्हारी ऐसी दुर्दशा नहीं होती । खैर, अभी भी कुछ बिगड़ा नहीं है, अभी मैं तुम्हे मुक्त करा दूँ तो तुम मुझे क्या दोगे ?''

धवल ने सोचा, ''यह अकेला मुझे कैसे मुक्त करा सकेगा ? जो कार्य मेरे 10,000 सैनिक नहीं कर पाए वह कार्य यह कैसे कर पाएगा ?'' इस प्रकार सोचकर धवल ने कहा, ''यदि तुमने मुझे मुक्त करा दिया तो मैं मेरे 250 वाहन तुम्हे दे दूंगा ।''

बस, धवल सेठ की यह बात सुनकर तत्क्षण कुमार ने धनुष-बाण हाथ में उठा लिया । आगे चलकर उसने बर्बर देश के महाराजा महाकाल को ललकारा ।

श्रीपाल की ललकार सुनकर महाकाल ने पीछे मुड़कर देखा । श्रीपाल के अद्‌भुत रूप व लावण्य को देखकर महाकाल ने कहा, ''अरे ! तुम व्यर्थ क्यों मरने जा रहे हो ?''

कुमार ने कहा, ``राजन् ! तुम्हारे इस आडंबर से तो कायर पुरुष डरते हैं, परंतु तेरे तीक्ष्ण बाणों से भी मुझे किसी प्रकार का डर नहीं है ।''

इस प्रकार सिंह की भाँति गर्जना कर रहे श्रीपाल कुँवर पर राजा ने बाणों की बौछार चालू कर दी । परंतु आश्चर्य ! कुमार को एक भी बाण नहीं लगा । इधर कुमार के बाण छोड़ने से कई सैनिकों के अंग भंग हो गए । कई सैनिक इधर-उधर भागने लगे । कितने ही सैनिक भूमि पर गिर पड़े ।

महाकाल राजा ने भी बहुत से बाण छोड़े, परंतु औषधि के प्रभाव से कुमार को एक भी बाण नहीं लगा ।

अवसर देखकर श्रीपाल कुँवर ने महाकाल को रथ से नीचे गिरा दिया और उसे बंधनग्रस्त बनाकर धवलसेठ के पास ले आया ।

श्रीपाल ने धवल को बंधन मुक्त कर दिया । उसी समय बदले की भावना से धवलसेठ महाकाल को खत्म करने के लिए तैयार हो गया । उसने अपने हाथों में तलवार उठा ली । परंतु तत्क्षण श्रीपाल ने उसे रोक दिया ।

श्रीपाल ने कहा, ``बंधनग्रस्त या शरणागत पर आक्रमण करना शूरवीरता नहीं, किंतु कायरता है ।''

श्रीपाल ने महाकाल राजा को भी बंधन से मुक्त कर दिया ।

धवलसेठ के जो 10,000 सैनिक इधर-उधर भाग गए थे, वे लौट आए । धवलसेठ ने उन्हें वेतन देने से इन्कार कर दिया । वे सभी सैनिक श्रीपाल की सेवा में उपस्थित हो गए । श्रीपाल ने उन सबको नौकरी दे दी । राजा को बंधन मुक्त करने के बाद श्रीपाल ने सुंदर वस्त्र-अलंकार आदि से राजा का स्वागत किया ।

उत्तम पुरुषों के योग्य श्रीपाल के व्यवहार को देखकर राजा एकदम खुश हो गया ।

राजा ने श्रीपाल को आमंत्रण देते हुए कहा, ``आप भी हमारे महल में अवश्य पधारें । हमें भी यत्किंचित् सेवा का मौका दें ।''

राजा के आग्रह को देखकर श्रीपाल ने नगर में जाने का निश्चय किया । कुमार ने धवलसेठ को आने के लिए आमंत्रण दिया, परंतु धवलसेठ ने मना कर दिया । **पापी व्यक्ति सर्वत्र शंकाशील ही होते हैं ।**

धवलसेठ के मन में यह शंका थी कि शायद यह राजा नगर में ले जाकर हम सबको मरवा दे ।

परंतु श्रीपाल कुँवर निर्भय था । उसके मन में किसी प्रकार की शंका नहीं थी ।

इधर महाकाल राजा ने श्रीपाल के भव्य स्वागत के लिए नगर को ध्वजा-पताका-तोरण-द्वार आदि से सजा दिया ।

श्रीपाल कुँवर ने धूमधाम के साथ नगर में प्रवेश किया । महाराजा महाकाल ने श्रीपाल कुँवर को अपने आसन पर बिठाया और बोला, ``मेरा राज्य और मेरे प्राण भी आपके आधीन हैं ।''

राजा ने अत्यंत ही आग्रह करते हुए कहा, ``मेरी पुत्री **मदनसेना** यौवनवय को प्राप्त हो चुकी है, अतः आप उसके साथ पाणिग्रहण कर हमें कृतार्थ करें ।''

कुमार ने कहा, ``मैं तो परदेशी हूँ, मेरे कुल-वंश को पहिचाने बिना आप अपनी पुत्री देने के लिए तैयार हो गए, यह उचित नहीं है ।''

महाकाल ने कहा, **``आपके बाह्य आचरण से ही आपके कुल का पता लग गया है । अतः आप हमारी प्रार्थना भंग न करें ।''**

राजा के अति आग्रह को देखकर श्रीपाल कुँवर ने राजा की बात स्वीकार कर ली ।

राजा ने बहुत ही धूमधाम के साथ अपनी पुत्री मदनसेना का विवाह श्रीपाल कुँवर के साथ किया । राजा ने अपनी पुत्री को दहेज में बहुत सी संपत्ति भी दी ।

दूसरे दिन श्रीपाल अपनी पत्नी मदनसेना के साथ समुद्र तट पर आ पहुँचा । अपनी पुत्री को विदाई देने के लिए राजा भी वहाँ पर आया ।

श्रीपाल कुँवर के अपूर्व वैभव को देखकर ईर्ष्यावश धवल सेठ मन ही मन सोचने लगा, ``अहो ! यह क्या हो गया ? सेवक समान एक व्यक्ति के पास इतनी संपत्ति हो गई ? फिर भी आश्चर्य है कि यह मुझे अपना भाड़ा भी नहीं दे रहा है ।''

विचक्षण कुमार धवलसेठ के अभिप्राय को इशारे से समझ गया, उसने उसी समय 10 गुणा भाड़ा धवल सेठ को दे दिया ।

श्रीपाल व धवलसेठ अपने-अपने वाहनों में बैठ गए । राजा भी अपनी पुत्री को भावभरी विदाई देकर अपने नगर में लौट आया ।

कप्तानों ने वाहन चालू किये । वाहन आगे बढ़ने लगे । श्रीपाल कुँवर लीलापूर्वक समुद्र की जलतरंगों को तथा विविध नाटकों को देखकर अपना समय व्यतीत करने लगा ।

पवन अनुकूल ही था, अतः कुछ ही दिनों में धवल सेठ के सभी वाहन रत्नद्वीप के तट पर पहुँचे । धवलसेठ को तो अपना माल-सामान बेचने की चिंता सता रही थी...परंतु कुमार को ऐसी कोई चिंता नहीं थी ।

धवलसेठ ने कहा, ``क्या आपको यहाँ अपना माल नहीं बेचना है ?''

कुमार ने कहा, ``आप में और मुझ में कहाँ अंतर है ? आप अपने माल के साथ मेरा भी माल बेच देना ।''

कुमार की यह बात सुनकर धवलसेठ ने तत्काल हाँ भर दी । धवलसेठ के मन तो व्यापार चिंतामणि रत्न से भी बढ़कर था । उसने सोचा, ``कुमार का माल बेचने में कुछ दलाली तो मिलेगी ।''

धवलसेठ तो व्यापार के कामकाज में व्यस्त हो गया । इधर श्रीपाल कुँवर नाटक आदि देखने में ही मस्त था ।

इसी समय उत्तम अश्वरत्न पर आरूढ़ होकर सुंदर वस्त्र धारण करने वाला देव समान कोई पुरुष वहाँ आया । और सीधे ही कुमार के बैठक खंड में पहुँच गया । उसने कुमार को नमस्कार किया । कुमार ने भी उसे योग्य आसन प्रदान किया । उसके बाद वह भी कुमार के पास जाकर बैठ गया । सामने नाटक चल ही रहा था । क्षणभर दिव्य नाटक देखने के बाद उस आगंतुक व्यक्ति ने अनुमान किया कि अवश्य ही यह पुरुष राजपुत्र होना चाहिए ।

थोड़ी देर के बाद जब नाटक समाप्त हुआ, तब कुमार ने पूछा, ``हे महानुभाव ! तुम कौन हो ? तुम किस नगर के निवासी हो ? क्या तुमने कोई आश्चर्य देखा है ?''

कुमार के इन प्रश्नों का जवाब देते हुए आगंतुक पुरुष ने विनयपूर्वक कहा, ``हे पुण्यात्मन् ! इस द्वीप में रत्नसात् नाम का पर्वत है । इस पर्वत के मध्य में रत्नसंचया नाम की नगरी है । उस नगरी में कनककेतु नाम का

राजा राज्य करता है । उस राजा के कनकमाला नाम की मुख्य रानी है । उस रानी की कुक्षि से कनकप्रभ, कनकशेखर, कनकध्वज और कनकरुचि नाम के चार पुत्रों पर **मदनमंजूषा** नाम की पुत्री उत्पन्न हुई । यौवनवय को प्राप्त होने पर वह मदनमंजूषा स्त्रियों की 64 कलाओं में निपुण बनी । यौवनवय के साथ ही उसका रूप-सौंदर्य एकदम खिल उठा ।

उस नगर में जिनदेव नाम का एक श्रावक रहता है, उस श्रावक का मैं पुत्र हूँ । मेरा नाम जिनदास है, मैंने जो आश्चर्य देखा वह मैं आपको सुनाता हूँ ।

इस नगर में कनककेतु महाराजा के पितामह के द्वारा निर्मित भव्या-तिभव्य जिनालय है । उस जिनालय में स्वर्ण-रत्नों से निर्मित ऋषभदेव प्रभु की दिव्य प्रतिमा है । वह विद्याधर राजा प्रतिदिन भक्तिभाव पूर्वक जिनेश्वर देव की पूजा-भक्ति करता है । राजपुत्री मदनमंजूषा भी प्रतिदिन प्रभुजी की उत्तम द्रव्यों से अष्टप्रकारी एवं त्रिकालपूजा करती है ।

एक दिन वह राजपुत्री भाव-पूर्वक परमात्मा की द्रव्य पूजा पूर्ण कर भाव-पूजा स्वरूप चैत्यवंदन कर रही थी । इसी बीच राजा भी वहाँ उपस्थित हो गया । राजा ने अपनी पुत्री की पूजाविधि देखी और वह एकदम खुश हो गया ।

हर्ष से पुलकित अंगवाला राजा मन-ही-मन सोचने लगा, ''मेरी पुत्री ने प्रभुजी की सुंदर अंगरचना की है । प्रभुभक्ति में उसने अपनी अपूर्व कला दिखाई है । वास्तव में, मेरी पुत्री धन्य है, कृतपुण्या है । मेरी इस पुत्री के योग्य वर की प्राप्ति हो जाए तो मेरे मन को शांति मिले । अपनी पुत्री के योग्य वर की चिंता से राजा क्षणभर के लिए ध्यान मग्न की भाँति शून्यमनस्क होकर वहाँ बैठ गया ।

राजपुत्री भी पूजा की समाप्ति के बाद गर्भगृह से बाहर निकल आई । जैसे ही वह राजपुत्री गर्भगृह में से बाहर निकली, तत्क्षण गर्भगृह के द्वार बंद हो गए । बहुत प्रयत्न करने पर भी वे द्वार खुल नहीं पाए ।

उस समय वह राजपुत्री मन-ही-मन शोकातुर हो गई और आत्म निंदा करने लगी ।

वह सोचने लगी, ''अहो ! क्या मुझसे कोई आशातना हो गई है ? क्या मेरे मन में कोई अशुभ भाव पैदा हुआ है ? हे प्रभो ! हे नाथ ! आप मेरे

अपराध को क्षमा करें। और पुण्यहीन ऐसी मुझे आप पुनः दर्शन प्रदान करें।'' इस प्रकार सोचती हुई राजपुत्री की आँखों में से आँसुओं की धारा बहने लगी।

अपनी पुत्री को रोती हुई देखकर राजा ने कहा, ''बेटी ! इसमें तेरा कोई अपराध नहीं है, अपराधी तो मैं स्वयं ही हूँ।...जिनमंदिर में जब तुम पूजा कर रही थीं, तब तुम्हारी पूजा को देखकर तुम्हारे वर की चिंता से मैं शून्यमनस्क हो गया था। बस, जिनमंदिर में सांसारिक चिंता के द्वारा मैंने जो प्रभु की आशातना की, उसी का यह परिणाम है कि मंदिर का द्वार बंद हो गया है...अतः अपराधी तू नहीं है, अपराधी मैं स्वयं ही हूँ।''

यद्यपि वीतराग परमात्मा भक्ति से न तो कभी प्रसन्न होते हैं और न ही आशातना करने से नाराज होते हैं। परंतु यह सब जिनेश्वर के अधिष्ठायक देव का ही कार्य है, वे ही प्रभु की भक्ति से प्रसन्न होते हैं और वे ही प्रभु की आशातना से नाराज।

तत्क्षण राजा ने अपने नौकरों के पास धूप, दीप, फल तथा फूल आदि उत्तम सामग्री मँगवाई और देवता को प्रसन्न करने के लिए पूजाविधि प्रारंभ की।

राजा व राजपुत्री के दो उपवास हो गए...फिर भी रंगमंडप का द्वार नहीं खुला। सामंत, मंत्री व नगरवासी सभी लोग विषादग्रस्त हो गए।

कुछ लोग राजकन्या की निंदा करने लगे तो कुछ लोग राजा की।

धूप-दीप आदि से विविध पूजा करते हुए दो रातें बीत गईं...तीसरी रात्रि के अंतिम प्रहर में अचानक इस प्रकार आकाशवाणी हुई, **''जिनमंदिर का द्वार बंद होने में न तो राजकुमारी का दोष है और न ही राजा का, जिस कारण से ये द्वार बंद हुए हैं, उस कारण को तुम ध्यान से सुनो।''**

आकाशवाणी के इन शब्दों को सुनकर राजा, राजपुत्री व सभी प्रजाजन एकदम खुश हो गए।

आगे चलकर इस प्रकार आकाशवाणी हुई-

''जिस नररत्न की दृष्टि से जिनमंदिर के द्वार खुलेंगे, वही मदन मंजूषा का पति होगा।''

यह बात सुनकर सभी लोग प्रसन्न हो गए और मन-ही-मन सोचने लगे, ``यह किसकी वाणी होगी ?''

लोग इस प्रकार सोच ही रहे थे कि पुनः आकाशवाणी हुई, ``मैं श्री ऋषभदेव प्रभु की अधिष्टायिका चक्रेश्वरी देवी हूँ, एक मास के भीतर अवश्य ही मदनमंजूषा के योग्य वर को ले आऊंगी ।''

इस आकाशवाणी को सुनकर राजा व प्रजा सभी खुश हो गए ।

राजा ने अपने गृह-मंदिर में जिनेश्वर की पूजा-विधि पूर्ण कर पारणा किया ।

चारों ओर लोगों में यह बात फैल गई । दूर-दूर से अनेक लोग जिनमंदिर के द्वार पर आने लगे, परंतु द्वार नहीं खुलने पर विषाद-ग्रस्त होकर अपने अपने घर जाने लगे । धीरे-धीरे समय बीतने लगा । इस घटना को हुए लगभग एक मास पूर्ण होने आया है ।

``हे राजकुमार ! नगर में यही एक आश्चर्यकारी घटना बनी है, अतः आप वहाँ पधारे । आपकी दृष्टि से जिनमंदिर के द्वार खुल जाँय तो चक्रेश्वरी देवी की वाणी भी सिद्ध हो जाएगी । जिनमंदिर के द्वार खुलने से हमारे भी भाग्य खुल जायेंगे ।''

आगंतुक भाई की यह बात सुनकर श्रीपालकुंवर तत्क्षण नगर में जाने के लिए तैयार हो गया । वह घोड़े पर चढ़ गया । उस समय उसने धवलसेठ को भी जिनमंदिर चलने के लिए आमंत्रण दिया । श्रीपाल का आमंत्रण पाकर धवलसेठ ने कहा, ``यह सब तुम्हारा काम है, तुम्हें तो बिना काम किए धन मिल जाता है...हमें तो खाने की भी फुर्सत नहीं है...अतः तुम जाओ, मेरा तो बहुत काम बाकी है ।''

सेठ की यह बात सुनकर श्रीपाल कुँवर अपने विशाल परिवार के साथ जिनमंदिर के निकट आ पहुँचा ।

वहाँ पहुँचने पर कुमार ने अपने साथियों को कहा, ``तुम अलग-अलग होकर मंदिर के द्वार तक पहुँचो, ताकि पता लग जाए कि किसकी दृष्टि से मंदिर का द्वार खुला है ?''

श्रीपाल की यह बात सुनकर सभी ने कहा, `स्वामिन् ! आप ऐसे शब्द न बोलें । ***क्या सूर्य को छोड़कर कभी कमलवन विकसित होता है ? क्या चंद्र की चाँदनी के बिना कभी कुमुदवन उल्लसित होता है ? क्या वसंत ऋतु के***

बिना कभी वनराजी खिलती है ? हे देव ! आप के बिना मंदिर का द्वार कैसे खुल सकता है ?''

अपने साथियों की यह बात सुनकर कुमार अश्व से नीचे उतर गया । उसने उत्तरीय धारण किया, उसके बाद **'निसीहि'** कहकर जिनमंदिर में प्रवेश किया ।

बस, श्रीपाल की दृष्टि पड़ते ही गर्भगृह के द्वार तत्काल खुल गए । श्रीपाल ने अत्यंत ही भावपूर्वक प्रभु की स्तुति की । उसने प्रभु के आगे सर्वश्रेष्ठ फल रखा ।

मंदिर के द्वार उघड़ते ही, तत्काल ये समाचार राजा तक पहुँचा दिए गए । समाचार मिलते ही राजा अपनी पुत्री के साथ मंदिर के पास आ गया ।

प्रभु की द्रव्य और भाव पूजा पूर्ण कर श्रीपाल कुँवर मंदिर के बाहर आया ।

श्रीपाल ने महाराजा को हाथ जोड़कर प्रणाम किया ।

राजा ने कहा, ''जिनमंदिर के द्वार उघाड़कर आपने सभी को आश्चर्य में डाल दिया है, अब आप अपना कुल-वंश आदि चरित्र प्रकाशित कर सभी को खुश करो ।''

कुमार ने सोचा, **''उत्तम पुरुष अपने मुँह से अपना नाम भी नहीं बतलाते हैं तो मैं अपने मुँह से अपना चरित्र कैसे कहूँ ?''** कुमार इस प्रकार सोच ही रहा था कि तत्क्षण आकाश मार्ग से चारण मुनि वहाँ आ गए ।

चारण मुनि ने प्रभु को नमस्कार किया । उसके बाद वे जिनालय से बाहर आए । राजा व प्रजाजन, चारण मुनि को वंदन कर योग्य स्थान पर बैठ गए ।

चारण मुनि ने अपनी धर्मदेशना में नवपद का माहात्म्य समझाया और कहा, ''नवपद की आराधना के प्रभाव से सभी प्रकार के दुःख और दारिद्र्य दूर हो जाते हैं और मनुष्य कदम-कदम पर अमाप समृद्धि प्राप्त करता है । नवपद के प्रभाव से श्रीपाल जैसी समृद्धि प्राप्त करता है ।''

राजा ने पूछा, ''हे भगवन् ! ये श्रीपाल कौन हैं ?''

उसी समय चारण मुनि ने अपनी अंगुली से इशारा कर श्रीपाल का परिचय दिया । चारण मुनि की बात सुनकर राजा एकदम खुश हो गया ।

राजा ने कहा, ''भगवंत ! आप उनका चरित्र प्रगट करने की कृपा करें ।''

चारण मुनि ने अपनी धर्मदेशना में नवपद का माहात्म्य समझाया और खूब विस्तार से श्रीपाल का चरित्र सुनाया ।

नवपद की आराधना के पुण्य प्रभाव से यह अनेक राजकन्याओं के साथ पाणिग्रहण करेगा और पिता के राज्य को प्राप्त कर महाराजा बनेगा । श्री सिद्धचक्र की भक्ति के प्रभाव से यह भविष्य में स्वर्ग के सुखों को प्राप्त करेगा और अंत में शाश्वत पद प्राप्त करेगा । जो कोई पापी आत्मा इसके विरुद्ध आचरण करेगा, वह तत्काल विपरीत फल प्राप्त करेगा ।

'श्री सिद्धचक्र के प्रभाव से आपत्ति भी संपत्ति में बदल जाती है ।' इतना कहकर विद्याचरण मुनि आकाश मार्ग से अन्यत्र चले गए ।

बस, राजा ने खूब धूमधाम से अपनी पुत्री **मदनमंजूषा** का विवाह श्रीपाल कुँवर के साथ कराया । राजा ने अपनी पुत्री को बहुत सी संपत्ति प्रदान की...और उनके रहने के लिए सुंदर महल प्रदान किया ।

वहाँ रहते हुए श्रीपाल कुँवर प्रतिदिन जिनमंदिर में जाते और अत्यंत ही उल्लास पूर्वक परमात्मा की पूजा-भक्ति करते थे ।

चैत्र मास आने पर श्रीपाल कुँवर ने विधिपूर्वक नवपद की ओली की और सिद्धचक्र भगवंत की अपूर्व उत्साह के साथ भक्ति की ।

एक बार जिनालय के बाह्य मंडप में बैठकर राजा और श्रीपाल कुँवर परमात्मा की भक्ति कर रहे थे, तभी दंडपाशिक ने आकर राजा को विज्ञप्ति करते हुए कहा, ''राजन् ! एक सार्थवाह कर (टैक्स) देने से इन्कार कर रहा है, अतः उसने आपकी आज्ञा का भंग किया है । मैंने उसे कैद किया है । आप आज्ञा करें उसे कौन सी सजा दी जाय ?''

राजा ने कहा, ''आज्ञा भंग करने वाले को तो मृत्युदंड देना चाहिए ।''

राजा के इन वचनों को सुनकर श्रीपाल कुँवर ने कहा, ''राजन् ! आप जिनमंदिर में बिराजमान हो, यहाँ रहते हुए किसी को मृत्युदंड का आदेश देना उचित नहीं है । जिनमंदिर में सावद्य हिंसात्मक भाषा का प्रयोग करना महा अपराध है ।''

श्रीपाल की यह बात सुनकर राजा ने उस सार्थपति को बंधनमुक्त कराकर अपने पास बुलाया । सार्थपति को देखते ही श्रीपाल कुँवर पहिचान गया कि यह तो धवलसेठ ही है ।

कुमार मन में सोचने लगा, ''अहो ! इस सेठ ने ऐसा अपराध क्यों किया ? अथवा लोभ के वशीभूत जीव कौन सा अपराध नहीं करता है ?''

कुमार ने कहा, ''राजन् ! ये तो मेरे लिए पिता तुल्य हैं । आप इनके अपराध को क्षमा कर दें ।''

राजा ने धवलसेठ को क्षमा कर दिया ।

एक दिन धवलसेठ ने श्रीपाल कुँवर को संदेशा भिजवाया कि उसके व्यापार का कार्य पूरा हो चुका है, अतः आगे चलना हो तो जाने की तैयारी करें । धवलसेठ का संदेश मिलते ही श्रीपाल कुँवर विदेशयात्रा में आगे चलने के लिए तैयार हो गया । उसने राजा से बात की ।

राजा ने कुछ दिन अधिक ठहरने के लिए आग्रह किया परंतु कुमार ने इन्कार कर दिया । राजा ने श्रीपाल कुँवर व अपनी पुत्री को विदाई दी ।

विदाई के पूर्व अपनी पुत्री को हितशिक्षा देते हुए राजा ने कहा, ***''बेटी ! तू अपने जीवन में क्षमा भाव धारण करना । यदि तू सहनशील होगी तो तेरा जीवन खूब सुखमय बनेगा । अपने पति को देवतुल्य समझना । उनकी आज्ञा को भंग कभी मत करना । अपने सास, श्वसुर व ज्येष्ठ का खूब विनय करना । उनकी आज्ञा को शिरोधार्य करना । हमेशा प्रमाद का त्याग करना । गृह कार्य में उत्साह रखना । अपने कुल की जो मर्यादाएँ हैं, उनका कभी उल्लंघन मत करना । हमेशा अपने पति के पूर्व निद्रा का त्याग करना । अपनी सौत से बहन की तरह व्यवहार करना, उनके वचन का उल्लंघन मत करना ।***

अपने पति व समस्त परिवार को भोजन कराने के बाद भोजन करना । अपने घर में जो भी दास-दासी, नौकर-चाकर तथा गाय-भैंस आदि हों, उनकी बराबर संभाल रखना ।

जिनभक्ति व गुरु-भक्ति के कार्य में प्रमाद मत करना । अपने पतिव्रता धर्म का अच्छी तरह से पालन करना ।

हे बेटी ! ज्यादा तो तुझे क्या कहूँ ? अपने कुल व परिवार की इज्जत बढ़े, वैसी प्रवृत्ति करना ।''

शुभ मुहूर्त में प्रस्थान की भेरी बज उठी । धीरे-धीरे सभी वाहन आगे बढ़ने लगे । एक देव की भाँति दिव्य भोग-सुखों का अनुभव करता हुआ श्रीपाल कुँवर सुखपूर्वक अपने दिन व्यतीत करने लगा ।

5 धवलसेठ की दुर्जनता

ईर्ष्या एक भयंकर अग्नि है, जो आदमी को भीतर-ही-भीतर जलाती रहती है। बाहर की आग से बचना सरल है, परंतु ईर्ष्या की आग से बचना कठिन है।

रति और प्रीति के समान अपनी दो स्त्रियों के साथ विलास करते हुए श्रीपाल को देखकर धवलसेठ मन-ही-मन जलने लगा। वह सोचने लगा, ''अहो ! मेरा भाग्य कैसा रूठा हुआ है ? यह श्रीपाल अकेला खाली हाथ आया था...और अब तक 250 वाहनों का मालिक बन गया। दो-दो रूपवती कन्याओं के साथ इसका पाणिग्रहण हो गया। अहो ! इसकी ऋद्धि, सिद्धि और समृद्धि मुझसे देखी नहीं जा रही है।''

देवांगना जैसी कन्याओं को देखकर धवलसेठ कामातुर बन गया और श्रीपाल की वृद्धि को देख धवलसेठ अर्थातुर बन गया।

◆ ***अर्थ और काम, कंचन और कामिनी में जो लुब्ध हो गया. समझ लो उसका जीवन अंधकारमय बन गया।***

◆ ***जिस प्रकार मेघ की गर्जनाओं को सुनकर सागर सूखता जाता है, उसी प्रकार दूसरों की ऋद्धि-समृद्धि को देखकर ईर्ष्यालु मनुष्य सूखता जाता है।***

◆ ***वसंत ऋतु में जब सारी वन-राजी खिल उठती है, तब जवासा वनस्पति सूखने लगती है। बस, इसी प्रकार ईर्ष्यालु व्यक्ति दूसरों की समृद्धि को देखकर भीतर-ही-भीतर जलता रहता है।***

काम व लोभ में अंधे बने व्यक्ति के विवेक रूपी चक्षु नष्ट हो जाते हैं। काम में अंधे बनने के कारण धवलसेठ का खाना-पीना हराम हो गया। वह दिन-प्रतिदिन दुबला होने लगा। उसे कहीं भी चैन नहीं पड़ता था।

धवलसेठ की यह दुर्दशा देख उसके चारों मित्र इकट्ठे हुए और कहने लगे, ''सेठ ! आपको क्या तकलीफ है ? आपका स्वास्थ्य तो ठीक है न ? आप चिंताग्रस्त क्यों दिखाई दे रहे हो ? आप अपने दिल की बात हमें अवश्य कहो। आप अपने दु:ख-दर्द की बात मित्रों के आगे नहीं कहोगे तो किसके आगे कहोगे ? दु:ख दर्द की बात कहेंगे तो उससे मुक्त होने का उपाय भी मिल सकेगा।''

मित्रों की यह बात सुनकर धवल सेठ ने लज्जा छोड़कर अपने दिल की बात मित्रों के सामने रख दी ।

धवलसेठ की बात सुनकर तीन मित्रों ने कहा, **''पर-स्त्री गमन के समान कोई पाप नहीं है, यह पाप तो आत्मा को इस भीषण संसार में भटकाने वाला है ।** ये श्रीपाल कुँवर तो हम सबके उपकारी हैं, उन्होंने तो आपको मौत से बचाया है, ऐसे उपकारी को मार डालने का विचार करना, यह तो भयंकर अपराध है । अहो ! यह तो अपने गृह-आंगण में उगे हुए कल्पवृक्ष को उखाड़ने जैसी बालिश चेष्टा है । इस कुँवर ने तो आपको दो बार बचाया है । उनके ही प्रभाव से आपका माल सामान सुरक्षित बचा है । इन्होंने तो आपके स्तंभित वाहनों को चालू कराया था । ऐसे नररत्न की प्राप्ति तो इस जगत् में भी दुर्लभ है । फिर भी आप उनका द्रोह करोगे तो उनका कुछ भी बिगड़नेवाला नहीं है...परंतु आपको निरर्थक नुकसान हो जाएगा...अतः जान-बूझकर अपने भावी अनर्थ को आमंत्रण न दें ।''

इस प्रकार की उत्तम सलाह देकर चार मित्रों में से तीन मित्र तो अपने-अपने स्थान पर चले गए । किंतु चौथा मित्र वहीं बैठा रहा ।

उसने कहा, **''सेठ ! ये तीनों आपके मित्र नहीं, किंतु दुश्मन लगते हैं । मैं आपकी मनोकामना को पूर्ण करने के लिए सहायता करने हेतु तैयार हूँ । संकट के समय मित्र यदि सहायता न करे तो वह मित्र किस काम का ? आपकी इच्छापूर्ति के लिए मैं आपको एक सुंदर उपाय बतलाता हूँ ।**

आप श्रीपाल कुँवर की प्रकृति को जान लें । उसे नई-नई वस्तु देखने-जानने का बहुत शौक है । समुद्र में घूम रहे विविधरंगी, विविध आकृतिवाले जलचर प्राणियों को दिखलाने के बहाने आप उन्हें जहाज के तट पर लाकर खड़ा कर दें ।...और अवसर देखकर जिस डोरी को वे पकड़े हुए हों, उसी को काट दें...बस, तत्क्षण वे महासागर में गिर पड़ेंगे...और ये जलचर प्राणी उन्हें खा जाएंगे । बस, उसके बाद तो श्रीपाल की सारी संपत्ति आप की हो जाएगी और उसकी नवविवाहिता स्त्रियाँ भी आपको वर के रूप में स्वीकार कर लेंगी । इस प्रकार करने से आपकी सभी मनोकामनाएँ पूर्ण हो जाएंगी ।''

कौए को हमेशा नीम ही अच्छा लगता है । बस, इसी प्रकार दुर्जन व्यक्ति को हमेशा बुरी सलाह ही अच्छी लगती है ।

धवलसेठ को मित्र की यह सलाह एकदम जँच गई । उसने श्रीपाल की हत्या करने का सारा षड्यंत्र रच दिया । बस, दूसरे ही दिन से उसने श्रीपाल के पास विशेष आना-जाना प्रारंभ कर दिया । श्रीपाल की हर बात में वह रस लेने लगा । श्रीपाल भी खूब विश्वासपूर्वक धवलसेठ की हर बात को स्वीकार करने लगा ।

एक दिन धवलसेठ ने कहा, ''श्रीपाल ! आजकल समुद्र की सतह पर कई प्रकार के अजब-गजब के विविध प्राणी दिखाई दे रहे हैं, यदि तुम्हें देखने की इच्छा हो तो चलें, जहाज के किनारे खड़े होकर वे प्राणी खूब निकट से अच्छी तरह से देखे जा सकते हैं ।''

श्रीपाल कुँवर के मन में कुछ भी पाप नहीं था, उसने धवल की बात में हाँ भर दी । वह धवलसेठ के साथ जहाज के एकदम किनारे आ गया और डोरी को पकड़कर समुद्र के विविध प्राणियों को देखने लगा ।

बस, अवसर देखकर धवलसेठ व उसके मित्र ने वह डोरी काट दी...तत्क्षण श्रीपाल कुँवर समुद्र में जा गिरा ।

समुद्र में गिरते समय श्रीपाल के हृदय में नवपद का ध्यान था । **सिद्धचक्र के प्रत्यक्ष प्रभाव से सभी संकट दूर हो जाते हैं और आपत्ति भी संपत्ति में बदल जाती है ।** बस, श्रीपाल जैसे ही समुद्र में गिरा, नवपद के प्रभाव से, एक मगरमच्छ वहीं से जा रहा था, उसकी पीठ पर श्रीपाल सीधे ही जा गिरा । औषधियों के प्रभाव से जल का संकट दूर हो गया ।

वह मगरमच्छ जहाज की भाँति समुद्र तट की ओर आगे बढ़ने लगा... और देखते-ही-देखते वह कोंकण देश के समुद्र तट पर जा पहुँचा । समुद्र तट को देखकर श्रीपाल कुँवर उस मगरमच्छ की पीठ से नीचे उतर गया ।

तट पर पहुँचने के बाद वह कुछ आगे बढ़ा । कुछ ही दूरी पर चंपक का वृक्ष था । श्रीपाल कुँवर को कुछ थकावट भी लग रही थी, अतः वह चंपक वृक्ष के नीचे आकर आराम से सो गया । थोड़ी ही देर में उसे निद्रा आ गई ।

थोड़ी देर बाद श्रीपाल ने जैसे ही अपनी आँखें खोलीं, उसने अपनी आँखों के सामने हाथ जोड़कर सेवा में तत्पर कुछ सैनिकों को देखा । यह दृश्य देख श्रीपाल के आश्चर्य का पार न रहा ।

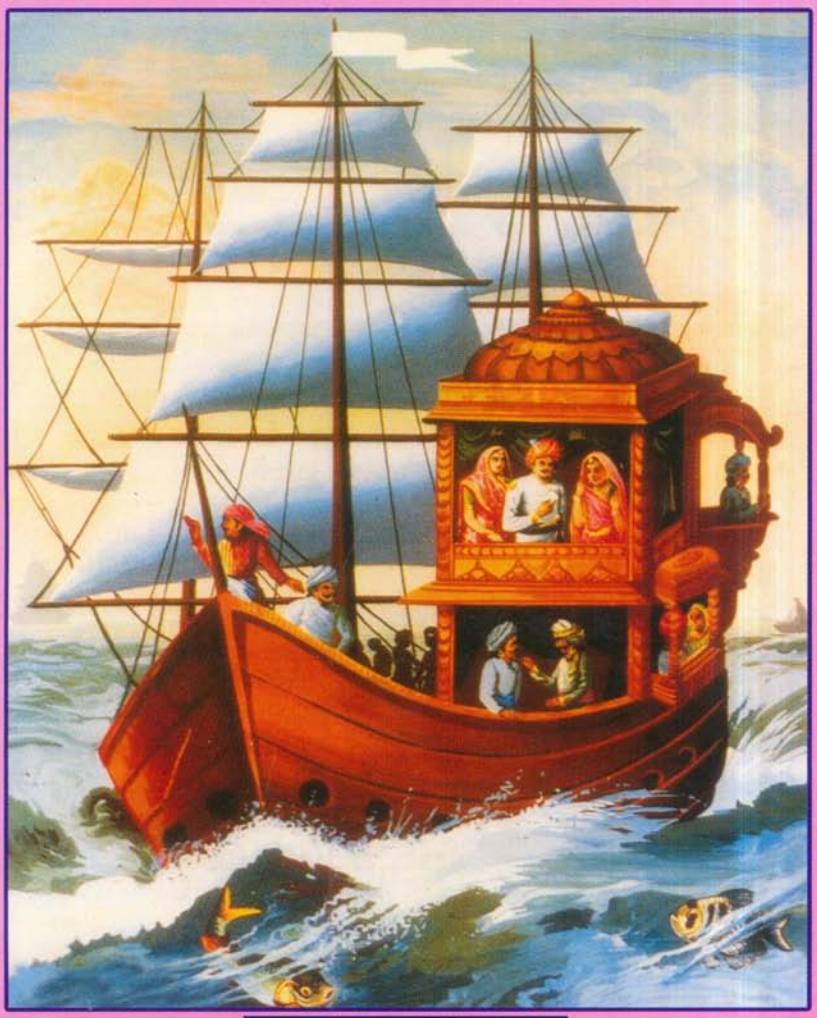

धवलसेठ की दुर्जनता

ईर्ष्या एक भयंकर अग्नि है, जो आदमी को भीतर-ही-भीतर जलाती रहती है । बाहर की आग से बचना सरल है, परंतु ईर्ष्या की आग से बचना कठिन है ।

रति और प्रीति के समान अपनी दो स्त्रियों के साथ विलास करते हुए श्रीपाल को देखकर धवलसेठ मन-ही-मन जलने लगा । वह सोचने लगा, ''अहो ! मेरा भाग्य कैसा रूठा हुआ है ? यह श्रीपाल अकेला खाली हाथ आया था...और अब तक 250 वाहनों का मालिक बन गया । दो-दो रूपवती कन्याओं के साथ इसका पाणिग्रहण हो गया । अहो ! इसकी ऋद्धि, सिद्धि और समृद्धि मुझ से देखी नहीं जा रही है ।''

देवांगना जैसी कन्याओं को देखकर धवलसेठ कामातुर बन गया और श्रीपाल की वृद्धि को देख धवलसेठ अर्थातुर बन गया ।

(पृष्ठ सं. 54 पर)

एक दिन राजा महल के झरोखे में बैठा हुआ था । उसने उसी समय नगर में भिक्षा के लिए परिभ्रमण कर रहे महात्मा को देखा । वह राजा रानी की बात को भूल गया और उसने चौकीदार को कहा, ''इस मुनि ने अपने नगर को बिगाड़ दिया है, अतः उन्हें नगर में से बाहर निकाल दो ।''

राजा के आदेशानुसार वह चौकीदार भिक्षा के लिए परिभ्रमण कर रहे मुनि को नगर से बाहर निकालने लगा । रानी ने यह दृश्य देख लिया । उसी समय वह कोपायमान होकर राजा को कहने लगी, ''स्वामिन् ! आप ऐसा क्यों करते हो ? मुनि पर उपसर्ग करने से तो भयंकर दुर्गति होती है । क्या आपको नरक में जाना है ?''

(पृष्ठ सं. 97 पर)

उसने कहा, ''तुम कौन हो ?''

सैनिकों ने अत्यंत ही नम्रतापूर्वक कहा, ''हे देव ! यहाँ पास में ही ठाणापुर (थाणा) नाम का नगर है। उस नगर में वसुपाल नाम का राजा है। उस राजा का यह आदेश है कि समुद्र के तट पर, जिसकी छाया चलित नहीं होती हो, ऐसे वृक्ष के नीचे दिन के अंतिम प्रहर में जो पुरुषरत्न बैठा दिखाई दे, उसे अश्व पर आरूढ़ कर यहाँ ले आओ।

राजा के आदेशानुसार आप इस वृक्ष के नीचे बैठे दिखाई दिए हैं, अतः कृपया आप अश्व पर आरूढ़ होकर नगर में पधारें।''

श्रीपाल कुँवर ने उन सैनिकों की बात में हाँ भर दी। वह तत्काल घोड़े पर सवार हो गया। थोड़ी ही देर में वह नगर के बाहर पहुँच गया। श्रीपाल कुँवर के स्वागत के लिए राजा ने पहले से ही सारे नगर को अच्छी तरह से सजा दिया था। खूब धूमधाम के साथ श्रीपाल कुँवर का भव्य नगरप्रवेश हुआ।

तत्पश्चात् भोजन-पान आदि द्वारा राजा ने श्रीपाल कुँवर का स्वागत किया। उसके बाद राजा ने कहा, ''मेरी पुत्री **मदनमंजरी** यौवन वय को प्राप्त हो चुकी है। कई दिनों से मुझे उसके वर की चिंता सता रही थी। कुछ दिनों पूर्व मेरी राजसभा में एक कुशल नैमित्तिक का आगमन हुआ था। मैंने उसे अपनी पुत्री के भावी वर के बारे में पूछा। उसने अपने निमित्तबल से जानकर कहा, ''आपकी पुत्री के योग्य वर की प्राप्ति वैशाख सुद 10 के शुभ दिन होगी।''

मैंने पूछा, ''कहाँ से मिलेगा ?''

उसने कहा, ''समुद्र तट पर चंपक वृक्ष के नीचे सोया हुआ मिलेगा। आकाश में सूर्य घूमता हुआ होने पर भी उसके शरीर पर से छाया नहीं हटेगी।''

निमित्तज्ञ के सभी संकेतों के अनुसार सागर तट पर आपका मिलन हुआ है, अतः आप मेरी पुत्री मदनमंजरी को स्वीकार करें।''

राजा के अति आग्रह को देखकर श्रीपालकुँवर ने हाँ भर दी। बस, उसी दिन अत्यंत धूमधाम से श्रीपाल कुँवर का मदनमंजरी के साथ पाणिग्रहण हो गया। राजा ने श्रीपाल कुँवर को रहने के लिए बड़ा महल प्रदान किया।

जरा पुण्य और पाप का खेल तो देखें। एक रात्रि पूर्व जिस श्रीपाल को मार डालने के लिए भीषण समुद्र में फेंका गया था, वो ही श्रीपाल अपने

पुण्य के बलबूते दूसरी ही रात्रि में राजा का दामाद बनकर सुविशाल महल में सुखपूर्वक रात्रि व्यतीत करने लग गया ।

जब व्यक्ति के जीवन में पुण्य की प्रबलता होती है, तब सारे विघ्न कहीं पलायन कर जाते हैं, उसको दी गई आपत्ति भी संपत्ति में बदल जाती है...परंतु जब व्यक्ति के जीवन में पाप का उदय होता है, तब संपत्ति भी विपत्ति बन जाती है ।

श्रीपाल का पुण्य जोर कर रहा था, अतः धवलसेठ ने भले ही उसे मार डालने के लिए समुद्र में धकेल दिया, परंतु पुण्य के योग से उसकी विपत्ति भी संपत्ति में बदल गई ।

वसुपाल राजा श्रीपाल कुँवर को राज्य का ऊँचा पद देने लगा, परंतु श्रीपाल ने ऊँचा पद लेने से इन्कार कर दिया ।

उसने राजा को इतना ही कहा, ``राजन् ! आपके यहाँ कोई भी बड़ा व्यक्ति मिलने के लिए आए तब मैं उसे पान-बीड़ा देकर, उसका स्वागत कर सकूँ, यही पद मुझे प्रदान करें, अन्य पद की मुझे आवश्यकता नहीं है ।''

राजा ने श्रीपाल की बात स्वीकार कर ली ।

दुर्जन का आचरण हमेशा ''मुख में राम बगल में छुरी'' जैसा होता है । हाथी के दिखावे के दाँत अलग होते हैं और चबाने के दाँत अलग होते हैं । बस, दुर्जन व्यक्ति का बाह्य आचरण अलग ही होता है । उसकी वृत्ति और प्रवृत्ति में आकाश-पाताल जितना अंतर होता है ।

श्रीपाल कुँवर को समुद्र में डालने के बाद धवल सेठ मन-ही-मन एकदम खुश हो गया । वह सोचने लगा, ``अहो ! मेरा भाग्य अनुकूल है, परिणामस्वरूप क्षण में ही मेरी उपाधि टल गई । बस, अब तो श्रीपाल की दोनों स्त्रियाँ और उसकी सारी संपत्ति का मैं मालिक बन जाऊंगा । दोनों स्त्रियों को वश में करने के लिए पहले मुझे कुछ नाटक करना पड़ेगा'' इस प्रकार विचार कर वह जोरों से चिल्लाया, ``अरे ! दौड़ो ! दौड़ो ! श्रीपाल समुद्र में गिर गया है'' इस प्रकार चिल्लाकर वह अपना सिर पीटने लगा और जोर-जोर से क्रंदन करने लगा ।

धवलसेठ की आवाज सुनकर चारों ओर हाहाकार मच गया । चारों ओर से लोग इकट्ठे होने लगे । धवलसेठ चिल्लाने लगा, ``अरे ! अरे ! यह

क्या हो गया ? कुमार तो कुतूहलवश जलचर प्राणियों को देखने के लिए ऊपर चढ़ा था...और दुर्भाग्य से ये डोरियाँ ही टूट गईं ।''

श्रीपाल के समुद्र में गिरने की बात जैसे ही उसकी दोनों स्त्रियों ने सुनीं, वे मूर्च्छित होकर भूमि पर ढल पड़ीं । सखियों ने जब उन पर जल का छिड़काव किया, तब वे धीरे-धीरे होश में आने लगीं और जोर से विलाप करने लगीं ।

वे विलाप करती हुई बोलीं, ``अरे ! भाग्य कैसा रूठ गया है ? पीहर वाले भी अभी हाजिर नहीं हैं और पति का भी वियोग हो गया । ओ हृदय ! प्राणनाथ के दूर चले जाने पर भी अभी तक तू जीवित कैसे है ?''

कपटी धवलसेठ उन दोनों स्त्रियों के पास आया और झूठा विलाप करने लगा । वह भाग्य को कोसने लगा । वह उन स्त्रियों को समझाते हुए बोला, **``पशु भूख को सहन करता है, उसी तरह मनुष्य दुःखों को सहन करता है, अतः आप धैर्य रखें और हृदय को मजबूत करें ।''**

धवलसेठ के मीठे मधुर वचनों को सुनकर उन दोनों स्त्रियों के मन में शंका पैदा हुई कि ``शायद इसी धूर्त की यह पापलीला होनी चाहिए । लगता है धन और भोग में लुब्ध इसी पापी ने स्वामी-द्रोह किया है...और अब बाहर से अलग ही दिखावा कर रहा है ।''

उन दोनों स्त्रियों ने सोचा, ``अब पति के बिना हम अपने शील का रक्षण कैसे कर पाएंगी ? अहो ! अब तो पति की तरह यह सागर ही हमारा शरण हो ।'' इस प्रकार दोनों स्त्रियाँ विचार कर रही थीं, तभी समुद्र में भयंकर उत्पात मच गया । समुद्र में तूफान आने से समुद्र का जल उछलने लगा । आकाश में मेघ-गर्जनाएँ चालू हो गईं...चारों ओर आकाश में बिजलियाँ चमकने लगीं ।

वाहनों के स्तंभ टूटने लगे...चारों ओर गाढ़ अंधकार छा गया । उसी समय हाथ में डमरू बजाता हुआ और मुख से भयंकर आवाज करता हुआ क्षेत्रपाल वहाँ पर आ गया । बावन वीर से युक्त हाथ में भिन्न-भिन्न हथियार लेकर चार प्रतिहारी देव भी आ गए । उनके पीछे अनेक देव-देवियों से युक्त सिंह के वाहन पर बैठी हुई **चक्रेश्वरी देवी** भी आ गई ।

सर्वप्रथम उस क्षेत्रपाल ने धवलसेठ को झूठी सलाह देने वाले मित्र को मारकर उसके शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर दिये ।

उसी समय भय के मारे काँपते हुए धवलसेठ ने श्रीपाल की पत्नियों की शरण स्वीकार की । धवलसेठ एक पशु की भाँति काँप रहा था । उसकी इस स्थिति को देखकर चक्रेश्वरी देवी ने कहा, ***''अरे दुष्ट धवल ! तूने शीलवती स्त्रियों की शरण स्वीकार की है, अतः तुझे मुक्त कर देती हूँ...परंतु अब मन में दुर्बुद्धि धारण करेगा तो तुझे मौत के घाट उतार दूंगी ।''***

इस प्रकार धवलसेठ को ठपका देकर मदनमंजूषा व मदनमंजरी को आश्वासन देती हुई चक्रेश्वरी देवी बोली, ''शील संपन्न नारियो ! तुम चिंता क्यों करती हो ? तुम्हारा पति तो क्षेम कुशल है । अभी वह वसुपाल राजा की राजकन्या के साथ पाणिग्रहण कर आनंद कर रहा है । एक मास के बाद ही तुम्हारा उनका मिलन हो जाएगा ।''

चक्रेश्वरी देवी ने उन दोनों के गले में फूलों की माला डालकर कहा, ''इन मालाओं के प्रभाव से तुम्हारे शीलव्रत का रक्षण होगा । जो भी मनुष्य तुम्हें बुरी नजर से देखने की कोशिश करेगा, वह तत्क्षण अंधा हो जाएगा ।'' इतना कहकर चक्रेश्वरी देवी अंतर्धान हो गई ।

धीरे-धीरे सभी उपद्रव शांत हुए । अनुकूल पवन बहने लगा और सभी वाहन क्रमशः आगे बढ़ने लगे ।

उस समय उन तीनों मित्रों ने धवलसेठ को समझाते हुए कहा, ''हमने जो सच्ची सलाह दी थी, वह आपको पसंद नहीं पड़ी और दुष्ट सलाह देने वाले चौथे मित्र की बात आपने मान ली...अब तो आपने उसका परिणाम देख लिया न ! अब आप परधन और पर-स्त्री के विचार को मन से निकाल देना ।'' मित्रों की यह सच्ची बात भी धवलसेठ को कहाँ से पसंद पड़े ! **लहसुन को कपूर के बीच रख देने पर भी क्या लहसुन अपनी दुर्गंध छोड़ने के लिए कभी तैयार होता है ?**

धवलसेठ सोचने लगा, ''भयंकर आपत्ति में भी जब जीवन बचा है तो शेष कार्य भी अवश्य पूर्ण होंगे ।...समय आने पर वे स्त्रियाँ मुझे अवश्य प्राप्त होंगी ।'' इस प्रकार विचार कर उन दोनों स्त्रियों को अपनी बनाने के लिए उसने एक दूती को तैयार किया...परंतु उन दोनों स्त्रियों ने तिरस्कार कर उस दूती को अपने खंड से बाहर निकाल दिया ।

अनेक प्रयत्नों में निष्फलता मिलने पर भी धवलसेठ की कामवासना शांत नहीं हो पाई...परिणामस्वरूप उसने स्त्री के कपड़े धारण किए और उन सुंदरियों के खंड में जा पहुँचा...परंतु दिव्य पुष्पमालाओं के प्रभाव से उसकी दृष्टि विलीन हो गई...वह अंधा हो गया...उसे कुछ भी दिखाई देने न लगा...परिणामस्वरूप दासियों ने उसे बाहर धकेल दिया ।

सेठ ने उत्तर दिशा की ओर आगे बढ़ने के लिए कप्तानों को आदेश दिया...परंतु पवन की प्रतिकूलता के कारण वे वाहन कोंकण देश के किनारे आ पहुँचे । समुद्र तट पर उतरने के बाद वहाँ के राजा को खुश करने के लिए धवलसेठ कीमती सामग्री लेकर राजदरबार में जा पहुँचा । राजदरबार में पहुँचते ही उसने राजा को भावपूर्वक प्रणाम किया ।

उसी समय धवलसेठ ने राजा के पास बैठे हुए श्रीपाल कुँवर को देखा । उसे देखते ही वह चौंक उठा । ''यह क्या ? यह श्रीपाल यहाँ कहाँ से आ गया ?''

राजा ने श्रीपालकुँवर के हाथ से धवलसेठ को तंबोल (पान-बीड़ा) दिलवाया ।

धवलसेठ श्रीपालकुँवर को अच्छी तरह से पहचान गया । वह मन-ही-मन सोचने लगा, 'अरे भाग्य ! तूने यह क्या उत्पात मचा दिया ? मैंने तो इसे समुद्र में डाल दिया था...और तूने उसे राजदरबार में उच्च आसन पर लाकर बिठा दिया ।'

सभा के विसर्जन के बाद धवलसेठ ने किसी चौकीदार को पूछा, ''राजा के पास बैठा यह स्थगीधर व्यक्ति कौन है ?''

चौकीदार ने कहा, ''यह कुँवर तो समुद्र तट पर वृक्ष के नीचे सोया हुआ था । बहुत ही आदर सम्मान के साथ राजा उसे अपने महल में लाया और कुछ भी पूछताछ किए बिना उसके साथ अपनी पुत्री का पाणिग्रहण करा दिया ।''

चौकीदार की यह बात सुनकर कपटी धवलसेठ ने तत्काल श्रीपाल को कलंकित कर आपत्ति में डालने के लिए एक षड्यंत्र रच दिया ।

धवलसेठ ने सोचा, 'यदि श्रीपाल पर हल्की जाति का कंलक लगाया जाए तो अवश्य ही राजा उसे मार डालेगा ।' इस प्रकार विचार कर वह अपने आवास पर गया ।

उसी समय उसे डूंब (चांडाल जाति के) लोगों का एक टोला (समूह) मिल गया ।

धवलसेठ ने उनके नायक को अपने पास बुलाया और कहा, ''यदि तुम राजा के दामाद पर डुंब जाति का कलंक लगाने में सफल बन जाओगे तो मैं तुम्हें 1 लाख सुवर्ण मुद्राएँ दूंगा ।''

बस, धन के लोभ से उस नायक ने धवलसेठ की बात में 'हाँ' भर दी ।

उन चांडाल लोगों ने बराबर जाल रच दिया । वे सब मिलकर समूह में मधुर संगीत गाने लगे । उनकी अद्‌भुत संगीत कला से लोग आकर्षित होने लगे । राजा के कानों तक यह बात पहुँची । राजा संगीतप्रिय था । अतः उसने उन चांडालों को राजदरबार में आने का आमंत्रण दिया । राजदरबार में आने के बाद राजा की आज्ञा प्राप्त कर उन्होंने अपनी संगीतकला का प्रदर्शन किया । उनके संगीत को सुनकर राजा प्रसन्न हो गया ।

राजा ने कहा, ''मांगो ! मांगो ! तुम्हें क्या चाहिए ?''

नायक ने कहा, ''हमें सिर्फ राजदरबार में योग्य आदर मिलना चाहिए ।''

तत्काल राजा ने श्रीपाल की ओर इशारा किया और श्रीपाल ने अपने हाथों से चांडालों के नायक को पान-बीड़ा दिया । उसी समय एक वृद्ध चांडाल (डुंब) श्रीपाल को गले लगाकर बोलने लगा, ''बेटा ! इतने दिनों के बाद आज तुझे प्राप्त कर मेरे हृदय में आनंद समा नहीं रहा है ।''

उसी समय एक स्त्री ने बहिन होने का नाटक किया, तो किसी ने मामा का, तो किसी ने भाणेज का नाटक किया ।

डुंब के नायक ने राजा को कहा, ''यह तो हमारे कुल का आधार है...गुस्से में आकर हमें छोड़कर चला गया...आपके प्रभाव से अब हमें मिल गया ।''

नायक की यह बात सुनकर राजा ने सोचा, **''अहो ! यह तो बड़ी गड़बड़ हो गई । मैंने एक चांडाल को अपनी कन्या प्रदान कर कुल की कीर्ति को कलंकित किया है ।''**

उसी समय राजा ने उस निमितज्ञ को अपने पास बुलाया और कहा, ``तेरे वचन पर विश्वास रखकर मैंने अपनी कन्या इसे प्रदान की, यह व्यक्ति तो चांडाल जाति का है, यह बात मुझे क्यों नहीं बतायी गई ?''

निमित्तज्ञ ने कहा, ``राजन् ! मेरा निमित्त झूठा नहीं है, यह तो बहुत से मातंगों का अधिपति हैं ।''

राजा उस निमित्तज्ञ की बात को समझ नहीं पाया । तत्काल ही उसने श्रीपाल कुँवर और निमित्तज्ञ को मार डालने की योजना बना दी ।

राजा ने अपने सैनिकों को आदेश दे दिया ।

ज्योंही मदनमंजरी को इस बात का पता चला, वह दौड़ती हुई आ गई और अपने पिता से विनंती करते हुए बोली, ``हे पिताजी ! आप कुछ सोच समझकर काम लें, ताकि बाद में आपको पछाताना न पड़े । **मनुष्य के कुल की पहचान उसके बाह्य आचारों से होती है,** आप कान के कच्चे न बनें ।''

तभी राजा ने श्रीपाल कुँवर को कहा, ``तुम अपना वंश प्रकट करो, जिससे हमारी शंका का समाधान हो जाए ।''

कुँवर ने कहा, **``उत्तम मनुष्य अपने मुख से अपने कुल की प्रशंसा नहीं करते हैं, हम अपना कुल अपने कार्य से ही बता सकते हैं ।** आप अपना सैन्य तैयार कर लें और मुझे भी अपने हाथ में तलवार उछालने दें, तभी मेरा कुल प्रकट होगा । आप तो सिर मुंडाने के बाद नक्षत्र पूछने जैसी बात कर रहे हैं । अथवा अभी समुद्र तट पर जो जहाज आए हुए हैं उनमें मेरी दो पत्नियाँ हैं, आप उन्हें बुलाकर मेरे वंश का परिचय प्राप्त कर लें ।''

उसी समय राजा ने उन दोनों स्त्रियों को बुलाने के लिए अपने मंत्री को भेज दिया ।

मंत्री ने जाकर श्रीपाल की दोनों पत्नियों को राजमहल में पधारने के लिए आमंत्रण दिया ।

अपने पति के आदेश को प्राप्त कर वे दोनों स्त्रियाँ एकदम खुश हो गई ।

थोड़ी देर में वे दोनों स्त्रियाँ राज दरबार में आ गई । देवांगना समान उन स्त्रियों को देखते ही राजा के मन में रही शंका दूर हो गई ।

राजा के पूछने पर विद्याधर राजा की पुत्री ने श्रीपाल कुँवर का सारा वृत्तांत सुना दिया और अंत में कहा, 'इस पापी धवलसेठ ने हमारे पति को समुद्र में डाल दिया था...परंतु सद्भाग्य से आज हमें उनकी प्राप्ति हुई है ।'

श्रीपाल के पूर्व चरित्र को सुनकर राजा के हर्ष का पार न रहा । उसने सोचा, ''अहो ! यह तो मेरी बहिन का पुत्र है । अहो ! मैंने बिना सोचे-समझे यह क्या कर डाला ?''

उसी समय राजा ने चांडालों के नायक को कैद कर लिया और उसे कैदी की सजा फटकार कर कहा, ''तुमने यह काम क्यों किया ?''

काँपते हुए उस चांडाल ने कहा, ''यह सब उस सेठ की माया है, हम तो निर्दोष हैं । धन के लोभ में आकर यह कपट लीला करने के लिए तैयार हुए हैं ।''

चांडाल की यह बात सुनकर राजा भड़क उठा, उसी समय उसने सेठ को बाँधकर वहाँ बुलवाया ।

वसुपाल राजा धवलसेठ और चांडालों के नायक को खत्म करने के लिए तैयार हो गया । परंतु श्रीपाल कुँवर ने उसे रोक दिया ।

वास्तव में, सज्जन पुरुष स्वयं के जीवन में भयंकर आपत्ति आने पर भी अपनी सज्जनता का त्याग नहीं करते हैं ।

राजा ने खुश होकर निमित्तज्ञ को खूब दान दिया और उसे विदाई दी । श्रीपालकुँवर अपने महल में आया । तीनों स्त्रियों के साथ आनंदपूर्वक दिन व्यतीत करने लगा ।

काँटे का स्वभाव दूसरों को पीड़ा पहुँचाने का है, उसी प्रकार दुर्जन का स्वभाव भी दूसरे को कष्ट देने का ही होता है ।

अनेक बार हार खाने पर भी धवलसेठ अपनी दुर्जनता का त्याग करने के लिए तैयार नहीं हो पाया ।

तीव्र पापोदय से व्यक्ति को दुर्बुद्धि सूझती है । बस, इसी न्याय से

धवलसेठ ने सातवीं मंजिल पर रहे श्रीपालकुँवर को छुरी से मारने का संकल्प किया ।

रात्रि समय में श्रीपाल अपने महल में आराम से निद्राधीन बना हुआ था, उसी समय गुप्त मार्ग से हाथ में छुरी लेकर धवलसेठ ऊपर चढ़ने लगा । परंतु बीच मार्ग में ही अंधेरे में वह अपना पैर चूक गया...और धरती पर गिर पड़ा । उसके हाथ में रही छुरी उसकी मौत का कारण बन गई ।

अपार धन संपत्ति और वैभव को छोड़कर धवलसेठ मरकर 7 वीं नरक भूमि में चला गया ।

अपने ऊपर उपकार करने वाले के प्रति भी इस प्रकार अपकार करने की वृत्ति धारण करनेवाले जीव न तो इस लोक में सुखी होते हैं और न ही परलोक में । सचमुच, दुर्जनता का परिणाम अत्यंत ही कटु है । प्रातःकाल होने पर लोगों ने जब धवलसेठ के मृत देह को देखा तो लोग उसे धिक्कारने लगे ।

स्वामी-द्रोह करने वाले पापियों की आखिर यही हालत होती है । वास्तव में, तीव्र भाव से किया हुआ पाप तत्काल बुरा फल देता है ।

धवलसेठ की मृत्यु जानकर श्रीपालकुँवर ने खेद का अनुभव किया, उसने उसका दाह-संस्कार आदि करवाया ।

श्रीपालकुँवर ने धवलसेठ के समस्त वाहन व माल-सामान की सारी जवाबदारी उसके तीन मित्रों को सौंप दी ।

तीन स्त्रियों से युक्त श्रीपाल आनंदपूर्वक दिन व्यतीत करने लगा ।

6 पुण्य-प्रभाव

एक दिन श्रीपालकुँवर राजवाटिका के लिए नगर बाहर आया हुआ था। उसी समय एक सार्थवाह अपने विशाल परिवार और सामान-सामग्री के साथ आगे बढ़ रहा था। श्रीपालकुँवर को देखकर सार्थवाह के दिल में सहज स्नेह-भाव उभर आया। वह अमूल्य सामग्री लेकर श्रीपाल के पास आया और उन्हें अमूल्य भेंट देने लगा।

श्रीपाल ने उस भेंट को स्वीकार करते हुए कहा, `आप कहाँ से पधारे हो ? कहाँ जा रहे हो ?'

सार्थवाह ने कहा, `मैं कांतिनगर से आ रहा हूँ और कंबुद्वीप जा रहा हूँ।'

श्रीपाल ने कहा, `क्या आपने कोई आश्चर्यकारी घटना देखी-सुनी है ?'

सार्थवाह ने कहा, `हाँ कुँवर ! यहाँ से 400 योजन दूर कुंडलपुर नगर है। उस नगर में मकरकेतु राजा है। उसकी कपूरतिलका रानी है। उनके दो पुत्रों के बाद **गुणसुंदरी** नाम की पुत्री है। गुणसुंदरी, नाम से ही गुणसुंदरी नहीं है, वह तो गुणों से भी सुंदर है। अद्‌भुत रूप और लावण्य सौंदर्य के साथ उसके जीवन में सुसंस्कारों का सुंदर संयोजन हुआ है। वह स्त्रियों की 64 कलाओं में भी निपुण है। इसके साथ ही उसे वीणावादन का अत्यधिक शौक है।

उस गुणसुंदरी ने यह प्रतिज्ञा की है कि, ``जो मुझे वीणावादन में हराएगा, उसी के साथ पाणिग्रहण करूंगी।''

लग्न जीवन में जीवन पर्यंत का संबंध होता है, अतः समान रुचि वाले के साथ संबंध हुआ हो, तो वह संबंध सुखदायी रह सकता है, परंतु विपरीत रुचिवालों के बीच संबंध हो गया तो जीवनभर रोना-पछताना ही पड़ता है।

राजकुमारी की इस प्रतिज्ञा को सुनकर उसके रूप व गुणों में मोहित बने अनेक राजकुमार वीणावादन में निपुण पंडित के पास रहकर वीणा सीखने का अभ्यास करते हैं।

प्रति मास राजसभा में उन सबकी परीक्षा होती हैं। परंतु राजकुमारी के वीणावादन के आगे वे परास्त हो जाते हैं। उस नगर में सर्वत्र जहाँ देखो वहाँ युवा वर्ग वीणा बजा रहे हैं।

सार्थवाह की यह बात सुनकर श्रीपालकुँवर अपने आवास में आ गया। उसके दिल में कुंडलपुर जाने की इच्छा जागृत हुई। उसी समय उसने नवपद का ध्यान धरा। नवपद के ध्यान में वह तल्लीन हो गया। परिणाम स्वरूप सौधर्म देवलोक में रहने वाला विमलेश्वर देव मनोहर मोतियों की माला लेकर उपस्थित हो गया।

देव ने आकर वह हार श्रीपाल के गले में डाल दिया और बोला, **''इस हार के प्रभाव से (1) आप मनोवांच्छित रूप कर सकोगे (2) अपनी इच्छानुसार आकाशमार्ग में गमन कर सकोगे (3) जो भी कला सीखना चाहोगे, उस कला में निपुण बन जाओगे और (4) इस हार के न्हवण जल से भयंकर विष का प्रभाव भी नष्ट हो जाएगा।''**

इतना कहकर वह देव बोला, ''मैं सिद्धचक्रजी का सेवक हूँ, सिद्धचक्र के सेवकों के संकट दूर करता हूँ। आप भी अपने हृदय में श्री सिद्धचक्र को सदा धारण करें और जब भी जरूरत पड़े मुझे अवश्य याद करें।''

इतना कहकर वह देव अन्तर्धान हो गया। रात्रि व्यतीत हुई। प्रातःकाल होते ही श्रीपालकुँवर ने कुंडलपुर जाने का विचार किया और तत्क्षण देव प्रदत्त हार के प्रभाव से श्रीपाल कुँवर कुंडलपुर नगर के प्रवेशद्वार पर पहुँच गया।

श्रीपालकुँवर ने देखा कि नगर में सभी लोग गुणसुंदरी के रूप और गुण की प्रशंसा कर रहे हैं...और सभी लोग वीणावादन के प्रशिक्षण में मस्त हैं।

लोक-आनंद के लिए श्रीपालकुँवर ने हार के प्रभाव से अपना रूप परिवर्तन किया...और श्रीपाल अब कुब्ज (कुबड़े) बन गए। उनका मुख तुंबड़े के समान दिखने लगा। उनका नाक दबा हुआ था, पेट और सीना दोनों पास-पास हो गए थे। हाथ और पैर छोटे-छोटे थे। वामन के रूप में रहे श्रीपाल ने जैसे ही नगर में प्रवेश किया। वे नगरवासी श्रीपाल को देख हँसने लगे। क्रमशः आगे बढ़ता हुआ श्रीपाल उस स्थान पर पहुँच गया, जहाँ पर संगीतज्ञ उपाध्याय, राजकुमारों को वीणावादन का शिक्षण दे रहे थे।

श्रीपाल के विचित्र रूप को देखकर सभी राजकुमार हँसने लगे और पूछने लगे, ''तुम कहाँ से आए हो और क्यों आए हो ?''

प्रत्युत्तर देते हुए श्रीपाल ने कहा, ''मैं दूर देश से आया हूँ। आप जिस कार्य के लिए आए हो, उसी कार्य के लिए मैं भी आया हूँ।''

कलाचार्य के पास जाकर श्रीपाल ने कहा, ''हे गुरुदेव ! आप मुझे वीणावादन सिखाएँ।''

इतना कहकर उसने बहुमूल्य तलवार कलाचार्य के चरणों में भेंट धर दी। धन देखकर किसका मन नहीं ललचाता है ! बस, कलाचार्य ने भी एक अच्छी वीणा श्रीपाल के हाथ में दे दी...और आदरपूर्वक श्रीपालकुँवर को स्वर-नाद आदि के उत्पत्तिस्थान बताने लगा।

परंतु श्रीपालकुँवर ने जान-बूझकर, वीणा के तार इस प्रकार खींचे कि उसी समय वे तार टूट गए। श्रीपाल के इस विचित्र आचरण को देखकर सभी राजकुमार हँसने लगे। धीरे-धीरे एक महीना पूरा हो गया।

वीणावादकों की परीक्षा के लिए विशाल सभा इकट्ठी हुई। उस समय संगीतकला के अनेक विद्वान् पुरुष वहाँ उपस्थित हुए। राजकुमारी गुणसुंदरी भी एक हाथ में वीणा और एक हाथ में पुस्तक लेकर राजसभा में उपस्थित हुई।

कुबड़े के रूप में श्रीपाल जब राजसभा में प्रवेश करने लगा, तब द्वारपाल ने उसे रोक दिया...परंतु उसी समय श्रीपालकुँवर ने उसे कीमती रत्न का एक आभूषण भेंट दिया। बस, तत्क्षण द्वारपाल ने श्रीपाल कुँवर को अंदर जाने की अनुमति दे दी। राजसभा में प्रवेश करते ही श्रीपालकुँवर ने गुणसुंदरी को अपना मूल स्वरूप दिखलाया और सभा को अपना कृत्रिम कुबड़े का रूप दिखलाया।

श्रीपाल के अद्‌भुत रूप व लावण्य को देखकर गुणसुंदरी का मन ललचा गया। वह सोचने लगी ''यदि यह उत्तम पुरुष मेरी प्रतिज्ञा को पूर्ण करेगा तो मेरा जन्म सफल हो जाएगा।''

कुछ ही समय बाद राजसभा की कार्यवाही प्रारंभ हुई। दूर-सुदूर देश के आए अनेक राजकुमारों ने वीणावादन की कला दिखलाई...परंतु राजकुमारी गुणसुंदरी के वीणावादन के आगे सब तुच्छ प्रतीत हुआ।

गुणसुंदरी के आगे सभी राजकुमारों की हार के बाद कुब्ज के रूप में रहा श्रीपालकुँवर आगे आया । उसे देखकर सभी कुंडलपुरवासी हँसने लगे ।

राजकुमारी ने अपनी वीणा श्रीपाल के हाथ में दी । वीणा हाथ में आते ही, उसे देखकर श्रीपाल बोला, ``अहो ! यह वीणा तो अशुद्ध है ।''

वीणा में रहे दोष बताने के बाद श्रीपाल ने उन दोषों को दूर किया, तत्पश्चात् उसने संगीत के मधुर स्वर के साथ वीणा-वादन किया । वीणा के मधुर संगीत को सुनकर सभी के मस्तक डोलने लगे और देखते-ही-देखते मूर्च्छित की तरह सभी निद्राधीन हो गए । अवसर देखकर श्रीपालकुँवर ने लोगों के मस्तक पर रहे मुकुट, अंगूठी आदि आभूषण उतार लिये...और उनका ढेर कर दिया ।

थोड़ी देर बाद जब लोगों की नींद उड़ी, तब सभी के आश्चर्य का पार न रहा ।

अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण होते ही गुणसुंदरी ने कुब्ज श्रीपाल के गले में वरमाला डाल दी ।

'गुणसुंदरी ने कुबड़े के गले में वरमाला डाली है' यह जान कर राजा-रानी को अत्यंत ही खेद हुआ...परंतु उसी समय उनके दुःख के निवारण के लिए श्रीपाल कुँवर ने अपना मूल स्वरूप प्रगट किया, जिसे देखकर राजा रानी के आश्चर्य का पार न रहा ।

राजा ने धूमधाम पूर्वक श्रीपालकुँवर के साथ गुणसुंदरी की शादी की । गुणसुंदरी के साथ श्रीपालकुँवर आनंदपूर्वक दिन व्यतीत करने लगा ।

पुण्यशाली व्यक्ति जहाँ कदम रखता है, वहाँ ऋद्धि, सिद्धि और समृद्धि आकर खड़ी हो जाती है । पुण्यशाली व्यक्ति को तो लक्ष्मी प्राप्त करने में मात्र 'इच्छा करने' का ही विलंब है । पुण्यशाली व्यक्ति सिर्फ इच्छा करता है और लक्ष्मी आकर उसके द्वार खटखटाने लगती है ।

पुण्य के प्रभाव से सभी विघ्न दूर हो जाते हैं और पुण्य के प्रभाव से इष्ट वस्तु की प्राप्ति हो जाती है ।

एक दिन श्रीपालकुँवर अपने आसन पर बैठा हुआ था । तभी एक परदेशी व्यक्ति आया और श्रीपालकुँवर को कहने लगा, ``यहाँ से 300 योजन

दूर कंचनपुर नाम का नगर है । उस नगर में वज्रसेन नाम का राजा है। उसकी रानी का नाम कंचनमाला है । उस राजा-रानी के चार पुत्रों के बाद त्रैलोक्यसुंदरी नामकी कन्या है । रूप, गुण और कला का त्रिवेणी संगम उसमें देखने को मिलता है ।

``त्रैलोक्यसुंदरी के योग्य वर की शोध के लिए राजा ने स्वयंवर मंडप की रचना की है । आषाढ़ सुद दूज के शुभ दिन स्वयंवर का आयोजन किया गया है । आज आषाढ़ सुद एकम् हो चुकी है । कल ही यह स्वयंवर होने वाला है ।

परदेशी व्यक्ति से ये समाचार सुनकर श्रीपालकुँवर खुश हो गया । उसने उसे सोने का एक आभूषण भेंट दिया जिसे पाकर वह व्यक्ति खुश हो गया ।

कुछ समय बाद श्रीपाल कुँवर अपने आवास पर आया...और कुछ ही क्षणों बाद उसने हार के प्रभाव से कंचनपुर नगर में प्रवेश किया । श्रीपाल का बाह्य आकार अत्यंत ही विचित्र था । गधे के दाँत के समान उसके दाँत थे । छोटा सा नाक, लंबे-लंबे होठ, पीली-पीली आँखें और ऊँची पीठ ।

स्वयंवर मंडप में प्रवेश कर रहे श्रीपालकुँवर को द्वारपाल ने रोक दिया...उसी समय श्रीपाल ने उसे रत्न का आभूषण भेंट दिया...और तत्काल उसे प्रवेश मिल गया ।

कुब्ज के रूप में रहे श्रीपालकुँवर को देखकर कई राजकुमार हँसी-मजाक करते हुए श्रीपाल को पूछने लगे, ``भाई ! इस स्वयंवर मंडप में तुम्हारा आगमन कैसे हुआ है ?''

श्रीपाल ने कहा, ``जिस कार्य के लिए तुम आए हो, उसी काम के लिए मैं आया हूँ ।''

कुब्ज की यह बात सुनकर सभी राजकुमार जोर से हँसने लगे और बोले, ``अहो ! यह रूपवान (!) राजकुमारी के साथ विवाह करने के लिए निकल पड़ा है...और वह राजकुमारी भी इसी के साथ शादी करेगी न !''

उसी समय सुंदर वस्त्रों व आभूषणों से अलंकृत देवकन्या के समान राजकुमारी त्रैलोक्यसुंदरी को श्रीपाल ने अपना मूल स्वरूप दिखलाया और

वह तत्क्षण श्रीपाल पर मोहित हो गई । उसने अपने मनमंदिर में श्रीपाल की स्थापना कर दी ।

एक दासी स्वयंवर मंडप में उच्च स्थान पर बैठे हुए राजकुमारों का परिचय देने लगी । राजकुमारों की वय, रूप व देश का वर्णन सुनने पर भी त्रैलोक्यसुंदरी के मन में किसी राजकुमार के प्रति आकर्षण पैदा नहीं हुआ ।

सभी राजकुमारों को नापसंद कर वह त्रैलोक्यसुंदरी एक ओर कुब्ज के रूप में खड़े श्रीपालकुँवर के पास आई और उसके गले में वरमाला डाल दी ।

यह दृश्य देखकर सभी राजकुमार कोपायमान हो गए और बोले, **''यह कन्या गुण-अवगुण के भेद को जानती नहीं है, अत्यंत ही भोली लगती है, इसी कारण गुण व रूप में श्रेष्ठ राजकुमारों का त्याग कर इसने एक कुबड़े का वरण किया ।''**

श्रीपाल का भी तिरस्कार करते हुए वे राजकुमार बोले, **''हे कुब्ज ! तू विकराल कौए के समान है और हम हंस के समान हैं, अतः तेरे गले में यह वरमाला शोभा नहीं देती है, स्वेच्छा से तू इसका त्याग कर दे, अन्यथा इस तलवार से तेरे गले को उड़ा देंगे ।''**

उसी समय हँसते हुए श्रीपाल ने कहा, ''अरे दुर्भागियो ! इस राजकुमारी ने तुम्हारा वरण नहीं किया है, इसलिए गुस्सा क्यों करते हो ? तुम अपने ही भाग्य पर गुस्सा क्यों नहीं करते हो ? अब पर-स्त्री की अभिलाषा कर के तुम पापी बने हो, अतः हे दुर्जनो ! अपने पाप के प्रायश्चित्त के लिए अब तुम मैदान में आ जाओ । मेरी तलवार ही तुम्हें अपने पाप से शुद्ध करेगी ।'' इतना कहकर श्रीपाल ने जैसे ही अपना पराक्रम दिखलाया, वे सभी राजकुमार स्वयंवर मंडप को छोड़कर अपने प्राण बचाने के लिए इधर-उधर भागने लगे ।

श्रीपाल के अद्‌भुत पराक्रम को देखकर वज्रसेन राजा एकदम खुश हो गए । उसी समय उन्होंने विनति करते हुए कहा, ''जिस प्रकार आपने अपना पराक्रम दिखलाया है, उसी प्रकार आप अपना मूल-स्वरूप भी प्रगट करें ।''

बस, उसी समय श्रीपालकुँवर ने अपना मूल-स्वरूप प्रगट किया । श्रीपाल के अद्‌भुत रूप को देखकर राजा की प्रसन्नता का पार न रहा । राजा

ने अत्यंत ही धूमधाम से श्रीपालकुँवर के साथ त्रैलोक्यसुंदरी का पाणिग्रहण कराया ।

श्रीपालकुँवर अत्यंत ही आनंद पूर्वक अपने दिन व्यतीत करने लगा । श्रीपालकुँवर राजसभा में योग्य आसन पर बैठे हुए थे । तभी एक दूत ने आकर शुभ समाचार देते हुए कहा, ''दलपत्तन नगर में धरापाल नाम का राजा है, उस राजा की मुख्य रानी का नाम गुणमाला है । उस गुणमाला के पाँच पुत्रों के बाद **श्रृंगारसुंदरी** नाम की पुत्री है । जो रूप व गुणों की खान है । उस राजकुमारी की पंडिता, विचक्षणा, प्रगुणा, निपुणा और दक्षा नाम की पाँच सखियाँ हैं, जो जिनमत में अत्यंत ही निपुण हैं ।

एक बार वे सभी सखियाँ मिलकर राजकुमारी को कहने लगीं, **''हम सब का मन जिनमत में अत्यंत ही दृढ़ है, अतः हमें ऐसे ही योग्य वर के साथ विवाह करना चाहिए, जो जिनमत में कुशल हो । यदि अयोग्य के साथ संबंध हो गया तो हमारा जीना भी मरने के समान हो जाएगा । भयंकर व्याधि, दरिद्रता और वनवास के दुःख सहन करना अच्छा, किंतु अयोग्य वर के साथ संबंध करना ठीक नहीं ।''**

उसी समय पंडिता ने कहा, ''काव्य की पादपूर्ति कराने के द्वारा हम दूसरे के चित्त के भाव को जान सकते हैं ।''

पंडिता की बात सुनकर राजकुमारी ने कहा, ''जो मेरी समस्या को पूर्ण करेगा, उसी के साथ मैं पाणिग्रहण करूंगी ।''

श्रृंगारसुंदरी की यह प्रतिज्ञा सुनकर अनेक राजकुमार राजसभा में उपस्थित हुए...परंतु कोई भी राजकुमार, राजकुमारी के मन में रहे भावों के अनुसार पाद-पूर्ति नहीं कर सके ।

दूत के मुख से यह बात सुनकर श्रीपालकुँवर अपने आवास पर आया...और तत्काल हार के प्रभाव से दलपत्तन नगर में पहुँच गया ।

राजसभा में आए श्रीपालकुँवर को देखकर श्रृंगारसुंदरी एकदम चौंक उठी । उसके मन में श्रीपाल के प्रति अद्‌भुत आकर्षण पैदा हो गया । वह मन ही मन सोचने लगी, ''अहो ! यह पुरुष मेरी प्रतिज्ञा पूर्ण कर दे तो मेरा जीवन धन्य हो जाय ।''

उसी समय कुँवर ने कहा, ''अच्छा बोलो, तुम्हारी क्या समस्या है ?''

राजकुमारी के संकेत से सर्व प्रथम पंडिता नाम की सखी ने कहा, **''मनवांछित फल होय ।''**

श्रीपाल ने देखा कि राजकुमारी स्वयं अपने मुख से समस्या न बोलकर सखी के मुख से बोल रही है तो मैं भी अपने मुख से क्यों जवाब दूँ ? इस प्रकार विचार कर उसने अपने पास खड़ी पाषाण की पुतली के ऊपर हाथ रखा । दिव्य प्रभाव से वह पुत्तलिका बोली,

'अरिहंताइ नव पय, निय मन धरे जु कोय ।
निच्छय तस सुर नर स्तवे, मनवांछित फल होय ।।

अर्थ : अरिहंत आदि नवपदों को जो अपने मन में धारण करता है, उस नरशेखर की सभी देव-मनुष्य स्तुति करते हैं और उसकी सभी मनो-कामनाएँ पूर्ण होती हैं ।

उसके बाद विचक्षणा सखी ने कहा,

'अवर म झंखो आल ।'

पुत्तलिका बोली,

'अरिहंत देव सुसाधु गुरु, धर्म ज दया विशाल ।
जपहुं मंत्र नवकार तुमे, अवर म झंखो आल ।।'

अर्थ : अरिहंत को देव समझो, सुसाधु को गुरु मानो और विशाल दयायुक्त केवलीभाषित धर्म को धर्म मानो । इन तीनों से युक्त नवकार मंत्र श्रेष्ठ मंत्र है, इसे छोड़कर दूसरी झंझट में न पड़ो ।'

उसके बाद,

प्रगुणा सखी ने कहा, **'कर सफलो अप्पाणु ।'**

पुत्तलिका बोली,

'आराहिय धुरि देव गुरु, देहि सुपत्ति हि दाण ।
तव संजम उवयार करि, करि सफलु अप्पाणु ।।'

अर्थ : देव और गुरु की आराधना कर, सुपात्र में दान देकर तथा तप, संयम और परोपकार करके, हे जीव ! तू अपने जीवन को सफल कर ।'

उसके बाद निपुणा सखी ने कहा, **'जित्तो लिह्यो निलाड ।'**

पुत्तलिका बोली,

'रे मन अप्पा खंचि करी, चिंता जाल म पाड ।
फल तित्तोहि ज पामिये, जित्तो लिह्यो निलाड ।।'

अर्थ : हे मन ! तू आत्मा को खींचकर चिंता रूपी जाल में मत गिरा । क्योंकि भाग्य में जितना लिखा होता है, उतना ही फल प्राप्त होता है ।

उसके बाद दक्षा ने कहा, **'तासु तिहुयण जण दास'**

पुत्तलिका बोली,

'अत्थि भवंतर संचियो, पुण्य समग्गल जास ।
तसु बल तसु मइ तसु सिरि, तसु तिहुयण जण दास ।।'

अर्थ : जिसने पूर्वभव में पुण्य का संचय किया होता है, उसी को बल, बुद्धि और लक्ष्मी की प्राप्ति होती है और तीनों लोक के वासी भी उसी के दास बनते हैं ।

अंत में श्रृंगारसुंदरी ने कहा, **'रवि पहेला उगंत ।'**

पुत्तलिका बोली,

'जीवंता जग जस नहीं, जस विण कांइ जीवंत ।
जे जस लइ आथम्या, रवि पहेला उगंत ।।'

अर्थ : जिंदा रहते हुए भी जिन्होंने जगत् में यश प्राप्त नहीं किया, वे लोग यश बिना क्यों जीते हैं ? (अर्थात् उनका जीवन भी निरर्थक है) परंतु जिन लोगों ने यश पाकर मृत्यु प्राप्त की है, तो सूर्य के पहले ही उन यशस्वी महापुरुषों को याद किया जाता है ।'

श्रीपालकुँवर के संकेत से पुत्तलिका के मुख से सभी समस्याओं की पादपूर्ति सुनकर राजकुमारी अत्यंत ही खुश हो गई । राजा ने धूमधाम के साथ श्रीपाल कुँवर का अपनी पुत्री श्रृंगारसुंदरी के साथ पाणिग्रहण कराया ।

श्रीपाल, सुंदरी के साथ अत्यंत ही आनंद पूर्वक अपने दिन व्यतीत करने लगा ।

एक दिन अंगभट्ट नाम के ब्राह्मण ने आकर श्रीपाल कुँवर से कहा, 'हे कुमार ! कोल्लागपुर नगर में पुरंदर नाम का राजा है, उसकी रानी का नाम

विजया है । सात पुत्रों के बाद उसके **जयसुंदरी** नाम की पुत्री है । राजा को रूप व लावण्य की साक्षात् मूर्ति समान अपनी पुत्री के योग्य वर की चिंता सताने लगी ।

एक दिन राजा ने उसके उपाध्याय (विद्यादाता) को कन्या के योग्य वर के बारे में पूछा तो उसने कहा, ``जिस समय वह कन्या अभ्यास करती थी, तब उसने मुझे राधावेध का स्वरूप पूछा था, उस समय मैंने उसे राधावेध का स्वरूप बतलाया था । राधावेध के स्वरूप को जानकर उसने यह प्रतिज्ञा की थी कि जो राधावेध को सिद्ध करेगा, वही मेरा पति होगा ।''

पाठक की यह बात सुनकर राजा ने राधावेध को साधने के लिए एक विशाल मंडप तैयार करवाया । एक स्तंभ पर आठ चक्र रखे गए, उनमें से चार दायीं ओर तथा चार बायीं ओर घूमते थे । आठ चक्रों के छेद के ऊपर राधा पुतली रखी गई थी । स्तंभ के नीचे तेल से भरा हुआ कड़ाह था । कड़ाह में मुख करके ऊपर बाण छोड़कर राधापुतली की बायीं आँख को वेधना था ।

राधावेध को साधने के लिए बहुत से राजकुमार आए, किंतु कोई भी राजकुमार उस राधावेध को साध नहीं सका ।

अंगभट्ट की यह बात सुनकर हार के प्रभाव से श्रीपालकुँवर कोल्लागपुर नगर में पहुँच गया...और उसने सभी लोगों के सामने उस राधा वेध को साध लिया ।

राजकुमारी की प्रतिज्ञा पूर्ण होते ही उसने श्रीपालकुँवर के गले में वर माला डाल दी ।

राजा ने अत्यंत धूमधाम के साथ जयसुंदरी का विवाह श्रीपालकुँवर के साथ करवाया ।

श्रीपालकुँवर जयसुंदरी के साथ आनंदपूर्वक दिन व्यतीत करने लगा ।

7 राज्य-प्राप्ति

एक शुभ दिन ठाणापुरी (थाना) से वसुपाल राजा का दूत आया और कहने लगा, 'वसुपाल राजा ने आपको याद किया है, वे अब राज्य के कार्यभार से निवृत्त होना चाहते हैं, अतः आप शीघ्र ही ठाणापुर नगर पधारें।'

दूत की यह बात सुनकर श्रीपालकुँवर ने अपनी सभी पत्नियों को बुला लिया। अपनी चारों पत्नियों व विशाल परिवार के साथ श्रीपालकुँवर ने ठाणापुर नगरी की ओर प्रयाण किया। क्रमशः बढ़ता हुआ श्रीपालकुँवर ठाणापुरी नगरी के बाहर पहुँच गया। वसुपाल राजा को ज्योंही श्रीपालकुँवर के आगमन के समाचार मिले, उन्होंने श्रीपालकुँवर का भावभीना स्वागत किया।

तत्पश्चात् एक दिन शुभ मुहूर्त में वसुपाल राजा ने अत्यंत ही धूमधाम के साथ श्रीपाल कुँवर का राज्याभिषेक कर दिया। श्रीपाल अब ठाणापुरी नगरी के राजा बने। प्रजा के हित को ध्यान में रखते हुए श्रीपाल राजा, न्याय व नीतिपूर्वक प्रजा का पालन करने लगे।

राजसिंहासन पर बैठे हुए श्रीपाल को एक दिन अचानक अपनी माता की याद आ गई। बस, तत्काल ही उज्जयिनी नगरी की ओर जाने के लिए तैयारियाँ आरंभ करा दीं। चतुरंगी विशाल सेना व अपने विशाल परिवार को साथ में लेकर श्रीपाल राजा क्रमशः आगे बढ़ने लगे।

बीच मार्ग में गाँव-गाँव से सभी राजा-महाराजा कीमती भेंट लेकर श्रीपाल के सामने आने लगे और उत्तम भेंट करने लगे। इस प्रकार क्रमशः आगे बढ़ते हुए श्रीपाल राजा सोपारक नगर के बाहर पधारे।

सोपारक नगर के राजा कुछ भी भेंट आदि लेकर श्रीपाल राजा के आवास में नहीं पधारे, यह जानकर श्रीपाल राजा मन में सोचने लगे-''यहाँ का राजा न तो भक्ति बतला रहा है और न ही शक्ति (पराक्रम) ?''

श्रीपाल राजा ने मंत्री से बात की। मंत्री ने पूछताछ कर पता लगाकर श्रीपाल राजा को कहा, ''यहाँ के राजा महसेन है। उनकी मुख्य रानी का नाम तारामती है। राजा-रानी की एक इकलौती बेटी है, जिसका नाम **तिलकसुंदरी** है। वह तिलकसुंदरी रूप और सौंदर्य में साक्षात् तिलोत्तमा के समान है। वह स्त्रियों की 64 कलाओं में निपुण है।''

``कल वह राजकुमारी उद्यान में अपनी सखियों के साथ क्रीड़ा कर रही थी, तभी उसे दीर्घपृष्ठ जाति के सर्प ने डस लिया। सर्प के विष के कारण वह बेहोश हो गई। राजा ने अनेक मांत्रिक-तांत्रिक व वैद्यों को बुलाकर अनेकविध उपचार किए, परंतु तिलकसुंदरी विष-मुक्त नहीं बन पाई, परिणामस्वरूप उसे मृत समझकर श्मशान भूमि में ले गए हैं। पुत्री के मरण से शोकार्त होने के कारण वह राजा आपको अपनी भक्ति बताने के लिए आपकी सेवा में उपस्थित नहीं हो पाया है।''

श्रीपाल ने कहा, ``वह मूर्च्छित कन्या कहाँ है ? मुझे तत्काल उसके पास ले चलो।''

श्रीपाल तत्काल अश्वारूढ़ हुए...और श्मशान घाट की ओर चल पड़े।

उस समय तक राजकुमारी को चिता पर लिटा दिया गया था। श्रीपालकुँवर ने उसके मृतदेह को नीचे उतारने के लिए आज्ञा दी। श्रीपाल ने पानी मंगाया। तत्काल श्रीपाल ने अपने हार को उतारकर पानी में डाला और हार का न्हवण जल कन्या पर छिड़का। हार के जल के प्रभाव से निद्रा त्याग कर जाग रही हो, इस प्रकार वह सुंदरी उठकर बैठ गई। राजकुमारी को जीवंत देखकर राजा, रानी व प्रजाजनों का हृदय आनंद से भर आया।

उसी समय राजा ने पुत्री को कहा, ***``बेटी ! अभी ये भाग्यशाली यहाँ नहीं आते तो तेरी मौत हो जाती। तुझे जीवन देने वाले श्रीपाल के चरणों में जीवन-समर्पित कर दे।''***

श्रीपाल राजा को देखकर तिलकसुंदरी के हृदय में भी अपूर्व प्रेम पैदा हो गया। उसने श्रीपाल राजा के चरणों में अपना जीवन समर्पित करने का निर्णय कर लिया।

कुछ समय पूर्व नगर में से निकली हुई श्मशान-यात्रा, स्वागत यात्रा में बदल गई।

महसेन राजा ने खूब धूमधाम के साथ श्रीपाल राजा और तिलक सुंदरी का लग्नोत्सव मनाया।

जिस प्रकार साधु अष्ट प्रवचन माताओं से सुशोभित होता है, उसी प्रकार श्रीपाल राजा आठ पत्नियों से सुशोभित दिखाई देने लगे। अनेक देशों के राजा-महाराजा श्रीपाल राजा की आज्ञा को नतमस्तक होकर वहन करने लगे। श्रीपाल राजा एक चक्रवर्ती की भाँति सुशोभित हुए।

विराट् चतुरंगी सेना के साथ श्रीपाल राजा ने मालव देश में प्रवेश किया । ''कोई परदेशी राजा विराट् सैन्य लेकर इधर आ रहे हैं'' इस बात को जानकर प्रजापाल राजा भयभीत बन गए ।

श्रीपाल राजा ने उज्जयिनी नगरी के बाहर अपने विशाल परिवार के साथ पड़ाव डाला ।

उज्जयिनी नगरी में सर्वत्र दुश्मन राजा की ही बातें होने लगीं । अपने बैठक खंड में रही कमलप्रभा ने अपनी पुत्र-वधू मयणासुंदरी को संबोधित करते हुए कहा, ''बेटी ! दुश्मन राजा ने अपने नगर को चारों ओर से घेर लिया है...समस्त नगरवासी भयभीत हैं । अपने ऊपर भयंकर आपत्ति आ पड़ी है ।

''हे बेटी ! तेरे पति को परदेश गए काफी समय बीत चुका है, परंतु अभी तक उसके कुछ भी समाचार नहीं आए हैं ।''

कमलप्रभा की यह बात सुनकर मयणासुंदरी ने कहा, ''हे माताजी ! आप मन में लेश भी खेद मत करो । दुश्मन राजा का लेश भी भय रखने की आवश्यकता नहीं है । क्योंकि **नवपद ध्यान के प्रभाव से सभी पाप नष्ट हो जाते हैं । नवपद के जाप से शत्रु, हाथी, समुद्र, सिंह, सर्प, दावानल तथा जलोदर आदि सभी भय पलायन कर जाते हैं, इतना ही नहीं, नवपद के प्रभाव से इस लोक और परलोक में भी अकल्प्य संपत्ति की प्राप्ति होती है ।**''

उज्जयिनी के नगरवासियों को दुश्मन राजा की शक्ति में विश्वास था, इसी कारण सभी नगरवासी भयभीत थे, जबकि मयणासुंदरी को नवपद शक्ति में, परमात्मा की शक्ति में अविचल श्रद्धा थी, इस कारण सारा नगर भयभीत होने पर भी एक मयणा पूर्णतया भयमुक्त थी ।

मयणा ने कहा, 'हे माताजी ! शास्त्र में नवपद के प्रभाव का वर्णन अनेक स्थलों में आता है...परंतु मैंने तो आज साक्षात् अनुभव किया है । आज संध्या समय जब मैं त्रिलोक के नाथ की पूजा कर रही थी तब मेरे दिल में अद्‌भुत भाव उत्पन्न हुए, जिसके प्रभाव से अपने सभी भय नष्ट हो जाने चाहिए ।'

माता ने पूछा, 'तुम्हें पूजा में कैसा भाव आया ?'

मयणा ने कहा, 'आज पूजा करते समय मुझे अमृतक्रिया के भाव उत्पन्न हुए हैं ।'

'धर्मक्रिया में एकाग्रता, शास्त्रीय विधि का पालन, भाव की अभिवृद्धि, भव का अत्यंत भय, विस्मित चित्त, रोमांचित देह तथा अत्यंत हर्ष होना ये अमृत क्रिया के लक्षण हैं।'

तद्गत चित्तने समय विधान, भाव नी वृद्धि, भव भय अति घणो जी।
विस्मय पुलक प्रमोद प्रधान, लक्षण ए छे अमृत क्रिया तणो जी॥

रोगी व्यक्ति अमृत की एक बूंद का आस्वाद लेता है और उसके सारे रोग शांत हो जाते हैं, बस, उसी प्रकार अमृत-क्रिया (अनुष्ठान) होने पर सभी भय नष्ट हो जाते हैं।

मयणा बोली, ''हे माताजी ! आज पूजा करते समय जिस आनंद की अनुभूति हुई है, उस आनंद के कारण अभी भी मेरा देह रोमांचित हो रहा है।''

''हे माताजी ! अभी भी मेरी बायीं आँख और उरोज स्फुरित हो रहे हैं, अतः मुझे पूर्ण विश्वास है कि शीघ्र ही मुझे मेरे पति का मिलन होगा।''

मयणा के निर्भयतापूर्ण वचनों को सुनकर कमलप्रभा खुश हो गई और बोली, ''बेटी ! तेरी बात सत्य है, क्योंकि तेरी जीभ में सदैव अमृत बसता है, तेरा वचन अवश्य सिद्ध होगा। क्योंकि तूने मन, वचन और काया की एकाग्रतापूर्वक धर्म की आराधना की है।''

उस समय मयणा के वचन को मानों सत्य सिद्ध करने के लिए ही धर्म के प्रभाव से श्रीपाल राजा द्वार के पास आ गए और द्वार खटखटाने लगे।

कमलप्रभा अपने पुत्र की वाणी को पहिचान गई और बोली, ''बेटी ! यह तो श्रीपाल की ही आवाज है।''

मयणा ने कहा, **''जिनमत की श्रद्धा कभी झूठी नहीं होती है।''**

उसी समय मयणासुंदरी ने दरवाजा खोला। श्रीपाल ने महल में प्रवेश किया और सर्वप्रथम अपनी माता के चरणों में भावपूर्वक प्रणाम किया।

श्रीपाल की महानता कितनी ! अपार संपत्ति व वैभव का मालिक होने पर भी अपनी माँ के आगे तो एक बालक की तरह नम्र बनकर रहा।

आज व्यक्ति को सत्ता व संपत्ति मिलती है तो वह खंभे की तरह अकड़ जाता है, अपने उपकारी माता और पिता के चरणों में नमस्कार करते हुए भी उसे शर्म का अनुभव होता है।

धिक्कार है ऐसी संपत्ति को, जिसके आने के बाद व्यक्ति परम उपकारी माता-पिता को ही भूल जाता है ।

कमलप्रभा ने अपने पुत्र श्रीपाल को शुभाशिष प्रदान की । तत्पश्चात् श्रीपाल राजा अपनी माता को कंधे पर उठाकर और अपनी पत्नी को हाथों में उठाकर नगर के बाहर अपनी छावनी में ले आया । वहाँ पर उसने अपनी माता को सिंहासन पर बिठाया और बोला, ``नवपद का प्रभाव देखो । यह सब नवपद के प्रभाव से प्राप्त हुआ है ।''

उसी समय श्रीपाल की सभी पत्नियों ने अपनी सास के चरणों में नमस्कार किया । तत्पश्चात् उन सब ने मयणासुंदरी को प्रणाम किया ।

कमलप्रभा ने अपनी पुत्र-वधुओं को शुभाशिष प्रदान की । उसके बाद सभी कन्याओं ने देश-देशांतर में बनी सभी घटनाएँ मयणासुंदरी को सुनाई, जिन्हें सुनकर कमलप्रभा व मयणासुंदरी भी प्रसन्न हो गईं ।

श्रीपाल ने मयणा से कहा, ``सुंदरी ! बोल, तेरे पिता को मैं यहाँ किस प्रकार बुलाऊँ ?''

मयणा ने कहा, ``मेरे पिता अपने स्कंध पर कुल्हाड़ा लेकर आएँ इस प्रकार उन्हें बुलाएँ, ताकि फिर कोई भी व्यक्ति जैनधर्म की आशातना नहीं करे ।''

प्रातः काल होते ही श्रीपाल राजा ने दूत के मुख से प्रजापाल राजा को कहलवाया, या तो आप अपने स्कंध पर कुल्हाड़ा लेकर आएँ अथवा युद्ध के लिए तैयार हो जाएँ ।

दूत की यह बात सुनकर एक बार तो प्रजापाल राजा अत्यंत ही गुस्से में आ गए और लड़ने के लिए तैयार हो गए...परंतु बुद्धिशाली मंत्री ने राजा को समझाते हुए कहा, **``दीपक का प्रकाश होने पर अंधकार नष्ट हो जाता है, परंतु तेज पवन से तो वह दीपक ही बुझ जाता है । सामान्य राजा आपके अधीन हो जाते हैं, अतः आप उनके लिए दीपक के समान हो, परंतु यह राजा तो तीव्र आंधी समान है । उसका प्रतिकार करने में तो आपको ही नुकसान है । अतः जहाँ बल नहीं चलता हो, वहाँ अक्ल से ही काम लेना चाहिए ।''**

आखिर राजा ने मंत्री की बात मान ली । वह अपने स्कंध पर कुल्हाड़ा लेकर नगर के बाहर श्रीपाल की छावनी की ओर बढ़ने लगा ।

निकट आते ही श्रीपाल ने वह कुल्हाड़ा नीचे रखवा दिया । श्रीपाल ने प्रजापाल राजा को बैठने के लिए योग्य आसन प्रदान किया ।

मयणासुंदरी ने कहा, ``हे पिताजी ! **कर्म में जो लिखा होता है, वही होता है ।** आप मेरे इन वचनों को याद करें और उसके अनुसार आपने जो मुझे पति दिया था, उसकी समृद्धि देखें ।''

मयणा के इन वचनों को सुनकर प्रजापाल राजा आश्चर्यचकित हो गया, उसने श्रीपाल को प्रणाम किया और बोला, ``अभी तक मैं आपको पहिचान नहीं पाया था ।''

श्रीपाल ने कहा, ``यह सब मेरा प्रभाव नहीं है, यह तो सब गुरु भगवंत के द्वारा निर्दिष्ट नवपद का प्रभाव है ।''

उस समय सौभाग्यसुंदरी, रूपसुंदरी आदि सारा परिवार इकट्ठा हुआ ।

अपने परिवारजन के आनंद के लिए नाट्य मंडली को आदेश दिया गया ।

राजा का आदेश होते ही सभी नट खड़े हो गए...परंतु बार-बार कहने पर भी जो मुख्य नटी थी, वह खड़ी नहीं हो रही थी । आखिर चारों ओर से दबाव आने पर वह खड़ी हुई और एक दोहा बोलने लगी-

'किंहा मालव किंहा शंखपुर किंहा बब्बर किंहा नट्ट ?
सुरसुंदरी नचावीये, दैवे दल्यो विमरट्ट ।।'

अर्थात् कहाँ मेरी जन्म-भूमि मालव देश ! कहाँ शंखपुर ! कहाँ बर्बरकुल में मुझे बेचना और नाटक सीखना । हाय ! भाग्य ने मेरा समस्त गर्व चूर-चूर कर दिया और मुझे इस प्रकार नचाया ।

सुरसुंदरी के इन वचनों को सुनकर सभी लोग मन में विचार करने लगे, ``क्या यही सुरसुंदरी है ?''

उसी समय सुरसुंदरी रोती हुई माँ के गले लग गई । माँ ने पूछा, `बेटी ! तेरी यह हालत कैसे हो गई ?'

सुरसुंदरी ने कहा, `आपने मुझे अपार संपत्ति प्रदान की । मै अपने

पति के साथ शंखपुर नगर के बाहर पहुँची । उस समय सुंदर मुहूर्त नहीं होने से मैं नगर बाहर उद्यान में ही रही ।

``रात्रि के समय लुटेरों का गिरोह आया । उन्होंने अपनी लूट चलाई । आपके दामाद तो अपनी जान बचाने के लिए कहीं भाग गए...परंतु मैं उनके जाल में फँस गई । उन्होंने मुझे नेपाल देश में बेच दिया । वहाँ एक सार्थवाह ने मुझे खरीद लिया । उसके बाद उस सार्थवाह ने बर्बरकुल नगर में मुझे बेचा । एक वेश्या ने मुझे खरीदा । वहाँ रहते हुए मैंने नृत्यकला सीखी । उस वेश्या ने मुझे नटी बना दिया । उसके बाद महाकाल राजा ने वह नाट्य मंडली खरीद ली और अपनी पुत्री **मदनसेना** के लग्न प्रसंग पर वह नाट्य मंडली श्रीपाल को भेंट दी ।

``हे पिताजी ! इस मदनसेना के पति के आगे मैंने अनेक बार नाटक किया है...परंतु आज अपने परिवार को देखकर मेरा दिल दुःख से भर आया है ।

``मेरे लग्न प्रसंग पर मैंने मयणा को दुःखी देखकर अभिमान किया था, परंतु उस अभिमान के फल स्वरूप मुझे मयणा के पति के आगे एक दासी के रूप में रहना पड़ा ।''

वह सुरसुंदरी मयणा की प्रशंसा करती हुई बोली, ``सचमुच, मयणा ने विजय हासिल की है, अपने शीलव्रत के कारण वह जग-मशहूर बनी है । **मयणा ने जैन धर्म की आराधना की, वह आराधना उसे कल्पवृक्ष की तरह फली है तथा मैंने मिथ्या धर्म का सेवन किया है, वह मुझे विष वृक्ष की तरह फलदायी बना है ।**

एक ही समुद्र में से विष और अमृत पैदा होता है, उसी प्रकार एक ही कुल में पैदा होने पर भी हमारे बीच विष और अमृत जितना अंतर है ।

मयणा के दर्शनमात्र से सम्यक्त्व की शुद्धि होती है और मेरे दर्शन से मिथ्यात्व की ही पुष्टि होती है ।''

उसी समय राजा ने दूत भेजकर अरिदमन राजकुमार को बुलवाया और उसे सुरसुंदरी प्रदान की । श्रीपाल व मयणा के प्रभाव से सुरसुंदरी ने भी शुभ अध्यवसायों द्वारा सम्यक्त्व प्राप्त किया ।

पहले जो 700 कोढ़ी रोगमुक्त बने थे, उन सबको भी मयणासुंदरी ने बुलवा लिया ।

श्रीपाल राजा अपने विशाल परिवार के साथ आनंदपूर्वक दिन व्यतीत करने लगा ।

एक शुभ दिन मतिसागर मंत्री श्रीपाल राजा के चरणों में उपस्थित हुआ । श्रीपाल राजा ने उसे मंत्री पद प्रदान किया ।

मतिसागर मंत्री ने श्रीपाल राजा से कहा, ``बाल्य वय में आपको, पिता के पद पर स्थापित किया गया था...परंतु आपके चाचा ने आपको पदभ्रष्ट कर दिया था, वे आपके दुश्मन अजितसेन राजा अभी मदोन्मत्त बने हुए हैं । जो राजा शत्रु के हाथ में गए हुए पिता के राज्य पर अपना कब्जा नहीं करता है, वह जगत् में निंदा का पात्र बनता है ।''

श्रीपाल ने कहा, ``मंत्रीश्वर ! तुम्हारी बात बिल्कुल ठीक है, **पिता के राज्य को पाने के लिए साम (मधुर वचन) नीति से काम चल सकता हो तो दंड का क्या मतलब ? शक्कर खाने से पित्त मिट जाता हो तो कड़वी दवाई क्यों लें ?**''

उसी समय राजा ने चतुर्मुख दूत को योग्य शिक्षा देकर चंपानगरी की ओर रवाना किया ।

क्रमशः बढ़ते हुए दूत ने चंपा में प्रवेश किया । अजितसेन महाराजा के पास जाकर उसने सर्वप्रथम प्रणाम किया । तत्पश्चात् उसने कहा, ``हे राजन् ! आपने श्रीपाल कुँवर को `बाल' समझकर योग्य कलाओं के शिक्षण के लिए बाहर भेजा था, वे श्रीपाल समस्त कलाओं में निपुण बनकर चतुरंगी सेना के साथ आ रहे हैं । जिस प्रकार स्तंभ जीर्ण हो गया हो तो उसके स्थान पर नया स्तंभ रखा जाता है, उसी प्रकार आप भी वृद्ध हो चुके हैं, अतः नए स्तंभ समान श्रीपाल को राज्य की जवाबदारी सौंपकर आप अपना प्रेम भाव दिखलाएँ ।

अभी अनेक राजा-महाराजा श्रीपाल के चरण कमलों की भक्ति कर रहे हैं...परंतु अभी तक आप नहीं पधारे, इससे विरोध पैदा हुआ है । वे श्रीपाल अपने मार्ग में रहे काँटों को दूर करने में पूर्णतया सक्षम हैं ।

कहाँ मेरु और कहाँ सरसों का दाना !

कहाँ सूर्य और कहाँ चंद्र !

कहाँ सिंह और कहाँ मृग !

कहाँ बगीचा और कहाँ उजाड़ वन !

कहाँ रत्न और कहाँ काच का टुकड़ा !

कहाँ श्रीपाल और कहाँ आप !

सागर समान श्रीपाल के विराट् सैन्य के आगे आपका सैन्य तो अत्यंत तुच्छ है । अतः बलवान के साथ युद्ध करना उचित नहीं है ।''

दूत के इन वचनों को सुनकर अजितसेन राजा एकदम कोपायमान हो गया और बोला, ''अरे दूत ! तू बोलने में बहुत चालाक है । तू जाकर अपने स्वामी को कह देना, अजितसेन कभी भी तुझे झुकने के लिए आनेवाला नहीं है । तू प्रारंभ में मीठे, बीच में खट्टे तथा अंत में कटु वचन बोलने में होशियार है...और इसी कारण तेरा नाम चतुर्मुख रखा है ।

हे दूत ! श्रीपाल मेरा सगा नहीं, किंतु दुश्मन है । मैंने तो उसे बालक मानकर छोड़ दिया था, तो क्या अब वह बलवान हो गया और मैं कमजोर ?

याद रखना, उसने सोए हुए सिंह को जगाया है, उस पर यमराज रोषायमान हुआ है, अरे ! श्रीपाल के सागर जैसे विराट् सैन्य को भस्मीभूत करने में तो मैं बड़वानल समान हूँ ।

तू यहाँ से जल्दी जा, मैं भी युद्ध के मैदान में आ रहा हूँ, क्योंकि बल की परीक्षा तो युद्धभूमि में होती है ।''

दूत ने जाकर ये सारी बातें श्रीपाल को सुना दीं । अजितसेन राजा की युद्ध की भावना को जानकर श्रीपाल राजा भी युद्ध के लिए तैयार हो गया ।

विराट् सैन्य के साथ श्रीपाल राजा ने चंपानगरी की ओर प्रयाण किया । कुछ ही दिनों में श्रीपाल राजा चंपानगरी के बाहर पहुँच गया ।

श्रीपाल व अजितसेन की सेना, युद्ध के मैदान में आमने-सामने आ गई । समय होते ही युद्ध की भेरियाँ बज उठीं और युद्ध प्रारंभ हो गया । युद्ध के मैदान में सैनिक तीक्ष्ण बाणों के प्रहार द्वारा शत्रुओं के मस्तक छेदने लगे । देखते-ही-देखते युद्ध भूमि में मानों खून की नदियाँ बहने लगीं । चारों ओर का वातावरण अत्यंत ही भयंकर हो गया ।

श्रीपाल राजा के सैनिकों ने अपना अद्‌भुत पराक्रम दिखलाया । अजितसेन का सैन्य समाप्त होने लगा । अपने सैन्य को परास्त देख अजितसेन राजा स्वयं युद्ध के मैदान में आ गए । श्रीपाल के 700 राजाओं ने अजितसेन राजा को चारों ओर से घेर लिया...अंत में, नीचे गिराकर बंधनग्रस्त कर लिया ।

युद्धभूमि में हार खाकर अजितसेन राजा की सुषुप्त चेतना जागृत हो उठी । वे सोचने लगे, ''अहो ! बिना सोचे-समझे मैंने यह कैसा अकार्य कर लिया ? मैंने दूत के वचन स्वीकार नहीं किये, परिणामस्वरूप मुझे लज्जित होना पड़ा ।''

''जो व्यक्ति अपनी शक्ति का विचार किए बिना बलवान से युद्ध करता है, उसे बाद में पछताना ही पड़ता है । बस, दूत के हितकारी वचनों को नहीं मानने के कारण मेरी भी यह दुर्दशा हुई है ।''

''अहो ! वृद्ध होने पर भी अन्य का द्रोह करने वाला मैं कैसा पापी और अपने अपकारी पर भी उपकार करने वाला यह कैसा महान् श्रीपाल ! मेरे वृद्धपन को धिक्कार हो ।

''जो गोत्रद्रोह करता है, उसकी जगत् में कीर्ति नहीं रहती है, जो राजद्रोह करता है, उसके पास न्याय नहीं रहता है, जो बालद्रोह करता है, उसकी सद्‌गति नहीं होती है ।''

''अहो ! मैंने तो अपने जीवन में गोत्रद्रोह, राजद्रोह और बालद्रोह तीनों कर दिए हैं, अब मेरी क्या हालत होगी ?''

''अहो ! जीवन में किए ऐसे भयंकर पापों से निवृत्त होने के लिए जिनेश्वर भगवंतों द्वारा उपदिष्ट 'कर्म' रूपी वन को दहन करने वाली और मोक्ष सुख देनेवाली प्रव्रज्या को क्यों न स्वीकार कर लूँ ?'' इस प्रकार शुभ ध्यान की धारा में चढ़ते हुए अजितसेन ने उसी समय चारित्र मोहनीय ग्रंथि का क्षयोपशम हो जाने से भाव से चारित्र स्वीकार कर लिया ।

अजितसेन संसारी मिटकर साधु बन गए ।

भोगी मिट कर योगी बन गए ।

अगारी मिटकर अणगार बन गए ।

पाँच समिति और तीन गुप्ति से युक्त अजितसेन को मुनि के रूप में देखकर श्रीपाल राजा भी अत्यंत ही भक्ति भावपूर्वक उनके चरणों में गिर पड़े

और भावपूर्वक अजितसेन महामुनि की स्तुति करते हुए बोले, ``हे मुनिवर ! मैं आपके चरणों में भावपूर्वक प्रणाम करता हूँ। आपने उपशम रूपी असिधारा द्वारा क्रोध को नष्ट कर दिया।

आपने मार्दव रूपी वज्र द्वारा अभिमान रूपी पर्वत को चूर डाला। आपने सरलतारूपी कुल्हाड़े द्वारा माया रूपी विषलता को काट दिया। आपने संतोष रूपी जहाज द्वारा लोभ का महासागर पार कर लिया।

हे मुनिवर ! आपने भव रूपी वृक्ष की जड़ समान इन चारों कषायों को मूल से उखाड़ दिया।

जिस कामदेव ने देवताओं को जीत लिया है, उस कामदेव को भी आपने परास्त कर दिया।

रति-अरति-भय-शोक-दुगुंछा रूपी दोषों को जड़ मूल से निकाल दिया है।''

हे मुनिवर ! आप आत्म-स्वभाव का अनुभव करने वाले योगी हो। आप आत्मा के ज्ञानादि गुणों के भोक्ता हो। आप स्व (आत्म) धर्म में स्थिर हो, उपशम रस की वर्षा करने वाले हो। आप निश्चय से संवर भाव वाले हो। आपने आस्रव के द्वार सर्वथा रोक लिये हैं।

आप राग रहित हो। आप त्यागी हो। आप पूजनीय हो।''

श्रीपाल राजा ने इस प्रकार मुनि की भावपूर्वक स्तवना की। तत्पश्चात् वे मुनिवर अन्यत्र विहार कर गए।

उसके बाद श्रीपाल राजा ने चंपानगरी में प्रवेश किया। सिंहरथ राजा के महान् पुत्र श्रीपाल राजा को प्राप्त कर चंपानगरवासियों ने उनका भावभीना स्वागत किया। ध्वजा, पताका और तोरणों के द्वारा समस्त नगर को सजा दिया गया। चारों ओर नगर की स्त्रियाँ मंगल गीत-गान कर रही थीं। विशाल परिवार के बीच श्रीपाल महाराजा चंद्र की भाँति शोभा दे रहे थे।

राजदरबार में प्रवेश करने के बाद श्रीपाल महाराजा का पुनः राज्याभिषेक किया गया। मयणासुंदरी को पटरानी व अन्य स्त्रियों को रानीपद प्रदान किया गया। श्रीपाल राजा ने मतिसागर को मंत्रीपद प्रदान किया।

कोशांबी नगरी से धवलसेठ के पुत्र विमलसेठ को बुलाया गया । सुवर्ण वस्त्र आदि अमूल्य वस्तुओं से उसका स्वागत कर उसे नगरसेठ की पदवी ही गई ।

विशाल राज्य की प्राप्ति के बाद भी श्रीपाल राजा के दिल में नवपद की भक्ति बढ़ती ही गई ।

सामान्य व्यक्ति शक्ति, सत्ता व संपत्ति प्राप्त होने पर धर्म को भूल जाता है, जबकि श्रीपाल की परमात्म-शक्ति दिन-दूनी रात-चौगुनी बढ़ती ही गई ।

श्रीपाल की सभी स्त्रियाँ भी धर्मध्यान में अधिक उद्यमवंत बनीं ।

श्रीपाल ने नगर में चारों ओर अमारि का पटह बजवाया । उसने सभी आजीवन कैदियों को बंधन से मुक्त कर दिया ।

गंगा के निर्मल जल की भाँति श्रीपाल का उज्ज्वल यश चारों ओर फैलने लगा ।

विशाल साम्राज्य की प्राप्ति होने पर भी श्रीपाल के मन में लेश भी अभिमान पैदा नहीं हुआ, वे हिमालय की भाँति अत्यंत विराट् और सागर की भाँति अत्यंत ही गंभीर थे ।

श्रीपाल महाराजा न्याय और नीतिपूर्वक प्रजा का पालन करने लगे ।

8 पूर्व-भव

रत्नत्रय की सुविशुद्ध आराधना के फलस्वरूप अजितसेन राजर्षि को निर्मल अवधिज्ञान उत्पन्न हुआ । अपने अवधिज्ञान के द्वारा जगत् के यथार्थ स्वरूप को समझाते हुए वे पृथ्वीतल पर विचरने लगे और भव्य जीवों को प्रतिबोध देकर महान् उपकार करने लगे ।

अपने चरण-कमलों से पृथ्वीतल को पावन करते हुए अजितसेन महामुनि एक दिन चंपानगरी में पधारे । महामुनि के आगमन का पता चलते ही श्रीपाल महाराजा ने उनका भावभीना हार्दिक स्वागत किया ।

तत्पश्चात् श्रीपाल महाराजा अपने विशाल परिवार के साथ महामुनि की धर्मदेशना सुनने के लिए गये और योग्य स्थान पर आसीन हुए ।

अत्यंत ही धीर गंभीर वाणी में धर्मदेशना देते हुए अजितसेन महा-मुनि ने कहा, ''हे भव्य प्राणियो !

वीतराग परमात्मा की इस वाणी को आप अपने चित्त में धारण करो ! इस संसार में अधिकांश प्राणी मोह के नशे में चकचूर होकर अपने ही मूलभूत स्वरूप का भान भूल जाते हैं । मोह से मुक्त हुए बिना इस संसार में कहीं से भी सच्चा सुख प्राप्त नहीं होता है ।

यह मनुष्य भव दश दृष्टांतों से दुर्लभ है-जैसे-किसी पत्थर के स्तंभ को चूर्ण-चूर्णकर दें फिर मेरु पर्वत पर चढ़कर किसी नली में भरकर फूंक मारकर उस चूर्ण को चारों दिशाओं में उड़ा दें । क्या उन बिखरे हुए परमाणुओं को इकट्ठाकर उसमें से पुनः स्तंभ बनाया जा संकता है ?

कदापि नहीं । फिर भी कदाचित् किसी देव की सहायता से यह दुष्कर कार्य भी संभव हो जाय परंतु एक बार खोया हुआ यह मानव भव पुनः प्राप्त होना अत्यंत ही दुर्लभ है !

इस पृथ्वी पर रहे सभी धान्यकणों को इकट्ठा किया जाय और उसमें मुट्ठी भर सरसों के दानों का मिश्रण किया जाय, फिर आँखों से कमजोर किसी बुढ़िया को आदेश दिया जाय कि वह उस ढेर में से सभी सरसों के दाने बाहर निकाले ! क्या यह संभव है ?

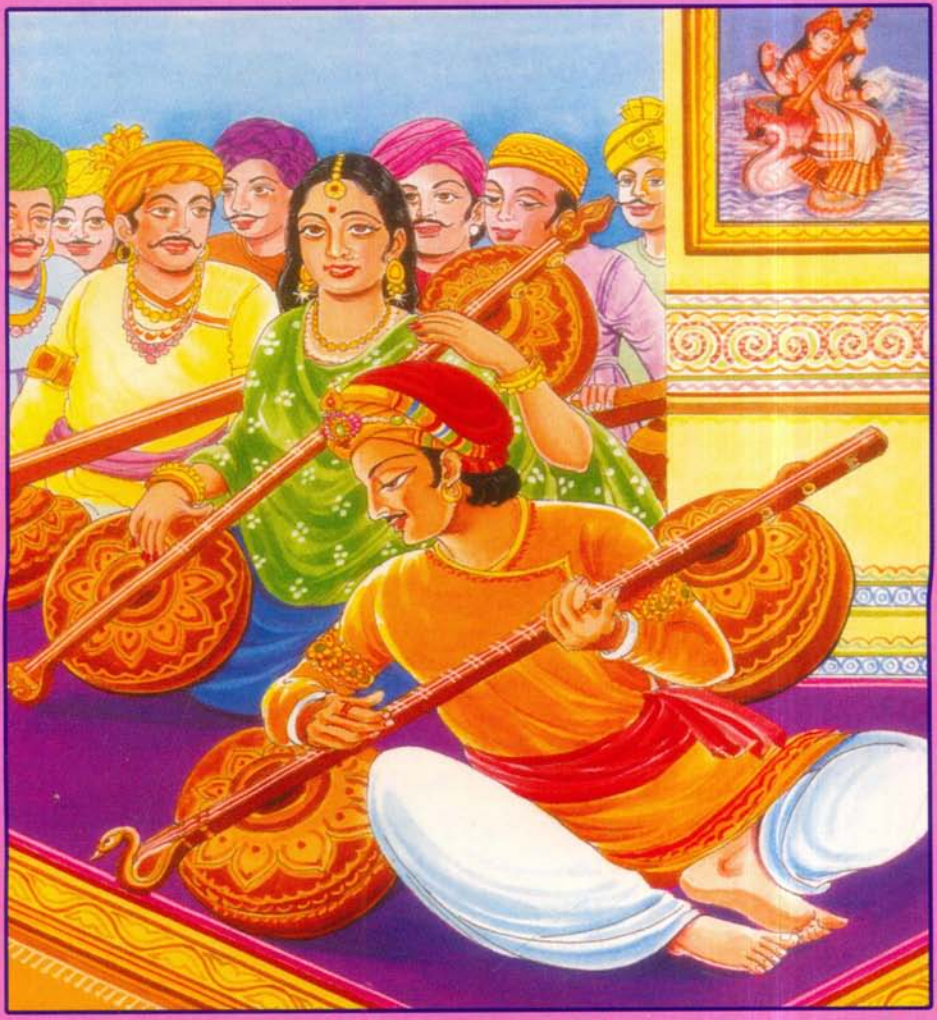

गुणसुंदरी ने यह प्रतिज्ञा की है कि, ''जो मुझे वीणावादन में हराएगा, उसी के साथ पाणिग्रहण करूंगी ।''

लग्न जीवन में जीवन पर्यंत का संबंध होता है, अतः समान रुचि वाले के साथ संबंध हुआ हो, तो वह संबंध सुखदायी रह सकता है, परंतु विपरीत रुचिवालों के बीच संबंध हो गया तो जीवनभर रोना-पछताना ही पड़ता है ।

राजकुमारी की इस प्रतिज्ञा को सुनकर उसके रूप व गुणों में मोहित बने अनेक राजकुमार वीणावादन में निपुण पंडित के पास रहकर वीणा सीखने का अभ्यास करते हैं ।

प्रति मास राजसभा में उन सबकी परीक्षा होती है । परंतु राजकुमारी के वीणावादन के आगे वे परास्त हो जाते हैं । उस नगर में सर्वत्र जहाँ देखो वहाँ युवा वर्ग वीणा बजा रहे हैं ।

(पृष्ट सं. 66 पर)

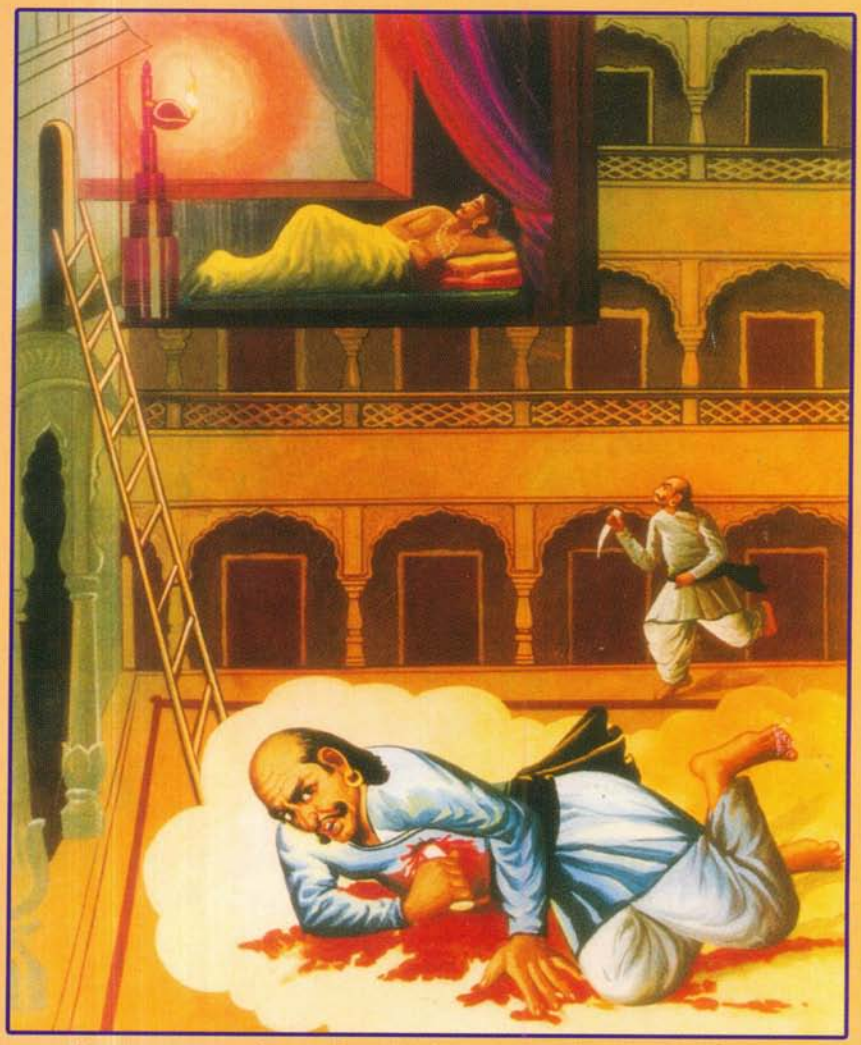

अनेक बार हार खाने पर भी धवलसेठ अपनी दुर्जनता का त्याग करने के लिए तैयार नहीं हो पाया ।

तीव्र पापोदय से व्यक्ति को दुर्बुद्धि सूझती है । बस, इसी न्याय से धवलसेठ ने सातवीं मंजिल पर रहे श्रीपाल कुँवर को छुरी से मारने का संकल्प किया ।

रात्रि समय में श्रीपाल अपने महल में आराम से निद्राधीन बना हुआ था, उसी समय गुप्त मार्ग से हाथ में छुरी लेकर धवलसेठ ऊपर चढ़ने लगा । परंतु बीच मार्ग में ही अंधेरे में वह अपना पैर चूक गया...और धरती पर गिर पड़ा । उसके हाथ में रही छुरी उसकी मौत का कारण बन गई ।

अपार धन संपत्ति और वैभव को छोड़कर धवलसेठ मरकर 7 वीं नरक भूमि में चला गया ।

(पृष्ट सं. 64 पर)

कदाचित् दैवी सहायता से यह संभव हो जाय परंतु एकबार खोया हुआ यह मानव भव पुनः प्राप्त होना अत्यंत ही दुष्कर है ।

मानव-जन्म की प्राप्ति के बाद भी आर्यदेश की प्राप्ति होना अत्यंत दुर्लभ है ।

आर्यदेश में जन्म होने के बाद उत्तम कुल की प्राप्ति होना अत्यंत ही दुर्लभ है । क्योंकि आर्यदेश में भी यदि कसाई आदि के वहाँ जन्म हो गया हो तो भी धर्म-आराधना संभव नहीं है ।

उत्तमकुल मिलने के बाद भी पाँच इन्द्रियों की परिपूर्णता प्राप्त होना अत्यंत ही दुर्लभ है । इन्द्रियों के अभाव में भी धर्मसाधना शक्य नहीं है ।

आंख न हो तो जीव दया का पालन, स्वाध्याय, प्रभुदर्शन एवं गुरु-भक्ति आदि कैसे संभव हैं ! कान ही न हो तो गुर्वाज्ञा का श्रवण एवं जिनवाणी का श्रवण कैसे संभव है !

जीभ ही न हो तो प्रभु का गुणगान, धर्मोपदेश एवं किसी को सही मार्गदर्शन कैसे संभव हैं ?

मोक्षमार्ग की साधना में पाँच इन्द्रियाँ खूब जरूरी हैं ।

पाँच इन्द्रियों की प्राप्ति के बाद भी दीर्घ आयुष्य खूब जरूरी है । कई लोग जन्म के बाद तुरंत मर जाते हैं ।

इन सब वस्तुओं की प्राप्ति के बाद भी सद्गुरु का समागम अत्यंत ही दुर्लभ है, क्योंकि सद्गुरु ही मोक्ष की सही दिशा बतलाते हैं ।

सद्गुरु के संयोग में भी 13 वस्तुएँ (काठिए) अत्यंत ही बाधक हैं जैसे-

1) आलस्य :- आज प्रवचन है किंतु व्यक्ति सोचता है, आज नहीं कल जाएंगे ।

2) मोह :- प्रवचन में जाना है, परंतु बच्चों को कौन संभालेगा ?

3) अवज्ञा :- महाराज का तो उपदेश देना, यह धंधा है । वे रोटी थोड़े ही देनेवाले हैं ।

4) क्रोध :- महाराज सब छोड़ने की ही बात करते रहते हैं, सब छोड़ देंगे तो क्या खाएंगे ? इस प्रकार साधु-संतों के प्रति क्रोध भाव व्यक्त करना ।

5) अभिमान :- हमको कहाँ आमंत्रण मिला है, हम क्यों जाए ? 'महाराज क्या जानते हैं ?' उनसे अधिक मैं जानता हूँ !'

6) प्रमाद :- इधर-उधर की बातों में निरर्थक समय बर्बाद करना ।

7) भय :- महाराज के पास जाएंगे तो कुछ बाधा लेनी पड़ेगी ।

8) शोक :- 'आज अमुक भाई की मृत्यु हो गई है अतः मैं कैसे जाऊँ !

9) अज्ञान :- प्रवचन में जाऊंगा और महाराज ने कुछ प्रश्न पूछ लिया तो मेरी अज्ञानता का प्रदर्शन हो जाएगा ।

10) विकथा :- स्त्रीकथा, देशकथा आदि पढ़ने-सुनने में निरर्थक समय बरबाद करना ।

11) कृपणता :- प्रवचन में दान की बात आ गई तो मुझे भी कुछ रकम लिखानी पड़ेगी ।

12) कौतुक :- बाजार व चौराहे में खेल-तमाशे आदि देखने में लीन हो जाना ।

13) विषय :- पाँच इन्द्रियों के विषय में आनंदपूर्वक प्रवृत्ति करना ।

इन तेरह काठियों को जीतकर कोई सद्गुरु के पास धर्मश्रवण के लिए चला भी गया तो वहाँ भी निद्रा आदि दोष परेशान करते हैं । कइयों को व्याख्यान में ही नींद आती रहती है । श्रृंगार रस आदि की कथाओं के रसिकों को भी तत्त्वज्ञान गर्भित प्रवचनों में आनंद नहीं आता है ।

जिनवाणी के श्रवण के बाद भी उन पर श्रद्धा होना अत्यंत ही दुर्लभ है ।

जिनेश्वर भगवंत के द्वारा कहे गए तत्त्वों पर श्रद्धा होने के बाद उसका जीवन में आचरण अर्थात् दशविध यतिधर्म का पालन अत्यंत ही दुर्लभ है ।

दशविध-यतिधर्म :-

(1) क्षमा :- जानबूझकर या अनजान में जीवन में हुई भूलों के लिए क्षमा मांगना और दूसरों की भूलों को क्षमा कर देना यह एक महान् गुण है । क्षमा से ही साधु की शोभा है ।

(2) मार्दव :- सभी के साथ नम्रतापूर्वक व्यवहार करना इसे मार्दव कहते हैं । इस धर्म के पालन के लिए अपनी जाति कुल, ज्ञान आदि के अहंकार भाव को छोड़ना बहुत ही जरूरी है ।

(3) आर्जव :- माया का अभाव । अपना व्यवहार सरल होना चाहिए, उसमें माया-कपट को कोई स्थान नहीं होना चाहिए । जिस प्रकार साँप का कोई विश्वास नहीं करता है, उसी प्रकार मायावी व्यक्ति का भी कोई विश्वास नहीं करता है ।

(4) मुक्ति :- लोभ का अभाव ! लोभ से सभी गुणों का नाश होता है । जिस प्रकार अग्नि, काष्ठ का भक्षण करती हैं, उसी प्रकार लोभ सभी गुणों को खा जाता है ।

(5) तप :- भूतकाल में बँधे हुए कर्मों को खपाने के लिए तप धर्म का आचरण खूब जरूरी है । तप से कर्म जलकर खाक हो जाते हैं ।

(6) संयम :- इन्द्रियों पर अंकुश रखना और मन में उठने वाली अयोग्य इच्छाओं पर नियंत्रण रखना, उसे संयम कहते हैं । संयम धर्म के पालन से कर्मों के आस्रव द्वार बंद हो जाते हैं ।

(7) सत्य :- सदैव प्रिय, हितकारी और सत्य वचन का ही उच्चार करना चाहिए । असत्यवचन से वाणी के कई रोग पैदा होते हैं ।

(8) शौच :- मन को निर्मल रखना उसे शौच कहते हैं । बाह्य शुद्धि से नहीं बल्कि मन की शुद्धि से ही आत्म-कल्याण संभव है ।

(9) अकिंचनता :- संयम के उपकरण सिवाय अन्य किसी बाह्य पदार्थों का संग्रह नहीं करना अकिंचनता है । संयम के उन साधनों पर भी ममत्वभाव नहीं होना चाहिए, क्योंकि ममत्व ही आत्मा के लिए जटिल बंधन है ।

(10) ब्रह्मचर्य :- मन, वचन और काया से निर्मल शील धर्म का पालन करना । ब्रह्म अर्थात् आत्मा में रमण करना ही ब्रह्मचर्य है ।

क्षमा के 5 प्रकार

(1) उपकार क्षमा :- किसी व्यक्ति ने अपने पर उपकार किया हो तो उस उपकार के भार से दबे होने के कारण, उस उपकारी के आक्रोश आदि को समतापूर्वक सहन करना, उसे उपकार क्षमा कहते हैं ।

(2) अपकार क्षमा :- सामनेवाला व्यक्ति शारीरिक या आर्थिक दृष्टि से शक्तिशाली हो तो अपने भावी नुकसान के भय से उसके अपराध को क्षमा

कर देना अपकार क्षमा है ।

(3) विपाक क्षमा :- क्रोध के फलस्वरूप इस लोक या परलोक में होनेवाले नुकसानों को लक्ष्य में रखकर जो क्षमा रखी जाती हैं, वह विपाक क्षमा है ।

(4) वचन क्षमा :- वीतराग प्रभु की आज्ञा है-'क्रोध नहीं करना चाहिए और क्षमा भाव रखना चाहिए ।' प्रभु की इस आज्ञा को नजर समक्ष रखकर जो क्षमा रखी जाती है, उसे वचन क्षमा कहते हैं ।

(5) धर्म क्षमा :- क्षमा रखना यह मेरा आत्म धर्म है । जो जल रहा है, वह मेरा नहीं और जो मेरा है, वह कभी जलता नहीं, इस प्रकार गजसुकुमाल आदि की भांति जो क्षमा भाव रखा जाता है, वह धर्म क्षमा है ।

इनमें उपकार, अपकार और विपाक क्षमा लौकिक है जबकि वचन और धर्मक्षमा, लोकोत्तर क्षमा है ।

अनुष्ठान के चार प्रकार :-

1) प्रीति अनुष्ठान :- जिस अनुष्ठान में परम आदर और प्रीति होती है, और करनेवाले का हितकारी उदय हो, अन्य कार्यों का त्याग करके भी जो अनुष्ठान एक निष्ठा से करता हो, उसे प्रीति अनुष्ठान कहते हैं ।

2) भक्ति अनुष्ठान :- विशेष गौरव (पूज्यभाव) के योग से बुद्धिमान् पुरुष का अत्यंत विशुद्ध योगवाला अनुष्ठान, भक्ति अनुष्ठान कहलाता है ।

प्रीति और भक्ति में अनुष्ठान की समानता होने पर भी थोड़ा फर्क है । जैसे पुरुष को पत्नी और माता के प्रति प्रेम होता है, परंतु पत्नी के प्रेम को प्रीति कहते हैं और माता प्रति के प्रेम को भक्ति कहते हैं ।

दोनों के पालन-पोषण का कार्य एक समान होने पर भी पत्नी का पालन प्रीति से और माता का पालन भक्ति से होता है ।

प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान और कायोत्सर्ग अनुष्ठान में प्रीति राग हैं और सामायिक, चउविसत्थो और वंदन में भक्ति राग है ।

प्रीति इस लोक के आशय रुप है और भक्ति परलोक के आशय रूप है ।

ये दोनों अनुष्ठान अभ्युदय अर्थात् स्वर्ग के कारण हैं । प्रीति में स्नेह भाव-याचना की मुख्यता है, जबकि भक्ति में पूज्य भाव की मुख्यता है ।

प्रीतियोग की अपेक्षा भक्तियोग में मन की निर्मलता अधिक होती है । चित्तप्रसन्नता, विषयों के प्रति वैराग्य, कषायों की मंदता और गुणानुराग का प्रकाश तीव्र होता है ।

प्रीति में निष्काम और निरुपाधिक प्रेम है, जो भक्ति, वचन और असंग अनुष्ठान का मूल है ।

प्रभु के प्रति ज्यों-ज्यों प्रीति और भक्ति बढ़ती जाती हैं, त्यों-त्यों संसरिक पदार्थों का राग क्षीण होने लगता है । विषयों के प्रति रही आसक्ति कम होती जाती है । कषायों के सेवन में मंदता आती जाती है ।

बार-बार प्रभु की याद आती हैं, प्रभु के स्मरण में देह रोमांचित होता हैं, आँखों में से हर्ष के आँसू उमड़ पड़ते हैं । मन में अपूर्व शांति का अनुभव होता है । मन निर्मल बनता जाता है ।

3. वचन अनुष्ठान :- सभी प्रकार के धर्म-अनुष्ठानों में आगम के अनुसार प्रवृत्ति करना, उसे वचन अनुष्ठान कहते हैं । यह अनुष्ठान चारित्रधारी साधु को होता है ।

4. असंग अनुष्ठान :- वचन अनुष्ठान के तीव्र संस्कार और अभ्यास से सत्पुरुषों की जो क्रियाएँ होती हैं, उसे असंग अनुष्ठान कहते हैं ।

वचन और असंग अनुष्ठान को समझने के लिए चक्र और दंड का दृष्टांत प्रसिद्ध है । जिस प्रकार प्रारंभ में दंड के द्वारा चक्र को जोर से घुमाना पड़ता है, परंतु उसके बाद वह चक्र स्वतः घूमता जाता है । बस, इसी प्रकार जिन आगमानुसार अनुष्ठान की निरंतर आराधना करने से उसके संस्कार इतने दृढ़ बन जाते हैं कि फिर कुछ भी प्रयत्न नहीं करना पड़ता है, वह क्रिया स्वतः होती है । वचन अनुष्ठान के अभ्यास से असंग अनुष्ठान सहज हो जाता है ।

वचन और असंग अनुष्ठान मोक्ष के कारण बनते हैं ।

प्रभु के प्रति प्रीति और भक्ति का वास्तविक फल प्रभु की आज्ञा के प्रति आदर-बहुमान भाव है ।

दीपक से बाहर का अंधकार दूर होता है और आगम-शास्त्रों के द्वारा आत्मा में रहा अज्ञानरूपी अंधकार दूर होता है ।

आगम-शास्त्रों के आधार पर ही त्रिलोक में रहे पदार्थों का यथार्थ बोध होता हैं ।

आगम-शास्त्रों की उपेक्षा करके आत्मा, परमात्मा आदि अतीन्द्रिय पदार्थों के विषय में चंचुप्रवेश करनेवाला सर्वत्र ठोकरें ही खाता है ।

जिनवचन पर बहुमान वास्तव में परमात्मा का ही बहुमान है और जिनवचन के प्रति अनादर वास्तव में प्रभु का ही अनादर है ।

प्रभु की मुख्य आज्ञा है-हेय का त्याग करो और उपादेय को स्वीकार करो ।

आस्रव सर्वथा त्याज्य है, क्योंकि वह संसारवृद्धि का कारण है और संवर सर्वथा उपादेय है, क्योंकि वह मोक्ष का कारण है । आगम-शास्त्र भी, प्रभु के वचन का ही अंग होने से परमात्म तुल्य ही आदरणीय हैं-पूजनीय हैं ।

जिनेश्वर भगवंत का एक वचन भी अनन्य शरणागत को भवसागर से पार उतारने में समर्थ है ।

आज तक जितनी भी आत्माएँ मोक्ष में गई हैं, जा रही हैं और भविष्य में जाएंगी, वे सब जिनवचन के प्रति आदर, बहुमान और जिनआज्ञा-पालन से ही मोक्ष में गई हैं, जाती हैं और जाएगी ।

जिसके दिल में शास्त्र के प्रति आदर भाव नहीं है, उसके श्रद्धा आदि गुण भी उन्मत्त व्यक्ति के गुण तुल्य होने से प्रशंसनीय नहीं बनते हैं ।

शास्त्रयोग द्वारा वचन अनुष्ठान में प्रवृत्त बना साधक परमात्मा का सालंबन ध्यान करने में समर्थ बनता है और उसमें निपुणता प्राप्त करने पर परमात्मा के अरूपी गुणों के ध्यान रूप निरालंबन ध्यान में प्रवेश करने की योग्यता प्राप्त करता है ।

अनुष्ठान के 5 प्रकार :-

1) विष अनुष्ठान :- इस जीवन में मिष्टान्न आदि भोजन, नगद रुपए, सोना-चांदी आदि की प्रभावना, पद-प्रतिष्ठा व प्रसिद्धि के लोभ से जो धार्मिक अनुष्ठान किए जाते हैं, वे विष अनुष्ठान कहलाते हैं ।

2) गरल अनुष्ठान :- गरल अर्थात् धीमा जहर Slow Poison धीमा जहर व्यक्ति को धीरे-धीरे खत्म करता है । परलोक में देव, देवेन्द्र, चक्रवर्ती,

राजा, धनवान, शक्तिशाली आदि बनने की भावना से जो धार्मिक अनुष्ठान किए जाते हैं, वे गरल अनुष्ठान कहलाते हैं ।

विष आदमी को तुरंत खत्म करता है, जब कि गरल धीरे-धीरे खत्म करता है ।

3) अननुष्ठान :- सूत्र-अर्थ आदि को कुछ भी समझे बिना लोकप्रवाह में आकर अथवा उपयोग रहित होकर जो धार्मिक अनुष्ठान किए जाते हैं, वे अननुष्ठान कहलाते हैं ।

4) तद्हेतु अनुष्ठान :- आत्मा को संसार से मुक्त कराने की भावना से, एक मात्र आत्मकल्याण के उद्देश्य से सद्गुरु के सान्निध्य में रहकर आज्ञानुसार जो धार्मिक अनुष्ठान किए जाते हैं, वे तद्हेतु अनुष्ठान कहलाते हैं ।

5) अमृत अनुष्ठान :- जिनोक्त अनुष्ठान में मन की एकाग्रता, जिनाज्ञा का संपूर्ण पालन, भावों की अभिवृद्धि, संसार से मुक्त होने की तीव्र अभिलाषा, रोमांचित देह तथा प्रमोद भाव, ये अमृत अनुष्ठान के लक्षण हैं, इनसे युक्त अनुष्ठान, अमृत अनुष्ठान कहलाता है ।

इन पाँच प्रकार के अनुष्ठानों में प्रथम तीन प्रकार के अनुष्ठान त्याज्य हैं, क्योंकि वे संसारवर्धक हैं, जबकि अंतिम दो अनुष्ठान ही मोक्षसाधक होने के कारण अत्यंत ही आदरणीय हैं ।

जैनशासन में क्रिया प्रधान नहीं है, परंतु क्रिया के पीछे रहा आशय प्रधान है, अतः धार्मिक भी अनुष्ठान मलिन आशय से किया जाता है तो वह आत्मा के लिए लाभकारी बनने के बजाय संसारवर्धक बन जाता है, अतः धार्मिक अनुष्ठानों में आशय शुद्धि की ओर अपना पूरा-पूरा लक्ष्य होना चाहिए ।''

अजितसेन महामुनि की धर्मदेशना सुनकर श्रीपाल का हृदय प्रसन्नता से भर आया । देशना की समाप्ति के बाद श्रीपाल राजा ने हाथ जोड़कर विनयपूर्वक पूछा, ''हे भगवन् ! किस कर्म के उदय से मुझे बचपन में कोढ़ रोग उत्पन्न हुआ और किस कर्म के उदय से मैं उस रोग से मुक्त बना ? किस कर्म के उदय से मुझे स्थान-स्थान पर इतना मान-सम्मान मिला और किस कर्म के उदय से मैं समुद्र में गिरा ? किस कर्म के उदय से मुझ पर चांडाल (डंबू) जाति का कलंक आया ? कृपया इन पर आप प्रकाश डालिए ।''

श्रीपाल के ये प्रश्न सुनकर अजितसेन महामुनि ने कहा, ``हे श्रीपाल ! ***इस जगत् में जो भी जीव सुख-दुःख प्राप्त करता है, वह उसी के पुण्य-पाप के विपाक का फल है। अपने ही पुण्य कर्म के उदय से जीव सुख प्राप्त करता है। अपने सुख-दुःख में अन्य जीव तो निमित्त मात्र हैं।***

अपने शुभ-अशुभ कर्म को जानने के लिए तुम अपना पूर्व भव सुनो।

भरतक्षेत्र में **हिरण्यपुर** नाम का नगर है। उस नगर में **श्रीकांत** नाम का राजा राज्य करता था। उस राजा की **श्रीमती** नाम की रानी थी, जो जिनधर्म में अत्यंत ही रत थी, शील व सदाचार की खान थी।

श्रीकांत राजा को शिकार का भयंकर व्यसन था। किसी भी संयोग में वह शिकार का त्याग करने में असमर्थ था।

दयालु श्रीमती उसे रोज समझाती, ``हे स्वामिन् ! आप अपने क्षणिक आनंद के लिए निरपराध जीवों की हिंसा क्यों करते हो ? दूसरे प्राणियों को दुःख के गर्त में डालकर सुख पाने की इच्छा करना, यह तो आकाश-पुष्प की भाँति निष्फल ही है। ये बेचारे मूक पंशु, जंगल में घास खाते हैं, झरनों का जल पीते हैं, वे आपका कुछ भी नहीं बिगाड़ते हैं, फिर भी आप उन्हें क्यों मारते हैं ? **शस्त्रहीन के साथ युद्ध करना क्षत्रिय का धर्म नहीं है।**''

श्रीमती ने राजा को हितकारी बात कही, परंतु साँप को दूध पिलाने की भाँति वह उपदेश निष्फल ही गया।

एक दिन राजा अपने 700 बलवान साथियों के साथ एक गहन वन में जा पहुँचा। वहाँ एक महात्मा वृक्ष के नीचे कायोत्सर्ग कर रहे थे। महात्मा को देखकर वह राजा बोला, ``अरे ! यह कोढ़िया लगता है। इसे मारो ! मारो !''

राजा के इन वचनों को सुनकर वे पुरुष मुनि को मारने लगे। वे पुरुष ज्यों-ज्यों मारने लगे, त्यों-त्यों वह राजा खुश होने लगा। राजा के साथियों की ओर से उपसर्ग होने पर भी वे मुनि समतारस में लीन रहे।

श्रीकांत राजा शिकार कर अपने महल में लौट आया।

एक दिन पुनः राजा शिकार के लिए गया और एक मृग के पीछे दौड़ा। वह मृग भागकर नदी तट पर रहे जंगल में घुस गया। उसी समय राजा ने नदी तट पर खड़े मुनि को देखा। राजा ने धक्का देकर मुनि को पानी में गिरा दिया और कुछ समय बाद दया आने से मुनि को पानी में से बाहर निकाल दिया।

राजा ने महल में आकर रानी को सब बात कही। रानी ने कहा, **''एक सामान्य जीव की भी हिंसा भावी में भयंकर दुःख प्रदान करती है तो फिर एक ऋषि को दी गई पीड़ा तो भविष्य में कितना दुःख देगी !''**

रानी के समझाने पर राजा ने कहा, ''भविष्य में ऐसा काम नहीं करूंगा।''

धीरे-धीरे समय बीतने लगा।

एक दिन राजा महल के झरोखे में बैठा हुआ था। उसने उसी समय नगर में भिक्षा के लिए परिभ्रमण कर रहे महात्मा को देखा। वह राजा रानी की बात को भूल गया और उसने चौकीदार को कहा, ''इस मुनि ने अपने नगर को बिगाड़ दिया है, अतः उन्हें नगर में से बाहर निकाल दो।''

राजा के आदेशानुसार वह चौकीदार भिक्षा के लिए परिभ्रमण कर रहे मुनि को नगर से बाहर निकालने लगा। रानी ने यह दृश्य देख लिया। उसी समय वह कोपायमान होकर राजा को कहने लगी, ''स्वामिन् ! आप ऐसा क्यों करते हो ? **मुनि पर उपसर्ग करने से तो भयंकर दुर्गति होती है। क्या आपको नरक में जाना है ?''**

रानी के इन वचनों को सुनकर राजा को अपने दुष्कृत्य पर पश्चाताप हुआ। वह स्वयं मुनि के पास गया, अत्यंत ही आदर-सम्मान के साथ उन्हें अपने महल में ले आया। उनको नमस्कार किया।

मुनिवर ने कहा, ***''तीव्र पाप करने के बाद भी यदि मन में उस पाप का तीव्र पश्चाताप हो जाय तो व्यक्ति पाप की सजा से मुक्त हो सकता है। इस महापाप के प्रायश्चित्त रूप आयंबिल के तपपूर्वक नवपदजी का जाप करो। श्री सिद्धचक्र भगवंत की आराधना के प्रभाव से ही सारे पाप नष्ट होंगे।''***

उसी समय मुनिवर ने श्री सिद्धचक्र भगवंत की आराधना विधि समझाई। राजा ने अपनी रानी के साथ विधिपूर्वक श्री सिद्धचक्र की आराधना की। तप की पूर्णाहुति होने पर राजा ने उल्लास पूर्वक उद्यापन महोत्सव किया। उस समय रानी की आठ सखियों ने उस तप-जप व महोत्सव की पूरी-पूरी अनुमोदना की। राजा के उन 700 साथियों ने भी तप धर्म की अनुमोदना की।

``एक दिन वह राजा अपने 700 साथियों के साथ सिंह राजा के नगर में पहुँच गया । वहाँ जाकर उन्होंने लूट चलाई और गाँव में से गायों के झुंड लेकर लौटने लगे । उस समय पीछे से आकर उस सिंह राजा ने राजा के इन 700 साथियों को मार डाला । वे 700 साथी मरकर क्षत्रिय कुल में उत्पन्न हुए और मुनि पर उपसर्ग करने के कारण उन्हें कोढ़ रोग उत्पन्न हुआ ।

``श्री सिद्धचक्र की आराधना के प्रभाव से वह श्रीकांत, मरकर तुम श्रीपाल बने और मुनि की आशातनादि के फलस्वरूप तुमको कोढ़ रोग, समुद्र में गिरना, डुंब जाति का कलंक आदि घटनायें घटित हुईं ।

श्रीमती की आठ सखियों ने तप धर्म की जो अनुमोदना की, उसके फलस्वरूप उन्हें रानी का पद मिला ।

एक बार एक सखी ने अपनी शौक्य स्त्री को **'तुझे साँप खा जाय'** इस प्रकार कहा था । इसके परिणामस्वरूप उसे साँप ने काटा ।

700 पुरुषों को मार डालने के पाप से भयभीत बने सिंह राजा ने दीक्षा अंगीकार की । उसके बाद राजा ने एक मास का अनशन किया । वह सिंह राजा मरकर मैं अजितसेन राजा बना । गतभव में तुमने मेरा राज्य लूटा था, इस कारण इस भव में मैंने बचपन में ही तुम्हारा राज्य हड़प लिया था । पूर्व भव के वैरी वे 700 साथी ही इस भव में मुझे बाँधकर तुम्हारे पास लाये थे । पूर्व भव में चारित्र-पालन के फलस्वरूप ही युद्धभूमि में मुझे जाति-स्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ और मैंने चारित्र धर्म स्वीकार किया ।''

अजितसेन महामुनि के मुख से अपने पूर्व भव के चरित्र को सुनकर श्रीपाल राजा सोचने लगे, ``अहो ! संसार का यह कैसा नाटक है !''

उन्होंने कहा, ``हे गुरुदेव ! अभी मुझ में चारित्र ग्रहण करने की शक्ति नहीं है, अतः मेरे योग्य धर्म बतलाएँ ।''

प्रत्युत्तर में अजितसेन महामुनि ने कहा, ``हे राजन् ! ***अभी तुम्हारा भोग कर्म काफी बाकी है और इस भव में चारित्र उदय में नहीं है...परंतु नवपद की आराधना और श्रावक धर्म के पालन के फलस्वरूप तुम नौवें देवलोक में जाओगे और क्रमशः देव और मनुष्य भव को प्राप्त करते हुए नौवें भव में शाश्वत अजरामर मोक्षपद प्राप्त करोगे ।***''

गुरु भगवंत के मुख से निकट भवों में ही मोक्षप्राप्ति की बात सुनकर श्रीपाल राजा अत्यंत ही प्रसन्न हुआ ।

अजितसेन महामुनि ने अन्यत्र विहार किया । श्रीपाल महाराजा अपने महल में लौट आए ।

एक दिन मयणासुंदरी ने श्रीपाल महाराजा से कहा, ''हे स्वामि नाथ ! उस समय अपने पास कम धन था, तो उसके अनुसार हमने सिद्धचक्र की भक्ति की थी, अब अपने पास अपार संपत्ति है तो उस संपत्ति के अनुसार हमें नवपद की भक्ति स्वरूप भव्य उद्यापन महोत्सव करना चाहिए ।''

मयणा के इन वचनों को सुनकर श्रीपाल महाराजा नवपद की भक्ति में और अधिक उद्यमवंत बने । उन्होंने नौ नए चैत्य कराए । नौ चैत्यों का जीर्णोद्धार कराया । जिनेश्वर भगवंत की 9 प्रतिमाएँ भराई । इस प्रकार शुभ भाव द्वारा **अरिहंत पद** की आराधना की ।

मन, वचन और काया की एकाग्रता पूर्वक सिद्ध भगवंतों की त्रिकाल-पूजा करके **सिद्ध पद** की आराधना की ।

आचार्य पद के विषय में अंतरंग बहुमान, भक्ति, वंदन, शुश्रूषा आदि द्वारा सूरि पद की आराधना की ।

उपाध्याय भगवंत को वस्त्र आहार-पानी आदि प्रदान कर उपाध्याय पद की आराधना की ।

मुनि को नमस्कार, वंदन, आहार-दान आदि द्वारा साधु पद की आराधना की ।

तीर्थयात्रा, संघपूजा, रथयात्रा तथा शासन उन्नति द्वारा श्रीपाल राजा ने दर्शनपद की आराधना की ।

जिनागमों का आलेखन, उनका संरक्षण, श्रुत-पूजा तथा स्वाध्याय आदि द्वारा ज्ञानपद की आराधना की ।

पाँच अणुव्रतादि के पालन, विरतिधरों की भक्ति तथा संयम-मार्ग में तीव्र अभिरुचि द्वारा चारित्र पद की आराधना की ।

इस लोक व परलोक के सुखों का त्याग कर सर्वत्र अप्रतिबद्ध रहकर बाह्य अभ्यंतर तप की आराधना द्वारा तप पद की आराधना की ।

इस प्रकार उत्तम द्रव्य व उत्तम भाव द्वारा श्रीपाल व मयणा श्री सिद्धचक्र भगवंत की आराधना करने लगे ।

साढ़े चार वर्ष बाद श्री सिद्धचक्र भगवंत की आराधना पूर्ण होने पर श्रीपाल व मयणासुंदरी ने उत्तम द्रव्यों द्वारा भव्यातिभव्य उद्यापन महोत्सव कराया। परमात्मभक्ति, संघपूजा, स्वामिवात्सल्य आदि द्वारा श्रीपाल राजा ने जिनशासन की अद्‌भुत प्रभावना की।

आशंसारहित संसार-सुख का अनुभव करते हुए श्रीपाल और मयणा को त्रिभुवनपाल आदि नौ पुत्र उत्पन्न हुए। 9 हजार हाथी, 9 हजार रथ, 9 लाख जातिमान घोड़े, 9 करोड़ सैनिक आदि के मालिक बने।

न्याय व नीतिपूर्वक 900 वर्ष तक राज्य का पालन कर अपने पुत्र त्रिभुवनपाल को राज्य प्रदान कर श्रीपाल राजा नवपद के ध्यान में लीन बन गए।

नवपद के ध्यान के प्रभाव से आयुष्य समाप्त होने पर श्रीपाल राजा 9वें देवलोक में उत्पन्न हुए।

मयणासुंदरी आदि 9 स्त्रियाँ तथा श्रीपाल की माता भी आयुष्य पूर्ण होने पर 9वें देवलोक में उत्पन्न हुईं।

देव आयुष्य पूर्ण कर पुनः नवपद की आराधना से मनुष्यभव प्राप्त करेंगे। इस प्रकार बीच-बीच में चार देव भव प्राप्त कर नौवें भव में मनुष्य भव को प्राप्त कर चारित्र धर्म स्वीकार कर शाश्वत अजरामर मोक्ष प्राप्त करेंगे।

9 नवपद ध्यान

अपने पुत्र त्रिभुवनपाल को राजगद्दी पर स्थापित करने के बाद श्री श्रीपाल महाराजा नवपद के ध्यान में लीन हो गए। उस 'नवपद' का स्वरूप **'श्रीपाल राजानो रास'** चौथा खंड 11 वीं ढाल के आधार पर यहाँ दिया जा रहा है।

1. अरिहंत पद

त्रीजे भव वर थानक तप करी, जेणे बांध्युं जिन नाम,
चोसठ इन्द्र पूजित जे जिन, कीजे तास प्रणाम रे,
भविका ! सिद्ध चक्र पद वंदो, जिम चिरकाले नंदो रे भ. ।।1।।

अर्थ : जिन्होंने पूर्व के तीसरे भव में श्रेष्ठ ऐसे बीसस्थानक तप की आराधना करके तीर्थंकर नाम कर्म का बंध किया था। जो जिनेश्वर भगवंत 64 इन्द्रों के द्वारा पूजित हैं, हे भव्य प्राणियो ! उन जिनेश्वर भगवंतों को प्रणाम करो...तथा श्री सिद्धचक्र भगवंत को वंदन करो, जिसके फलस्वरूप तुम दीर्घकाल तक आनन्द पा सकोगे।

जेहने होय कल्याणक दिवसे, नरके पण अजवालुं।
सकल अधिक गुण अतिशय धारी, ते जिन नमी अघ टालुं रे भ. ।।2।।

अर्थ : जिनके च्यवन आदि कल्याणक दिनों में भयंकर नरक में भी प्रकाश फैल जाता है, जो सर्वगुणों में श्रेष्ठ ऐसे 34 अतिशयों को धारण करते हैं, उन जिनेश्वर भगवंतों को नमस्कार करके मैं अपने पाप का नाश करता हूँ।

जे तिहु नाण समग्ग उपन्ना, भोग करम खीण जाणी,
लेई दीक्षा शिक्षा दिये जन ने, ते नमिये जिन नाणी रे, भ. ।।3।।

अर्थ : जो मति, श्रुत और अवधि इन तीन ज्ञानों के साथ उत्पन्न होते हैं...अपने भोगावली कर्मों को क्षीण जानकर भागवती दीक्षा स्वीकार करते हैं...उसके बाद केवलज्ञान प्राप्त कर भव्य जीवों को उपदेश प्रदान करते हैं, ऐसे केवलज्ञानी जिनेश्वर भगवंतों को नमस्कार करो।

महागोप महा माहण कहीए, निर्यामक सत्थवाह,
उपमा एहवी जेहने छाजे, ते जिन नमिये उच्छाह रे, भ. ।।4।।

अर्थ : जो जिनेश्वर भगवंत गोपाल की तरह प्राणियों का रक्षण करने के कारण महागोप कहलाते हैं । करुणा से तीन जगत् में अहिंसा की घोषणा करने के कारण महामाहण कहलाते हैं । भयरूप समुद्र में भूले पड़े प्राणियों को नाविक की तरह मोक्षनगर में पहुँचाते हैं, इस कारण निर्यामक कहलाते हैं, इन उपमाओं से सुशोभित जिनेश्वर भगवंत को उत्साहपूर्वक नमस्कार करो ।

आठ प्रातिहारज जस छाजे, पांत्रीश गुण युत वाणी,
जे प्रतिबोध करे जग जन ने, ते जिन नमिये प्राणी रे, भ. ।।5।।

अर्थ : जो जिनेश्वर भगवंत अशोकवृक्ष, सुरपुष्पवृष्टि, भामंडल देव-दुंदुभि आदि आठ प्रातिहार्यों से सुशोभित हैं, जिनकी वाणी 35 गुणों से युक्त है, तथा जो जगत् के भव्य प्राणियों को उपदेश द्वारा प्रतिबोध देते हैं, ऐसे जिनेश्वर भगवंतों को, हे भव्य प्राणियो ! तुम प्रणाम करो ।

2. श्री सिद्ध पद

समय पएसंतर अणफणसी, चरम ति भाग विशेष,
अवगाहन लही जे शिव पहोता, सिद्ध नमो ते अशेष रे, भ. ।।1।।

अर्थ : आठ कर्मों का संपूर्ण क्षय करने के बाद जो सिद्ध भगवंत दूसरे समय का स्पर्श किए बिना अर्थात् एक ही समय में सिद्धशिला के ऊपर चौदह राजलोक के अग्र भाग पर पहुँच गए तथा जिन्होंने दूसरे आकाश प्रदेश का स्पर्श भी नहीं किया । निर्वाण के अंतिम समय में शरीर की जो अवगाहना थी, उसमें तीसरे भाग जितनी अवगाहना कम कर 2/3 भाग जितनी अवगाहना में जो मोक्ष में रहे हुए हैं, उन सभी सिद्ध भगवंतों को, हे भव्य प्राणियो ! नमस्कार करो ।

पूर्व प्रयोग ने गति परिणामे, बंधन छेद असंग ।
समय एक ऊर्ध्व गति जेहनी, ते सिद्ध प्रणमो रंग रे भविका, भ. ।।2।।

अर्थ : पूर्व के बल, ऊर्ध्वगति स्वभाव, शरीर रूपी बंधन का छेद होने से, कर्म के संग से मुक्त होने से जो मात्र एक ही समय में ऊर्ध्वगति द्वारा 14 राजलोक के अग्रभाग पर पहुँच जाते हैं, उन सिद्ध भगवंतों को उत्साह पूर्वक प्रणाम करो ।

निर्मल सिद्ध शिलानी ऊपरे, जोयण एक लोगंत,
सादि अनन्त तिहा स्थिति जेहनी, ते सिद्ध प्रणमो संत रे भ. ।।3।।

अर्थ : निर्मल स्फटिक रत्न की सिद्धशिला पर एक योजन के अंतभाग में सादि-अनंत काल तक सिद्ध भगवंत रहते हैं, हे सज्जन पुरुषो ! उन सिद्ध भगवंतों को तुम प्रणाम करो ।

जाणे पण न शके कही, पुर गुण प्राकृत तिम गुण जास ।
उपमा विण नाणी भवमांहे, ते सिद्ध दियो उल्लास रे, भ. ।।4।।

अर्थ : हमेशा जंगल में रहनेवाले किसी भील को किसी राजा ने अपने महल व नगर का अद्‌भुत आश्चर्यकारी दृश्य बतलाया । बाद में उस भील को नगर व महल का स्वरूप पूछा जाय तो वह जानते हुए भी राजमहल और नगर का वर्णन करने में समर्थ नहीं हो पाता है, उसी प्रकार केवलज्ञानी भगवंत अपने केवलज्ञान के बल से सिद्ध भगवंतों के समस्त गुणों को जानते हुए भी, सिद्ध भगवंत को कोई उपमा दी जा सके ऐसा कोई पदार्थ इस जगत् में विद्यमान नहीं होने के कारण वे केवलज्ञानी भगवंत भी अपनी वाणी के द्वारा सिद्धों के यथार्थ स्वरूप का वर्णन करने में समर्थ नहीं हैं, ऐसे सिद्ध भगवान हमें उल्लास प्रदान करें ।

ज्योतिंशु ज्योति मिली जस अनुपम, विरमी सकल उपाधि ।
आतम राम रमापति समरो, ते सिद्ध सहज समाधि रे, भ. ।।5।।

अर्थ : ज्योति में ज्योति के मिलन की तरह एक ही सिद्ध भगवंत की अवगाहना में अन्य अनंत सिद्ध भगवंत रहे हुए हैं, अतः वे अनुपम हैं । सर्व उपाधियों से रहित, आत्मा की ज्ञान आदि लक्ष्मी के स्वामी और स्वाभाविक समाधिवाले श्री सिद्ध भगवंतों को प्रणाम करो ।

3. आचार्य पद

पंचाचार जे सूधा पाले, मारग भाखे साचो ।
ते आचारज नमिये तेहशुं, प्रेम करीने जाचो रे, भ. ।।1।।

अर्थ : जे ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार, तपाचार और वीर्याचार रूप पाँच आचारों का अच्छी तरह से पालन करते हैं । जो जिनेश्वर भगवंत निर्दिष्ट सत्य मार्ग बतलाते हैं । उन आचार्य भगवंतों के साथ धर्म का सच्चा प्रेम करके, उन्हें नमस्कार करें ।

वर छत्रीस गुणे करी सोहे, युग प्रधान जन मोहे ।
जग बोहे न रहे खिण कोहे, सूरि नमुं ते जोहे रे, भ. ।।2।।

अर्थ : जो श्रेष्ठ छत्तीस गुणों से सुशोभित हैं, युगप्रधान हैं, जो जगत् के प्राणियों को आश्चर्यचकित करने वाले हैं, जो सभी प्राणियों को बोध देने वाले हैं, जो क्षणभर भी क्रोध नहीं करते हैं, ऐसे आचार्य भगवंत को नमस्कार करता हूँ।

नित्य अप्रमत्त धर्म उवएसे, नहि विकथा न कषाय।
जेहने ते आचारज नमिये, अकलुष अमल अमाय रे, भ. ।।3।।

अर्थ : जो अप्रमत्त रहकर नित्य धर्म का उपदेश देते हैं। वे न तो राजकथा, स्त्रीकथा, भक्तकथा और देशकथा करते हैं और न ही क्रोध, मान, माया और लोभ रूप कषाय। जो कलुषित भाव से रहित हैं, जो निर्मल हैं और कपट रहित हैं, ऐसे आचार्य भगवंत को, हे भव्यो ! नमस्कार करो।

जे दिए सारण वारण चोयण, पडिचोयणा वली जनने रे।
पटधारी गच्छ थंभ आचारज, ते मान्या मुनि मन ने रे, भ. ।।4।।

अर्थ : जो अपने मुनियों को सारणा, वारणा, चोयणा और पडिचोयणा रूप शिक्षा द्वारा जागृत रखते हैं। जो प्रभु की पाट-परंपरा के वाहक हैं, जो गच्छ के स्तंभ हैं, ऐसे आचार्य भगवंत मुनियों के मन में विशेष करके मान्य हैं।

अत्थमिये जिन सूरज केवल वंदीजे जग दीवो।
भुवन पदारथ प्रगटनपटु ते, आचारज चिरंजीवो रे, भ. ।।5।।

अर्थ : तीर्थंकर भगवंत रूपी सूर्य और केवलज्ञानी भगवंत रूपी चन्द्र के अस्त होने पर जो जगत् में दीपक के समान हैं...जो तीन भुवन के पदार्थों को प्रगट करने में होशियार हैं, ऐसे आचार्य भगवंत चिर काल तक जय प्राप्त करें।

4. उपाध्याय पद

द्वादश अंग सज्झाय करे जे, पारग धारक तास।
सूत्र अरथ विस्तार रसिक ते, नमो उवज्झाय उल्लास रे, भ. ।।1।।

अर्थ : जो बारह अंगों का स्वाध्याय करते हैं, श्रुत के पार को पाए हुए हैं, उन अंगों रहस्यों को धारण करने वाले हैं, जो आगमसूत्र और उसके अर्थ का विस्तार करने में रसिक हैं, ऐसे उपाध्याय भगवंतों को उल्लासपूर्वक नमस्कार करो।

अर्थ सूत्र ने दान विभागे, आचारय उवज्झाय।
ऊव त्रणये लहे जे शिव संपद, नमिये ते सुपसाय रे, भ. ।।2।।

अर्थ : अर्थ और सूत्र का दान करने के भेद से आचार्य और उपाध्याय भगवंत में अंतर है, अर्थात् उपाध्याय भगवंत अर्थ का दान करते हैं...जो तीन भवों में मोक्षसंपत्ति पाने वाले हैं, ऐसे उपाध्याय भगवंत को चित्त की प्रसन्नता पूर्वक नमस्कार करें ।

मूरख शिष्य निपाइ जे प्रभु, पहाण ने पल्लव आणे ।
ते उवज्झाय सकल जन पूजित, सूत्र अरथ सवि जाणे रे, भ. ।।3।।

अर्थ : जो उपाध्याय भगवंत मूर्ख शिष्य को भी पंडित बना देते हैं, मानों पत्थर को भी अंकुर से नव पल्लवित कर देते हैं, वे उपाध्याय प्रभु सभी मनुष्यों से पूजित हैं । वे सूत्र और अर्थ के ज्ञाता होते हैं ।

राजकुंवर सरीखा गणचिंतक, आचारिज पद जोग ।
ते उवज्झाय सदा ते नमतां, नावे भव भय शोग रे, भ. ।।4।।

अर्थ : जो राजकुमार के समान (भावीराजा की तरह भविष्य में आचार्य पद के धारक) हैं, जो गच्छ की चिन्ता करने वाले हैं, जो हर तरह से आचार्य पद के लिए सुयोग्य हैं, ऐसे उपाध्याय भगवंतों को जो सदा नमस्कार करता है, उसे संसार का भय व शोक पैदा नहीं होता है ।

बावना चन्दन रस सम वयणे, अहित ताप सवि टाले ।
ते उवज्झाय नमीजे जे वली, जिन शासन अजुआले रे, भ. ।।5।।

अर्थ : जिस प्रकार बावना चन्दन, ताप दूर कर शीतलता देता है, उसी प्रकार उपाध्याय भगवंत के वचन बावना चन्दन के समान अत्यंत शीतल हैं, जो सौम्य वचन द्वारा आत्मा का अहित करनेवाले मिथ्यात्व आदि को दूर कर देते हैं । जो जिनशासन को उज्ज्वल करते हैं ।

5. साधु पद

जिम तरु फुले भमरो बेसे, पीडा तस न उपावे ।
लेइ रस आतम संतोषे, तिम मुनि गोचरी जावे रे, भ. ।।1।।

अर्थ : जिस प्रकार भ्रमर वृक्ष के सुगंधित फूलों पर बैठता है और उसे पीड़ा न हो इस प्रकार थोड़ा रस पीता है, उसी प्रकार साधु भी किसी को किसी प्रकार पीड़ा पहुँचाए बिना, अनेक घरों से थोड़ी-थोड़ी गोचरी ग्रहण कर अपना जीवन-निर्वाह करते हैं ।

पंच इन्द्रिय ने कषाय निरूंधे, षट् कायक प्रतिपाल ।
संयम सत्तर प्रकारे आराधे, वंदो तेह दयाल रे, भ. ।।2।।

अर्थ : जो पाँच इन्द्रिय और क्रोध, मान, माया और लोभ रूप चार कषायों पर रोक लगाते हैं । जो पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और त्रसकाय रूप छहकाय जीवों का रक्षण करते हैं, ऐसे दयालु मुनिवर को आप वंदन करें ।

अढार सहस शीलांगना धोरी, अचल आचार चरित्र ।
मुनि महंत जयणा युत वांदी, कीजे जन्म पवित्र रे, भ. ।।3।।

अर्थ : जो अठारह हजार शीलांग रथ के धारक हैं, जो अचल निश्चल चारित्रवाले हैं, जो महान् जयणा धर्म से युक्त हैं, ऐसे मुनिराज को वंदन कर अपना जन्म पवित्र करो ।

नवविध ब्रह्म गुप्ति जे पाले, बारस तप विह शूरा ।
एहवा मुनि नमिये जो प्रगटे, पूरव पुण्य अंकुरा रे, भ. ।।4।।

अर्थ : जो मुनि नौ प्रकार की ब्रह्मचर्य की गुप्तियों का पालन करते हैं तथा बारह प्रकार का तप करने में शूरवीर हैं, पूर्व जन्म में किए गए पुण्य के अंकुर फूटने पर ही ऐसे मुनिवरों का सुयोग प्राप्त होता है, अतः ऐसे मुनिवर को नमस्कार करें ।

सोनातणी परे परीक्षा दीसे, दिन दिन चढते वाने ।
संयम खप करता मुनि नमिये, देश काल अनुमाने रे, भ. ।।5।।

अर्थ : जिस प्रकार सोने की कष, छेद और ताप परीक्षा दिखाई देती है, उसी प्रकार दिन-प्रतिदिन जो चढ़ते परिणाम वाले दिखाई देते हैं, जो देश काल के अनुसार संयम का पालन करनेवाले हैं, ऐसे मुनिराज को, हे भव्य प्राणियो ! नमस्कार करो ।

6. सम्यग् दर्शन

शुद्ध देव-गुरु धर्म परीक्षा, सद्दहणा परिणाम ।
जेह पामीजे तेह नमीजे, सम्यग् दर्शन नाम रे, भ. ।।1।।

अर्थ : जो अठारह दोषों से रहित वीतराग हैं, वे शुद्ध देव हैं । जो पाँच महाव्रतों के धारक हैं, वे शुद्ध गुरु हैं तथा जो केवली प्ररूपित है, वह शुद्ध धर्म है, ऐसे शुद्ध देव, गुरु और धर्म पर श्रद्धा करना, उसी का नाम सम्यग् दर्शन है । ऐसे सम्यग् दर्शन गुण को प्रणाम करो ।

मल उपशम क्षय उपशम क्षयथी, जे होय त्रिविध अभंग ।
सम्यग् दर्शन तेह नमी जे, जिनधर्मे दृढ रंग रे, भ. ।।2।।

अर्थ : अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया और लोभ तथा समकित मोहनीय, मिश्र मोहनीय और मिथ्यात्व मोहनीय, इन सात प्रकृतियों के उपशम से जो दर्शन प्राप्त होता है, वह औपशमिक सम्यक्त्व कहलाता है । तथा इन सातों के क्षय से प्राप्त होने वाले सम्यक्त्व को क्षायिक सम्यक्त्व तथा इन सातों के क्षयोपशम से होनेवाले सम्यक्त्व को क्षायोपशमिक सम्यक्त्व कहते हैं, इस प्रकार तीन भेद वाले अभंग सम्यग् दर्शन को नमस्कार हो, इस सम्यग् दर्शन से जिनधर्म के विषय में दृढ़ श्रद्धा प्राप्त होती है ।

पंचवार उपशमिय लही जे, खय उपशमिय असंख्य ।
एक वार क्षायिक ते समकित, दर्शन नमिये असंख्य रे, भ. ।।3।।

अर्थ : इस संसारचक्र में एक जीव की अपेक्षा उपशम सम्यक्त्व पाँच बार, क्षायोपशमिक सम्यक्त्व असंख्य बार और क्षायिक सम्यक्त्व एक ही बार प्राप्त होता है, ऐसे सम्यग् दर्शन गुण को नमस्कार हो ।

जे विण नाण प्रमाण न होवे, चारित्र तरू नवि फलियो ।
सुख निर्वाण न जे विण लहिये, समकित दर्श बलियो रे, भ. ।।4।।

अर्थ : सम्यग् दर्शन रूप गुण के बिना, ज्ञान भी प्रमाणभूत नहीं गिना जाता हैं और चारित्र रूपी वृक्ष भी फलवान नहीं बनता है । जिसके बिना निर्वाण सुख की प्राप्ति नहीं होती है, अतः यह सम्यग् दर्शन गुण अत्यंत ही बलवान है ।

सठसट्ठ बोले जे अलंकरियुं, ज्ञान चारित्रनुं मूल ।
समकित दर्शन नित्य प्रणमुं, शिव पंथ नुं अनुकूल रे, भ. ।।5।।

अर्थ : जो सम्यग् दर्शन श्रद्धा आदि 67 बोल से अलंकृत है, ज्ञान और चारित्र का मूल है और जो मोक्षमार्ग में सदा अनुकूल है, ऐसे सम्यग् दर्शन को मैं नित्य प्रणाम करता हूँ ।

7. सम्यग् ज्ञान पद

भक्ष अभक्ष न जे विण लहिये, पेय अपेय विचार ।
कृत्य अकृत्य न जे विण लहिये, ज्ञान ते सकल आधार रे, भ. ।।1।।

अर्थ : भक्ष्य क्या है ? अभक्ष्य क्या है ? पेय क्या है ? अपेय क्या है ? कर्तव्य क्या है ? और अकर्तव्य क्या है ? इत्यादि बोध सम्यग् ज्ञान से

ही होता है । ज्ञान ही इन समस्त वस्तुओं का आधार-स्तंभ है । हे भव्य प्राणियों ! ऐसे ज्ञान गुण को तुम प्रणाम करो ।

प्रथम ज्ञान ने पछी अहिंसा, श्री सिद्धांते भाख्युं ।
ज्ञानने वंदो ज्ञान म निंदो, ज्ञानीए शिवसुख चाख्युं रे, भ. ।।2।।

अर्थ : श्री आगम सिद्धांत में कहा गया है कि ज्ञान और अहिंसा में सर्वप्रथम ज्ञान का महत्त्व है, फिर अहिंसा का । क्योंकि ज्ञान के बल से ही जीव-अजीव के स्वरूप का बोध होता है । ऐसे ज्ञान को वंदन करों । उसकी कभी भी निंदा मत करों । ज्ञानमग्न ज्ञानी पुरुषों ने ही मोक्ष सुख का आस्वाद प्राप्त किया है ।

सकल क्रियानुं मूल ते श्रद्धा, तेहनुं मूल जे कहिये ।
तेह ज्ञान नित नित वंदी जे, ते विण कहो किम रहीये रे, भ. ।।3।।

अर्थ : समस्त क्रियाओं का मूल श्रद्धा है और श्रद्धा का मूल ज्ञान है, क्योंकि किसी वस्तु का ज्ञान होने पर ही उस वस्तु पर श्रद्धा दृढ़ बनती है । उस ज्ञान को नित्य वंदन करें । उस ज्ञान के बिना हम कैसे रह सकते हैं ?

पंच ज्ञानमांहे जेह सदागम, स्वपर प्रकाशक जेह ।
दीपक पर त्रिभुवन उपगारी, वली जिम रवि शशि मेह रे, भ. ।।4।।

अर्थ : पाँच ज्ञान में जो श्रुतज्ञान है, वह स्वपर उभय को प्रकाशित करने वाला है । सूर्य, चन्द्र और मेघ जिस प्रकार उपकार करते हैं, उसी प्रकार यह सम्यग् ज्ञान, दीपक की तरह तीनों भुवन में उपकार करनेवाला है ।

लोक उरध अधो तिर्यग् ज्योतिष वैमानिक ने सिद्ध ।
लोक अलोक प्रगट सवि जेह थी, ते ज्ञाने मुक्त सिद्धि रे, भ. ।।5।।

अर्थ : ऊर्ध्व लोक, अधोलोक, तिर्च्छालोक, ज्योतिष देवलोक तथा वैमानिक देवलोक, इस प्रकार समस्त 14 राजलोक तथा समस्त अलोक का बोध जिससे होता है, ऐसे ज्ञान से मेरी भी सिद्धि-शुद्धि (मोक्ष) हो ।

8. सम्यक् चारित्र पद

देश विरतिने सर्व विरति जे, गृही यति ने अभिराम ।
ते चारित्र जगत जयवंतु, कीजे तास प्रणाम रे भ. ।।1।।

अर्थ : गृहस्थ को देशविरति (पाप के आंशिक त्याग की प्रतिज्ञा स्वरूप) तथा साधु को सर्वविरति (पाप के संपूर्ण त्याग की प्रतिज्ञा) स्वरूप

मनोहर चारित्र होता है । वह चारित्र जगत् में जयवंत है, उस चारित्रधर्म को प्रणाम करो ।

तृण परे जे षट् खंड सुख छंडी, चक्रवर्ती पण वरियो ।
ते चारित्र अक्षय सुख कारण, ते में मनमांहे धरियो रे, भ. ।।2।।

अर्थ : चक्रवर्ती जैसे अतिसमृद्ध व्यक्तियों ने भी तृण के समान छह खंड के साम्राज्य व सुखों का त्याग कर जिस चारित्र को स्वीकार किया है, तथा जो चारित्र सुख का अक्षय कारण है, उस चारित्र को मैंने भी मन में धारण किया है ।

हुआ रांक पणे जेह आदरी, पूजित इन्द नरिंदे ।
अशरण शरण चरण ते वंदुं, पूर्युं ज्ञान आनंदे रे, भ. ।।3।।

अर्थ : जिस चारित्र को प्राप्त कर रंक जैसे मनुष्य भी इन्द्र और राजाओं से पूजित बने हैं, वह चारित्र अशरण आत्माओं के लिए शरण समान है, ज्ञान के आनन्द से भरपूर उस चारित्र को मैं वंदन करता हूँ ।

बार मास पर्याय जेहने, अनुत्तर सुख अति क्रमिये ।
शुक्ल शुक्ल अभिजात्य ते ऊपर, ते चारित्र ने नमिये रे, भ. ।।4।।

अर्थ : एक वर्ष की चारित्र पर्याय वाली आत्मा, अनुत्तर देवों के सुखों का भी उल्लंघन कर देती है, उसके बाद निर्मल, निर्मलतर परिणाम से तरतमता वाले चारित्र को नमस्कार करो ।

चय ते आठ कर्म नो संचय, रिक्त करे जे नेह ।
चारित्र नाम निरूते भाख्युं, ते वंदुं गुण गण गेह रे, भ. ।।5।।

अर्थ : आठ कर्मों के संचय को चय कहते हैं, ऐसे आठ कर्म के संचय को जो खाली करता है, निर्युक्ति में चारित्र का यह अर्थ कहा गया है, ऐसे गुणों के समूह (घर) रूप चारित्र को मैं वंदन करता हूँ ।

9. सम्यक् तप पद

जाणंता त्रिहुं ज्ञाने संयुत्त, ते भव मुक्ति जिणंद ।
जेह आदरे कर्म खपेवा, ते तप शिव तरू कंद रे. भ. ।।1।।

अर्थ : जो जिनेश्वर भगवंत तीन ज्ञान सहित उत्पन्न हुए हैं और जो 'इसी भव में मेरी मुक्ति होनेवाली है' इस बात को अच्छी तरह से जानते हैं, फिर भी जो कर्म का क्षय करने के लिए तप धर्म का आचरण करते हैं, ऐसे

मोक्षवृक्ष के मूल समान यह तप है ।

करम निकाचित पण खय जाइ, क्षमा सहित जे करता ।
ते तप नमिये जेह दीपावे, जिनशासन उजमंता रे भ. ।।2।।

अर्थ : क्षमा सहित जिस तप का आचरण करने से निकाचित कर्मों का भी क्षय हो जाता है, जिस तप का उद्यापन करने से जैनशासन की शोभा बढ़ती है, ऐसे तप को नमस्कार हो ।

आमोसही पमुहा बहु लब्धि, होवे जास प्रभावे ।
अष्ट महासिद्धि नव निधि प्रगटे, नमीयें ते तप भावे रे, भ. ।।3।।

अर्थ : जिस तप के प्रभाव से आमर्ष औषधि आदि अनेक लब्धियाँ, आठ महासिद्धियाँ तथा नौ निधि प्रकट होती हैं, ऐसे तप को भावपूर्वक प्रणाम करो ।

फल शिवसुख महोंटु, सुर नर वर संपत्ति जेहनुं फूल ।
ते तप सुरतरु सरिखो वंदुं, शम मकरंद अमूल रे भ. ।।4।।

अर्थ : जिस तप रूप वृक्ष का मोक्षसुख महाफल है तथा देवलोक तथा मनुष्य लोक की समृद्धि जिसका फूल है तथा समता रूपी अमूल्य फूल का रस है अतः कल्पवृक्ष के समान ऐसे तप को मैं वंदन करता हूँ ।

सर्व मंगल मांहि पहेलुं मंगल, वरणीये जे ग्रंथे ।
ते तप पद त्रिहुं काल नमीजे, वर सहाय शिव पंथेरे, भ. ।।5।।

अर्थ : यह तप सर्वमंगलों में प्रथम मंगल रूप है, इस प्रकार सभी ग्रंथों में जिसका वर्णन है । जो मोक्षमार्ग में श्रेष्ठ सहायक रूप है, ऐसे तप को तीनों काल में नमस्कार करो ।

इम नव पद थुणतो तिहां लिनो, हुओ तन्मय श्रीपाल ।
सुजस विलास चोथे खंडे, एह अग्यारमी ढाल रे, भ. ।।6।।

अर्थ : इस प्रकार अरिहंत आदि नवपदों की स्तुति करता हुआ श्रीपाल नवपद के ध्यान में लीन हो गया । सुंदर यश और विलास वाले इस चौथे खंड की ग्यारहवीं ढाल पूर्ण हुई ।

महोपाध्याय श्रीमद् विनयविजयजी विरचित

श्रीपाल-मयणा रास

प्रथम खंड

(राग : मंगलाचरण)

कल्पवेली कवियण तणी, सरसती करी सुपसाय ।
सिद्धचक्र गुण गावतां, पूरे मनोरथ मांय ।।1।।
अलिय विघन सवि उपशमे, जपतां जिन चोवीश ।
नमतां निज-गुरु पयकमल, जगमां वाधे जगीश ।।2।।

प्रस्तावना

गुरु गौतम राजगृही, आव्या प्रभु आदेश ।
श्रीमुख श्रेणिक प्रमुखने, इणि परे दे उपदेश ।।3।।
उपगारी अरिहंत प्रभु, सिद्ध भजो भगवंत ।
आचारज उवज्झाय तिम, साधु सकल गुणवंत ।।4।।
दरिसण दुर्लभ ज्ञान गुण, चारित्र तप सुविचार ।
सिद्धचक्र ए सेवतां, पामीजे भव पार ।।5।।
इह भव पर भव एहथी, सुख संपद सुविशाल ।
रोग सोग रौरव टले, जिम नरपति श्रीपाल ।।6।।
पूछे श्रेणिक राय प्रभु, ते कुण पुण्य पवित्र ।
इन्द्रभूति तव उपदिशे, श्री श्रीपाल चरित्र ।।7।।

ग्रंथारंभ

(ढाल : पहली, राग-ललना)

देश मनोहर मालवो, अति उन्नत अधिकार-ललना ।
देश अवर मानुं चिहुँ दिशे, परवरिया परिवार-ललना देश0 ।।1।।
तस सिर मुगट मनोहरु, निरुपम नयरी उजेणि ललना ।
लखमी लीला जेहनी, पार कलीजे केणि ललना देश0 ।।2।।

सरगपुरी सरगे गई, आणी जस आशंक ललना ।
अलकापुरी अलगी रही, जलधि झंपावी लंक-ललना देश0 ।।3।।

प्रजापाल प्रतपे तिहाँ, भूपति सवि सरदार ललना ।
राणी सौभाग्यसुन्दरी, रूपसुन्दरी भरतार ललना देश0 ।।4।।

सहजे सोहाग सुन्दरी, मन माने मिथ्यात ललना ।
रूपसुन्दरी चित्तमां रमे, सूधी समकित वात ललना देश0 ।।5।।

सुर परे सुख संसारना, भीगवतां भूपाल ललना ।
पुत्री एकेकी पामिए, राणी दोय रसाल ललना देश0 ।।6।।

एक अनुपम सुरलता, वाधे वधते रूप ललना ।
बीजी बीज तणी परे, इंदुकला अभिरूप ललना देश0 ।।7।।

सोहग देवी सुता तणुं, नाम ठवे नरनाह ललना ।
सुरसुन्दरी सोहामणुं, आणी अधिक उच्छाह ललना देश0 ।।8।।

रूपसुन्दरी राणी तणी, पुत्री पावन अंग ललना ।
नाम तास नरपति ठावे, मयणा सुन्दरी मनरंग ललना देश0 ।।9।।

वेद विचक्षण विप्र ने, सोंपे सोहग्ग देवी ललना ।
सयल कला गुण सीखवा, सुरसुन्दरी ने हेवी ललना देश0 ।।10।।

मयणा ने माता ठवे, जिनमत पंडित पास ललना ।
सार विचार सिद्धांतना, आदरवा अभ्यास ललना देश0 ।।11।।

चतुर कला चौसट भणी, ते बेउ बुद्धि निधान ललना ।
शब्दशास्त्र सवि आवड्या, नाम निघण्टु निदान ललना देश0 ।।12।।

कवितकला गुण केवले, वाजिंत्रगीत संगीत ललना ।
ज्योतिष वैद्यक विधि जाणे, राग रंग रस रीत ललना देश0 ।।13।।

सोल कला पूरण शशि, करवा कला अभ्यास ललना ।
जगत ममे जस मुख देखी, चौसठ कला विलास ललना देश0 ।।14।।

मयणासुन्दरी मति अति भली, जाणे जिन सिद्धान्त ललना ।
स्याद्वाद तस मन वस्यो, अवर असत्य एकान्त ललना देश0 ।।15।।

नय जाणे नवतत्त्वना, पुद्गल गुण पर्याय ललना ।
कर्मग्रंथ कण्ठे कर्या, समकित शुद्ध सुहाय ललना देश0 ।।16।।

सूत्र अर्थ संघयाणना, प्रवचन सारोद्धार ललना ।
क्षेत्र विचार खरा धरे, एम अनेक विचार ललना देश0 ।।17।।

रास भलो श्रीपालनो, तेहनी पहेली ढाल-ललना ।
विनय कहे श्रोता धरे, होजो मंगल माल ललना देश0 ।।18।।

दूसरी ढाल

दोहा

एक दिन अवनीपति इस्यो, आणी मन उल्लास ।
पुत्रीनुं जोऊं पारखुं, विद्या विनय विलास ।।1।।

सभामांहे शणगार करी, बोलावी बेहुँ बाल ।
आवी अध्यापक सहित, मोहन गुण मणि माल ।।2।।

अर्थ अगोचर शास्त्रना, पूछे भूपति जेह ।
बुद्धि बले बेहु बालिका, आपे उत्तर तेह ।।3।।

अध्यापक आणंदिया, सज्जन सवे सुख पाय ।
चतुर लोक चित्त चमकिया, फल्या मनोरथ माय ।।4।।

विनय वल्लभ निज बालनी, शास्त्र सुकोमल भाख ।
सरस जिसी सहकारनी, साकर सरसी साख ।।5।।

ढाल

प्रश्नोत्तर पूछे पिता रे, आणी अधिक प्रमोद ।
मन लागे अति मीठड़ा रे, बालक वचन विनोद रे ।।
वत्स ! विचारजो, देई उत्तर एह रे, संशय वारजो ।।1।।

कुण लक्षण जीवित तणुं रे, कुण मनमथ घर नारि ।
कुसुम कुण उत्तम कह्युं रे, परणी शुं करे कुमारी रे वत्स0 ।।2।।

एक वयणे एहनो रे, उत्तर एणी परे थाय !

सुरसुन्दरी कहे तातजी रे, सुणजो 'सासरइ जाइ' रे ।
नृप ! अवधारजो, अस्थ सुणी अम एह रे, महत्त्व वधारजो ।।3।।

मयणा ने महीपति कहे रे, अर्थ कहो अम एक ।
जो तमे शास्त्र संभालता रे, आव्यो हृदय विवेक रे वत्स0 ।।4।।

आदि अक्षर विण जेह छे रे, जग जीवाड़णहार ।
तेही मध्याक्षर विना रे, जग संहारण हार रे वत्स0 ।।5।।

अन्त्याक्षर विण आपणुं रे, लागे सहुने मीठ ।
मयणा कहे सुण जो पिता रे, ते में नयणे दीठ रे, नृप0 ।।6।।

सुगुण समस्या पुरजो रे, भूपति कहे धरी नेह ।
अर्थ उपाई अभिनवो रे, पुण्ये पामिजे एह रे वत्स0 ।।7।।

सुरसुन्दरी कहे चित्त चातुरी रे, धन यौवन वर देह ।
मन वल्लभ मेलावड़ो रे, पुण्य पामिजे एह रे वत्स0 ।।8।।

मयणा कहे मति न्यायनी रे, शीयल सु निर्मल देह ।
संगति गुरु गुणवंतनी रे, पुण्ये पामिजे एह नृप0 ।।9।।

इण अवसर भूपति भणे रे, आणी मन अभिमान ।
हूँ त्रुट्यो तुम उपरे रे, देऊँ वंछित दान रे वत्स0 ।।10।।

हूँ निर्धन ने धन देऊँ रे, करूं रंक ने राय ।
लोक सकल सुख भोगवे रे, पामी मुज पसाय रे वत्स0 ।।11।।

सकल पदारथ पामियो रे, में तूठे जगमांहि ।
में रुठे जग रोलिये रे, उभो न रहे कोइ छांहि रे वत्स0 ।।12।।

सुन्दरी कहे साचु पिता रे, एहमां किश्यो संदेह,
जग जीवाडण दोय छे रे, एक महिपति दूजो मेह रे नृप0 ।।13।।

साचुं साचुं सहु कहे रे, सकल सभा तेणी वार ।
ए सुरसुन्दरी जेहवी रे, चतुर न को संसार नृप0 ।।14।।

राजा पण मन रंजियो रे, कहे सुन्दरी वर मांग ।
वांछित वर तुज मेलवी रे, देऊँ सयल सौभाग रे वत्स0 ।।15।।

तिहां कुरु जंगल देशथी रे, आव्यो अवनिपाल ।
सभामांहे शोभे घणों रे, यौवन रूप रसाल रे नृप0 ।।16।।

शंखपुरी नगरी धणी रे, अरिदमन तस नाम ।
ते देखी सुरसुन्दरी रे, अंगे उपज्यो काम रे वत्स0 ।।17।।

पृथ्वीपति तस ऊपरे रे, परखी तास सनेह ।
तिलक करी अरिदमनने रे, आपी अंगजा तेह रे वत्स0 ।।18।।

रास रच्यो श्रीपाल नो रे, तेहनी बीजी ढाल ।
विनय कहे श्रोता धरे रे, होजो मंगल माल रे वत्स0 ।।19।।

तीसरी ढाल

दोहा

मयणा मस्तक धूणती, जब निरखी नरराय ।
पूछे पुत्री वात ए, तुम मन किम न सुहाय ? ।।1।।

सकल सभाथी सो गुणी, चतुराइ चितमांहि ।
दीसे छे ते दाखवो, आणी अंग उत्साह ।।2।।

उचित नहीं इहां बोलवुं, मयणा कहे महाराज ।
मोहे मन माणस तणा, विरुआ विषय कषाय ।।3।।

निर्विवेक नरपति जिहां, अंश नहीं उपयोग ।
सभा लोक सहु हां जिहा, सरिखो मल्यो संयोग ।।4।।

ढाल

मन मंदिर दीपक जिस्यो रे, दीपे जास विवेक ।
तास न कहिये पराभवे रे, अंग अज्ञान अनेक ।।
पिताजी म करो झूठ गुमान, ए ऋद्धि अथिर निदान ।
जेहवो जलधि उद्यान, पिताजी म करो झूठ गुमान ।।1।।

सुख दुःख सहुए अनुभवे रे, केवल कर्म पसाय ।
अधिकुं न ओछुं तेहमां रे, कीधुं कोणे न जाय ।।2।।

राजा कोपे कलकल्यो रे, सांभलता ए बात ।
व्हाली पण वेरण थई रे, कीधो वचन विघात रे ।
बेटी भली रे भणी तू आज, तें लोपी मुज लाज रे बेटी
विणसाड़्यु निज काज रे बेटी, तुं मूरख शिरताज रे बेटी0 ।।3।।

पाली ने मोटी करी रे, भोजन कूर कपूर ।
रयण हिंडोले हिंचती रे, भोग भला भरपूर रे बेटी0 ।।4।।

पाट पटम्बर पहेरणो रे, परिजन सेवे पाय ।
जगमां सहु जी जी करे, ए सवि मुज पसाय रे बेटी0 ।।5।।

तत्त्व विचारो तातजी ! रे, मत आणो मन रोष ।
कर्मे तुम कुल अवतरी रे, मैं किहाँ जोया जोष ।।पि0 ।।6।।

मलहावो मोंटे मने रे, नव नव करो निवेद ।
ते सवि कर्म पसाउले रे, ए अवधारो भेद ।।पि0 ।।7।।

जो हठवाद तुझने घणो रे, कर्म उपर एकांत ।
तो तुझने परणावशुं रे, कर्मे आण्यो कंत रे. बेटी० भ0 ।।8।।

मान हण्यो जुओ एणीये रे, माहरुं सभा समक्ष ।
फल देखाडुं एहने रे, सकल प्रजा प्रत्यक्ष रे. बेटी० भ0 ।।9।।

सखी ए शुं शिखव्युं रे, अध्यापक अज्ञान ।
सज्जन लोक लाजे सहु रे, देखी ए अपमान रे. बेटी० भ0 ।।10।।

नगर लोक निंदे सहु रे, भण्युं एहनुं धूल ।
जुओ वातनी वातमां रे, पिता कर्यो प्रतिकूल रे बेटी० भ0 ।।11।।

मिथ्यात्वी कहे जैननी रे, बात सकल विपरीत ।
जगत नीति जाणे नहीं रे, अवला ने अविनीत रे बेटी०भ0 ।।12।।

अवसर पामी रायनो रे, रोष समावण काज ।
कहे प्रधान पधारिये रे, रयवाड़ी महाराज रे बेटी० भ0 ।।13।।

रास भलो श्रीपालनो रे, तेहनी त्रीजी ढाल ।
विनय कहे मद परिहरी रे, जेहथी बहु जंजाल रे बेटी० भ0 ।।14।।

चोथी ढाल

दोहा

राजा रयवाड़ी चढ्यो, सबल सैन्य परिवार ।
मदमाता मयगल घणां, सहस गमें असवार ।।1।।

सुभट सिपाही सामटा, जिस्या पंचायण सिंह ।
आयुध आडंबर सहित, अटल अभंग अबीह ।।2।।

वाघा केसरिया किया, रढियाला रजपूत ।
मुछाला मछरायला, योध जिस्या जमदूत ।।3।।

पाखरिया पंखी परे, उडे अंबर जाम ।
पंचवरण नेजा नवल, गयण चोक चित्राम ।।4।।

सरणाइ वाजे सरस, घूरे घोर निसाण ।
पूर बाहिर नृप आविया, भाला जलहल भाण ॥5॥

ढाल

(राग : रामचंद्र के बाग चंपो मोरी रह्यो रे)

मारग सन्मुख ताम, उड़े खेह घणी री ।
पूछे भूपति दृष्टि देई, मंत्री भणे री ॥1॥
कुण आवे छे एह, एवड़ा लोक घणा री ।
कहे मंत्री रहो दूर, दरिसण एह तणा री ॥2॥
एक कुष्टी सय साल, थाई एक मणा री ।
थापी राजा एक, जाचे राय राणी री ॥3॥
मारग मूकी जाम, नरपति दूर टले री ।
गलितांगुली तस दूत, आवी ताम मले री ॥4॥
उत्तम मारग कांई, जाये दूर तजीरी ।
उज्जेणीना राय, हारे कीर्ति सजी री ॥5॥
निर्मुख आशा भंग, जाचक जास रह्यारी ।
भारभूत जग मांहि, निर्गुण तेह कह्यारी ॥6॥
शी जाचो छो वस्तु, विगते तेह भणोरी ।
राय कहे अम आज, कीरति कांई हणोरी ॥7॥
दूत कहे अम राय सघली, ऋद्धि मली रे ।
राजवट्ट परगट्ट, कीधी अमे भली री ॥8॥
पण सुकुलिणी एक, कन्या कोई दिये री ।
तो तस राणी होये, अम एह हर्ष हिये री ॥9॥
मन चिन्ते तव राय, मयणाने देऊँ परी री ।
जग मांही राखुं कीर्ति, अविचल एह खरी री ॥10॥
फल पामे प्रत्यक्ष, मयणां कर्म तणां री ।
साले हैड़ामांही, वयणां तेह घणां री ॥11॥
वले रुंख धान वृद्धि, दाध्यां जेह दवे री ।
कुवयण दाध्यां जेह, न वले तेह भवे री ॥12॥
रोष तणे वश राय, शुद्धि बुद्धि सर्व गई री ।
कहे दूत तुझ राय, अम घर आणो जइ री ॥13॥

देऊँ राजकुमारी, रूपे रंभा जिसी री ।
दूत तणे मन वात, विस्मय एह वसी री ।।14।।
किश्युं विमासे मूढ, में जे वात कही री ।
न फरे जगमां तेह, अविचल सांची सही री ।।15।।
श्री श्रीपालनो रास, चोथी ढाल कही री ।
विनय कहे निर्वाण, क्रोधे सिद्धि नहीं री ।।16।।

पांचवी ढाल

दोहा

कोप कठिन भूपति हवे, आव्यो निज आवास ।
सिंहासन बेठो अधिक, अति अभिमान विलास ।।1।।
मयणा ने तेडी कहे, कर्मतणो पख छोड़ ।
मुज पसाय मन आण, जिम पूरुं वांछित कोड़ ।।2।।
मयणा कहे दूरे तजो, ए सवि मिथ्यावाद ।
सुख दुःख जे जग पामिये, ते सवि कर्म प्रसाद ।।3।।
बालकने बतलावतां, हटे चड़ावे राय ।
वाद करंता बालशुं, लघुता पामे न्याय ।।4।।
कोई कहे ए बालिका, जुओ हठीली थाय ।
अवसर उचित न ओलखे, रीस चड़ावे राय ।।5।।

ढाल

(इडर आंबा आबली रे)

राणो ऊंबर तिण समेरे, आव्यो नयरी मांहि ।
सटित करण सूपड़ जिस्यो रे, छत्र करे शिर छांही
चतुर नर कर्म तणी गति जोय
कर्मे सुख दुःख होय चतुर नर, कर्मे न छूटे कोय
चतुर नर कर्म तणी गति जोय ।।1।।
श्वेतांगुली चामर धरे रे, अवगत नास खवास ।
घोर नाद घोंघर स्वरे रे, अरज करे अरदास चतुरनर0 ।।2।।
वेसर असवारी करी रे, रोगी सवि परिवार ।
बले बाउलें परिवर्यो रे, जिश्यो दग्ध सहकार चतुरनर0 ।।3।।

केई टूटा केई पांगला रे, केई खोड़ा केई खीप ।
केई खसिया केई खासिया रे, केई दद्दुर केई दोण चतुरनर0 ।।4।।
एक मुखे मांखी भणभणे रे, एक मुख पड़ती लार ।
एक तणे चांदा चगेरे, एक शिर नाठा बाल चतुरनर0 ।।5।।
चहुटा मांहे चालतां रे, सोर करे सय सात ।
लोक लाख जोवा मल्यां रे, एह किश्यो उत्पात चतुरनर0 ।।6।।
ढोर धसे कुतर भसे रे, धिक धिक कहे मुख वाच ।
जन पूछे तमे कोण छो रे, भूत के प्रेत पिशाच चतुरनर0 ।।7।।
कहे रोगी तुम रायनी रे, पुत्री रूप निधान ।
ते अम राणो परणशे रे, एह जाए तस जान चतुरनर0 ।।8।।
नगर लोक साथे थया रे, कौतुक जोवा काज ।
ऊंबरराणो आवियो रे, जिहाँ बेठा महाराज चतुरनर0 ।।9।।
मयणाने भूपति कहे रे, ए आव्यो तुह नाह ।
सुख संपूरण अनुभवो रे, कर्मे कर्यो विवाह चतुरनर0 ।।10।।
मयणा मुख नवि पालटे रे, अंश न आणे खेद ।
ज्ञानीनुं दीठुं हुवे रे, तिहां नहीं किश्यो विभेद चतुरनर0 ।।11।।
जेह पिताए पांचनी रे, साखे दीधा वंत ।
देव परे आराधवो रे, उत्तम मन ए खंत चतुरनर0 ।।12।।
करी प्रणाम निज तात ने रे, वयण विमल मुख रंग ।
आवीने ऊभी रही रे, ऊंबर ने वामांग चतुरनर0 ।।13।।
तव उम्बर एणी परे भणे रे, अनुचित ए भूपाल ।
न घटे कंठे काग ने रे, मुक्ता फलनी माल चतुरनर0 ।।14।।
राय कहे कन्या तणो रे, कर्मे ए बल कीध ।
घणुं कह्युं में एहने रे, दोष न को में लीध चतुरनर0 ।।15।।
रोगी रलीयायत थया रे, देखी कन्या पास ।
परमेसरे पूरण करी रे, आज अमारी आश चतुरनर0 ।।16।।
सुगुण रास श्रीपालनो रे, तेहनी पांचमी ढाल ।
विनय कहे श्रोता घरे रे, होजो मंगल माल चतुरनर0 ।।17।।

छट्ठी ढाल

दोहा

कोई कहे धिक् राय ने, एवडो रोष अगाध ।
कोई कहे कन्या तणो, ए सघलो अपराध ।।1।।
उतारे आव्या सहु, सुणतां इम जन वात ।
अनुचित देखी आथम्यो, रवि प्रगटी तव रात ।।2।।
यथा शक्ति उत्सव करी, परणावी ते नार ।
मयणा ने उम्बर मली, बेठां भुवन मझार ।।3।।

ढाल

(राग : कोईक पर्वत धुंधलो रे लो)

ऊंबर मन मां चिंतवे रे लोल, धिक् धिक् मुज अवतार रे छबीली ।
मुज संगत थी विणसशे रे लोल, एहवी अद्भूत नार रे रंगीली ।।1।।
सुन्दरी हजिए विमासजो रे लोल, ऊँडो करो आलोच रे छबीली ।
काज विचारी कीजिये रे लोल, जिम न पड़े फरी सोच रे ।
रंगीली ! सुन्दरी हजिए विमासजो रे लोल ।।2।।
मुज संगे तुज विणसशे रे लो, सोवन सरखी देह रे छबीली ।
तू रूपे रंभा जिसी रे लो, कोढ़ीथी श्यो नेह रे रंगीली सुं0 ।।3।।
लाज इहाँ मन नाणिये रे लो, लाजे विणशे काज रे छबीली ।
निज माता चरणे जई रे लो, सुन्दर वर कर राज रे रंगीली सुं0 ।।4।।
मयणा तस वयणा सुणी रे लो, हियडे दुःख न माय रे वालेसर ।
ढलक ढलक आंसू पड़े रे लो, विनवे प्रणमी पाय रे वालेसर ।
वचन विचारी उच्चरो रे लो, तुम छो चतुर सुजाण रे वालेसर व0 ।।5।।
एह वचन केम बोलिये रे लो, एणे वचने जीव जाय रे वालेसर ।
जीव जीवन तुम वालहा रे लो, अवर न नाम खमाय रे वालेसर व0 ।।6।।
पश्चिम रवि नवि उगमे रे लो, जलधि न लोपे सीम रे वालेसर ।
सती अवर इच्छे नहीं रे लो, जां जीवे तां सीम रे वालेसर व0 ।।7।।
उदयाचल ऊपर चढ़्यो रे लो, भानु रवि परभात रे वालेसर ।
मयणा मुख जोवा भणी रे लो, शील अचल अवदात रे वालेसर व0 ।।8।।

चक्रवाक दुःख चूरतो रे लो, करतो कमल विकास रे वालेसर ।
जगत लोचन जब उगियो रे लो, प्रसर्यो पुहवी प्रकाश रे वालेसर व0 ।।9।।
आवो देव जुहारवा रे लो, ऋषभ देव प्रासाद रे वालेसर ।
आदीश्वर मुख देखतां रे लो, नासे दुःख विखवाद रे वालेसर व0 ।।10।।
मयणा वयणे आवियो रे लो, उम्बर जिन प्रासाद रे जिनेसर ।
आदीश्वर अवलोकतां रे लो, उपन्यो मन आल्हाद रे, जिनेसर ।
तिहुअण नायक तू बड़ो रे लो, तुम सम अवर न कोय रे जिनेसर ।।11।।
मयणांए जिन पूजिया रे लो, केशर चंदन कपूरे रे जिनेसर ।
लाखीणो कंठे टव्यो रे लो, टोडर परिमल पूर रे जिनेसर ति0 ।।12।।
चैत्यवंदन करी भावना रे लो, भावे करी काउसग्ग रे जिनेसर ।
जय जय जग चिंतामणि रे लो, दायक शिवपुर मग्ग रे जिनेसर ति0 ।।13।।
इह भव पर भव तुज विना रे लो, अवर न को आधार रे जिनेसर ।
दुःख दोहग दूरे करो रे लो, अम सेवक साधार रे जिनेसर ति0 ।।14।।
कुसुम माल निज कंठथी रे लो, हाथ तणुं फल दीध रे जिनेसर ।
प्रभु पसाय सहु देखतां रे लो, उंबर ए बेउ लीध रे जिनेसर ति0 ।।15।।
मयणा काउसग्ग पारियो रे लो, हियड़े हर्ष न माय रे जिनेसर ।
ए सही शासन देवता रे लो, कीधो अम सुपसाय रे जिनेसर ति0 ।।16।।
सुगुण रास श्रीपालनो रे लो, तिहां ए छट्ठी ढाल रे जिनेसर ।
विनय कहे श्रोता घरे रे लो, होजो मंगल माल रे जिनेसर ति0 ।।17।।

सातवीं ढाल

दोहा

पासे पोषह शाल मां, बेठा गुरु गुणवंत ।
कहे मयणा दिये देसना, आवो सुणिये कंत ।।1।।
नर नारी बेउ जणा, आव्या गुरु ने पाय ।
विधि पूर्वक वंदन करी, बेठा बेसण ठाय ।।2।।
धर्मलाभ देई धुरे, आणी धर्म सनेह ।
योग्य जीव जाणी हवे, धर्म कहे गुरु तेह ।।3।।

ढाल

(राग : वात म काडो हो व्रत तणी)

भमता एह संसार मां, दुलहो नरभव लाधो रे ।
छांडी नींद प्रमादनी, आप सवारथ साधो रे ।।
चेतन चेतो रे चेतना, आणी चित्त मझार रे चेतन0 ।।1।।
सामग्री सवि धर्मनी, आले जे नर खोई रे ।
माखीनी परे हाथ ते, घसतां आप विगोई रे चेतन0 ।।2।।
जान लई बहु जुगति शुं, जेम कोई परणवा जाय रे ।
लगन वेला गई ऊँधमां, पछी घणुं पस्ताय रे चेतन0 ।।3।।
एणी परे देई देशना, करे भविक उपकार रे ।
गुरु मयणा ने ओलखी, बोलावी तेणिवार रे । चेतन0 ।।4।।
रे कुँवरी ! तुं रायनी, साथे सबल परिवार रे ।
अम उपासरे आवती, पूछण अर्थ विचार रे । चेतन0 ।।5।।
आज किश्युं इम एकली, ए कुण पुरुष रतन रे ।
धूरथी वात सवि कही, मयणा थिर करी मन, चेतन0 ।।6।।
मन मांहे नथी आवतुं, अवर किशुं दुःख पूज्य रे ।
पण जिन-शासन हेलना, साले लोक अबुझ रे, चेतन0 ।।7।।
गुरु कहे दुःख न आणजो, ओछु अंश न भाव रे ।
चिंतामणी तुज कर चढ्यो, धर्म तणे परभाव रे चेतन0 ।।8।।
वड़वखती वर एह छे, होशे रायाराय रे ।
शासन सोह वधारशे, जग नमशे एह पाय रे चेतन0 ।।9।।
मयणा गुरुने विनवे, देई आगम उपयोग रे ।
करी उपाय निवारीये, तुम श्रावक तनु रोग रे चेतन0 ।।10।।
सूरि कहे ए साधु नो, उत्तम नहि आचार रे ।
यंत्र जड़ी मणि मंत्र जे, औषध ने उपचार रे चेतन0 ।।11।।
पण सुपुरुष एहथी, थाशे धर्म उद्योत रे ।
तेणे एक यंत्र प्रकाशसु, जस जग जागति ज्योत रे चेतन0 ।।12।।
श्री मुनिचन्द्र गुरुए तिहां, आगम ग्रंथ विलोई रे ।
माखणनी परे उद्धर्यो, सिद्धचक्र यंत्र जोई रे चेतन0 ।।13।।

अरिहंतादिक नव पदे, ओं ह्रीं पद संयुक्त रे ।
अवर मंत्राक्षर अभिनवा, लहिए गुरुगमे तत्त रे चेतन0 ।।14।।
सिद्धादिक पद चिहुं दिशे, मध्ये अरिहंत देव रे ।
दरिसण नाण चरित्त ते, तप चिहुँ विदिश सेव रे चेतन0 ।।15।।
अष्टकमलदल इणि परे, यंत्र सकल शिरताज ।
निर्मल तन मन सेवतां, सारे वांछित काज रे चेतन0 ।।16।।
आसो सुदि मांहे मांडिये, सातमथी तप एह रे ।
नव आयंबिल करी निर्मला, आराधो गुण गेह रे चेतन0 ।।17।।
विधि पूर्वक करी धोतिया, जिन पूजो त्रण काल रे ।
पूजा अष्ट प्रकारनी, कीजे थई उजमाल रे चेतन0 ।।18।।
निर्मल भूमि संथारिये, धरिये शील जगीश रे ।
जपिये पद एक एकनी, नोकारवाली वीश रे चेतन0 ।।19।।
आठे थोईए देव वांदिये रे, देव सदा त्रण काल रे ।
पड़िक्कमणा दोय कीजिये रे, गुरु वैयावच्च सार रे चेतन0 ।।20।।
काया वश करी राखिये, वचन विचारी बोल रे ।
ध्यान धर्मनुं धारिये, मनसा कीजे अडोल रे चेतन0 ।।21।।
पंचामृत करी एकठा, परिगल कीजे पखाल रे ।
नवमे दिन सिद्धचक्रनी, कीजे भक्ति विशाल रे चेतन0 ।।22।।
सुदि सातमथी इणी परे, चैत्री पूनम सीम रे ।
ओली एह आराधिये, नव आंबिलनी नीम रे चेतन0 ।।23।।
एम एक्यासी आंबिले, ओली नव निरमाय रे ।
साढ़ा चार संवत्सरे, ए तप पूरण थाय रे चेतन0 ।।24।।
उजमणुं पण कीजिये, शक्ति तणे अनुसार रे ।
इह भव पर भव सुख घणा, पामीजे भव पार रे चेतन0 ।।25।।
आराधना फल एहना, इह भव आण अखंड रे ।
रोग दोहग दुःख उपशमे, जिम घन पवन प्रचंड रे चेतन0 ।।26।।
नमण जले सिद्धचक्रने, कुष्ट अढारे जाय रे ।
वाय चोरासी उपशमे, रूझे गुंबड़ धाय रे चेतन0 ।।27।।
भीम भगंदर भय टले, जाय जलोदर दूर रे ।
व्याधि विविध विष वेदना, ज्वर थाए चकचूर रे चेतन0 ।।28।।

खास खयन खस चक्षुना, रोग मिटे सन्निपात रे ।
चोर चरड डर डाकिनी, कोइ न करे उपघात रे, चेतन0 ।।29।।
हीक हरस ने हेड़की, नारा ने नासूर रे ।
पाठा पीड़ा पेटनी, टले दुःख दंतना सूल रे, चेतन0 ।।30।।
निर्धनिया धन संपजे, अपुत्र पुत्रिया होय रे ।
विण केवली सिद्धयंत्रना, गुण न शके कही कोय रे, चेतन0 ।।31।।
रास रच्यो श्रीपालनो, तेहनी सातमी ढाल रे ।
विनय कहे श्रोता घरे, होजो मंगल माल रे चेतन0 ।।32।।

आठवीं ढाल

दोहा

श्री मुनिचन्द्र मुनिश्वरे, सिद्ध यंत्र करो दीध ।
इह भव पर भव एहथी, फलशे वांछित सिद्ध ।।1।।
श्री गुरु श्रावकने कहे, ए बेउ सुगुण निधान ।
कोइक अवसर पामिए, सेवो थई सावधान ।।2।।
साहम्मी ना सगपण समुं, अवर न सगपण कोय ।
भक्ति करे साहम्मी तणी, समकित निर्मल होय ।।3।।
पधरावे आदर करी, साहम्मी निज आवास ।
भक्ति करे नव नव परे, आणी मन उल्लास ।।4।।
तिहां सघलो विधि सांचवे, पामी गुरु उपदेश ।
सिद्धचक्र पूजा करे, आंबिल तप सुविशेष ।।5।।

ढाल

(चोपाई छंद)

आसो सुदि सातम सुविचार, ओली मांडी स्त्री भरतार ।
अष्ट प्रकारी पूजा करी, आंबिल कीधा मन संवरी ।।1।।
पहले आंबिल मन अनुकूल, रोग तणो तिहां दाझ्यु मूल ।
अंतर दाह सयल उपशम्यो, यंत्र नमण महिमा मन रम्यो ।।2।।
बीजे आंबिल बाहिर त्वचा, निर्मल थई जपतां जिन रूचा ।
एम दिन दिन प्रति वाध्यो वान, देह थयो सोवन्न समान ।।3।।
नवमे आंबिल थयो निरोग, पामो यंत्रनमण संयोग ।
सिद्धचक्रनो महिमा जुओ, सकल लोक मन अचरिज हुओ ।।4।।

मयणा कहे अवधारो राय, ए सवि सद्गुरु तणो पसाय ।
मातपिता बन्धव सुत होय, पण गुरु सम हितुओ नही कोय ।।5।।
कष्ट निवारे गुरु इह लोक, दुर्गति थी वारे परलोक ।
सुमति होय सद्गुरु सेवतां, गुरु दीवो ने गुरु देवता ।।6।।
धन्य गुरु ज्ञानी धन्य ए धर्म, प्रत्यक्ष दीठो जेहनो मर्म ।
जैन धर्म प्रशंसे सहु, बोधि बीज पाम्या तिहाँ बहु ।।7।।
सात सौ रोगीना रोग, नाठा यंत्र नव्हण संयोग ।
तेओ सातसे सुखिया थया, हर्ष्या निज निज थानक गया ।।8।।
एक दिन जिनवर प्रणमी पाय, पाछा वलता दीठी माय ।
हर्ष धरीने चरणे नमे, मयणा मयणा पण आवी तिण समे ।।9।।
सासु जाणी पाए पड़े, विनय करता गिरु आई चड़े ।
सासु वहु ने दे आशिष, अचरिज देखी धूणे शीष ।।10।।
कहे कुंवर माताजी सुणो, ए पसाय सहु तुम वहू तणो ।
गयो रोग ने वाध्यो रंग, वली लह्यो जिन धर्म प्रसंग ।।11।।
सुगुण वहू निर्मल निज नंद, देखी माय अधिक आनंद ।
पूनम परे वहू ते जश लीध, सकल कला पूरण पिउ कीध ।।12।।
सुणो पुत्र कोसंबी सुण्यो, वैद्य एक वैद्यक बहु भण्यो ।
तेह मणी तिहाँ जाउँ जाम, ज्ञानी गुरु मुज मलिया ताम ।।13।।
में पूछ्यु गुरु चरणे नमी, कर्म कदर्थन में बहु खमी ।
पुत्र एक छे मुज बालहो, ते पण कर्मे रोगे ग्रह्यो ।।14।।
तेह तणो किम जाशे रोग ? के नहीं जाए पाप संजोग ?
दया करी मुज दाखो तेह, हूं छुं तुम चरणोनी खेह ।।15।।
तव बोल्या ज्ञानी गुणवंत, म कर खेद सांभल वृत्तान्त ।
ते तुज पुत्र कुष्टीये ग्रह्यो, उम्बर राणो करी जश लह्यो ।।16।।
मालवपति पुत्रीए वर्यो, तस विवाह कुष्टोए कर्यो ।
धरणी वयणे तप आदर्युं, श्री सिद्धचक्र आराधन कर्युं ।।17।।
तेथी तुज सुत थयो निरोग, प्रकट्यो पुण्य तणो संयोग ।
वली एह थी वधसे लाज, जीती घणा भोगवशे राज ।।18।।
गुरु वचने हुँ आवी आज, तुम दीठे मुज सरिया काज ।
त्रणे जण हवे रहे सुख वास, लील करे साहमी आवास ।।19।।

सिद्धचक्रनो उत्तम रास, भणतां गुणतां पुगे आस ।
ढाल आठमी इणी परे सुणी, विनय कहे चित्त धरजो गुणी ।।20।।

नवमी ढाल

दोहा

एक दिन जिन पूजा करी, मधुर स्वरे एक चित्त ।
चैत्यवंदन कुंवर करे, सासु बहु सुणंत ।।1।।
मयणानी माता घणुं, दुहवाणी नृप साथ ।
जब मयणा मत्सर धरी, दीधी उम्बर हाथ ।।2।।
पुण्यपाल नामे नृपति, निज बांधव आवास ।
रीसाई आवी रही, मुके मुख निसास ।।3।।
जिनवाणी हियड़े धरी, विसारी दुःख दंद ।
आवी देव जुहारवा, तिण दिन तिहां आणंद ।।4।।
माए मयणा ओलखी, अनुसारे निज बाल ।
आगल नर दीठो अवर, यौवन रूप रसाल ।।5।।
कुल खंपण ए कुंवरी, कां दीधी किरतार ।
जेणे कुष्टी वर परिहरी, अवर कियो भरतार ।।6।।
वज्र पड़ो मुज कूखने, धिक् धिक् मुज अवतार ।
रूपसुन्दरी इणी परे घणुं, रुदन करे तेणीवार ।।7।।
रोती दीठी दुःख भरे, मयणाए निज माय ।
तब आवी उतावली, लागी जननी पाय ।।8।।
हर्ष तणे स्थानक तुमे, का दुःख आणो माय ।
दुःख दोहग दूरे गया, श्री जिन धर्म पसाय ।।9।।
निसिही कहीने आविया, जिणहर मांहे जेण ।
करतां कथा संसारनी, आशातना होये तेण ।।10।।
हमणा रहिये छे जिहां, आवो तिण आवास ।
वात सयल सुणजो तिहां, होशे हिये उल्लास ।।11।।
तिहां आवी बेठा मली, चारे चतुर सुजाण ।
जे दिन स्वजन मेलावड़ो, धन ते दिन सुविहाण ।।12।।
मयणाना मुखथी सुणी, सघलो ते अवदात ।
रूपसुन्दरी सुप्रसन्न थई, हियड़े हर्ष न मात ।।13।।

ढाल

(राग : गोरी नागीला रे)

वर वहु बेहु सासु मली रे, करे वेवाहण वात रे ।
कमला रूपा ने कहे रे, धन तुम कुल विख्यात रे ।।
जुओ अगम गति पुण्यनी रे, पुण्ये वांछित थाय रे ।
सवि दुःख दूर पलाय रे, जुओ अगम गति पुण्यनी रे ।।1।।
बहु अम कुल उद्धर्युं रे, कीधो अम उपकार रे ।
अमने जिन धर्म बुझव्यो रे, उतार्यां दुःख पार रे जुओ0 ।।2।।
सूई जिम दोरा प्रते रे, आणे कसीदो ठाम रे ।
तिम वहुए मुज पुत्रनी रे, घणी वधारी माम रे जुओ0 ।।3।।
रूपा कहे भाग्ये लह्यो रे, अमे जमाई एह रे ।
रयण चिंतामणि सरीखो रे, सुन्दर तनु सस्नेह रे जुओ0 ।।4।।
सुणवा अम इच्छा घणी रे, एहना कुल घर वंश रे ।
प्रेमे तेह प्रकाशिये रे, जिम हिसे अम हंस रे जुओ0 ।।5।।
कहे कमला रूपा सुणो रे, अंग अनूपम देश रे ।
तिहां चंपानगरी भली रे, जिहां नहीं पाप प्रवेश रे जुओ0 ।।6।।
तेह नगरनो राजियो रे, राज गुणे अभिराम रे ।
सिंह थकी रथ जोड़ता रे, प्रकट होसे तस नाम रे जुओ0 ।।7।।
राणी तस कमलप्रभा रे, अंग धरे गुण श्रेण रे ।
कोंकण देश नरिंदनी रे, जे सुणीये लघु बहेन रे जुओ0 ।।8।।
राजा मन चिंता घणी रे, पुत्र नहीं अम कोय रे ।
राणी पण अरति करे रे, निश दिन झूरे दोय रे जुओ0 ।।9।।
देव देहरडां मानता रे, इच्छतां पूछतां एक रे ।
राणी सुत जनम्यो यथा रे, विद्या जणे विवेक रे जुओ0 ।।10।।
नगर लोक सवि हरखिया रे, घर घर तोरण त्राट रे ।
आवे घणा वधामणा रे, शणगार्यां घर हाट रे जुओ0 ।।11।।
राजा मन उलट घणो रे, दान दिये लख कोड़ी रे ।
वैरी पण संतोषिया रे, बंदिखाना छोड़ी रे जुओ0 ।।12।।
धवल मंगल दिये सुन्दरी रे, वाजे ढोल निशाण रे ।
नाटक होवे नवनवा रे, महोत्सव अधिक मंडाण रे जुओ0 ।।13।।

न्याति सज्जन सहु नोतर्या रे, भोजन षटरस पाक रे ।
पार नहीं पकवाननो रे, शालि सुरहां घृत शाक रे जुओ० ।।14।।
भूषण अम्बर पहेरामणी रे, श्रीफल कुसुम तंबोल रे ।
केशर तिलक वली छांटणा रे, चंदन चूआ रङ्गरोल रे जुओ० ।।15।।
राजरमणी अम पालशे रे, पुण्ये लह्यो ए बाल रे ।
सजन भूआ मली तेहनुँ रे, नाम ठवे श्रीपाल रे जुओ० ।।16।।
रास रूडो श्रीपालनो रे, तेहनी नवमी ढाल रे ।
विनय कहे श्रोता घरे रे, होजो मंगल माल रे जुओ० ।।17।।

दसमी ढाल

दोहा

पांच वरसनो जब हुओ, ते वुँवर श्रीपाल ।
ताम शूल रोगे करी, पिता पहोतो काल ।।1।।
शिर वूटे पीटे हियो, रोवे सकल परिवार ।
स्वामी ते माया तजी, कुण करशे अंम सार ।।2।।
गया विदेशे बाहुड़े, वहालां कोईक वार ।
इण वाटे वोलाविया, ते न मले बीजी वार ।।3।।
हेजे हँसी बोलावता, जे क्षण मां वेई वार ।
नजर न मंडे ते सजन, फूटे न हिया गमार ।।4।।
नेह न आण्यो माहरो, पुत्र न थाप्यो पाट ।
एवड़ी उतावल करी, शुं चाल्या इण वाट ।।5।।
रोती हिये फाटती, कमला करे विलाप ।
मतिसागर मंत्री तिसे, इम समझावे आप ।।6।।
हवे हियड़ो काठो करी, सकल सम्भालो काज ।
पुत्र तुमारो नानड़ो, रोता न रहे राज ।।7।।
कमला कहे मंत्री प्रते, हवे तुमे आधार ।
राज्य दई श्रीपालने, सफल करो अधिकार ।।8।।

ढाल

(राग : मारु)

मृत कारज करी रायना रे, सकल निवारी शोक,
मतिसागर मंत्रीसरे रे, थिर कीधा सवि लोक ।
देखो गति दैवनी रे, दैव करे ते होय, कुणे नहीं चाले रे ।।1।।

राज ठवी श्रीपालने रे, वरतावी तस आणं ।
राज काज सवि चालवे रे, मंत्री बहु बुद्धि खाण, देखो0 ।।2।।
इण अवसर श्रीपालनो रे, पीतरीओ मतिमूढ़ ।
परिकर सघलो पालटी रे, गुझ करे इम गूढ़ देखो0 ।।3।।
मतिसागरने मारवा रे, वली हणवा श्रीपाल ।
राज लेवा चंपातणुं रे, दुष्ट थयो उजमाल देखो0 ।।4।।
किमहिक मंत्रीसर लही रे, ते वैरीनी वात ।
राणीने आवी कहे रे, नासो लेई अधरात । देखो0 ।।5।।
जो जाशो तो जीवशो रे, सुत जीवाड़ण काज ।
कुंवर जो कुशलो हशे रे, तो वली करशो राज । देखो0 ।।6।।
राणी नाठी एकली रे, पुत्र चड़ावी वेड़ ।
उवटे उजाती पड़े रे, विषमी जिहाँ छे वेड़ । देखो0 ।।7।।
जास झड़ोझड़ झांखरां रे, खाखर भाखर खोह ।
फणिधर मणिधर ज्यां फरे रे, अजगर ऊंदर गोह । देखो0 ।।8।।
उजड़े अबला रड़वड़े रे, रयणी घोर अंधार ।
चरणे खूंचे कांकरा रे, वहे लोहीनी धार । देखो0 ।।9।।
वरु वाघ ने वरघड़ा रे, सोर करे शियाल ।
चोर चरड ने चीतरा रे, दिये उछलती फाल । देखो0 ।।10।।
घू घू घू घूअड करे रे, वानर पाड़े हीक ।
खल खल परवतथी पड़े रे, नदी निझरणा नीक । देखो0।।11।।
बलियुं बेउनु आउखुं रे, सत्य शियल संघात ।
वखत बली कुंवर बड़ो रे, तिणे न करे कोई घात । देखो0।।12।।
रयण हिंडोले हिंचती रे, सूती सोवन खाट ।
तस सिर इम वेला पड़ी रे, पड़ो दैव सिर दाट । देखो0।।13।।
रड़वड़ता रजनी गई रे, चढ़ी पंथ शिर शुद्ध ।
तब बालक भूख्यो हुओ रे, मांगे साकर दूध । देखो0 ।।14।।
तब रोती राणी कहे रे, दूध रह्या वत्स दूर ।
जो लहिये हवे कूकशा रे, तो लह्या कूर कपूर । देखो0 ।।15।।
हवे जाता मार्गे मली रे, एक कुष्टीनी फोज ।
रोगी मलिया सातसो रे, हींडे करता मोज । देखो0 ।।16।।

कुष्टीए पूछ्या पछी रे, सयल सुणावी वात ।
वलतुं कुष्टी इम कहे रे, अरति म करो माय । देखो0 ।।17।।
आवी अम शरणे हवे रे, मन राखो आराम ।
ए कोई अम जीवतां रे, कोई न ले तुम नाम । देखो0 ।।18।।
वेसर आपी बेसवा रे, ढांकी सघलुं अंग ।
बालक राखी सोड़मां रे, बेठी थई खडंग । देखो0 ।।19।।
एहवे आव्या शोधता रे, वैरीना असवार ।
कोई स्त्री दीठी इहां रे, पूछे वारोवार । देखो0 ।।20।।
कोई इहां आव्यो नथी रे, झूठ म झंखो आल ।
वचन न मानो अमतणो रे, नयणे जुओ निहाल । देखो0 ।।21।।
जो जोशो तो लागशे रे, अंगे रोग असाध ।
नाठा बीहता बापड़ा रे, वलगे रखे विराध । देखो0 ।।22।।
कुष्टी संगत थी थयो रे, सुतने उंबर रोग ।
माडी मन चिंता घणी रे, कटिन करमना भोग । देखो0 ।।23।।
पुत्र भलावी तेहने रे, माता चाली विदेश ।
वैद्य औषध जोवा भणी रे, सहेती घणा किलेश । देखो0 ।।24।।
ज्ञानीने वचने करी रे, सयल फली मुज आश ।
तेहिज हुँ कमलप्रभा रे, आ बेठी तुम पास । देखो0 ।।25।।
रास रूडो श्रीपालनो रे, तेहनी दशमी ढाल ।
विनय कहे पुण्ये करी रे, दुःख थाये विसराल । देखो0 ।।26।।

ग्यारहवीं ढाल

दोहा

रूपसुन्दरी श्रवणे सुणी, विमल जमाई वंश ।
हरखे हियड़े गहगही, इणी परे करे प्रशंस ।।1।।
वखतवंत मयणा समी, नारी न को संसार ।
जेणे बेउ कुल उद्धर्यां, सती शिरोमणि सार ।।2।।
वर पण पुण्ये पामियो, नरपति निर्मल वंश ।
पुत्र सिंहरथ रायनो, क्षत्रिय कुल अवतंस ।।3।।
रूपसुन्दरी रंगे जई, वात सुणावी सोय ।
निज बंधव पुण्यपाल ने, ते पण हर्षित होय ।।4।।

चतुरंगी सेना सजी, साथे सबल परिवार ।
तेजी तुरिय नचावता, अवल वेष असवार ।।5।।
रतन जड़ित झलके घणा, धर्यां सूरियां पान ।
ढोल नगारा गड़गड़े, नेजा फूरे निशान ।।6।।
भाणेजी वर जिहां वसे, त्यां आव्या तत्काल ।
निज मंदिर पधरावता, पुण्यवंत पुण्यपाल ।।7।।

ढाल

(देशी-राय कहे राणी प्रत्ये सुण कामिनी रे)

आवो जमाई पाहुणा, जयवंताजी, अम घर करो पवित्र गुणवंताजी ।
सहु ने अचरिज उपजे, जयवंताजी, सुणतां तुम चरित्र गुणवंताजी ।।1।।
गज बेसारी उत्सवे, जयवंताजी, पधारवा निज गेह गुणवंताजी ।
माउलो ससरो पूरवे, जयवंताजी, भोग भला धरी नेह गुणवंताजी ।।2।।
एक दिन बेठा मालिये, जयवंताजी, मयणा ने श्रीपाल गुणवंताजी ।
वाजे छंदे नवनवे, जयवंताजी, मादल भुंगल ताल गुणवंताजी ।।3।।
राय राणी रंगे जुवे, जयवंताजी, थेई थेई नाचे पात्र गुणवंताजी ।
भरह भेद भावे भला, जयवंताजी, वाले परि परि गात्र गुणवंताजी ।।4।।
इण अवसर रयवाड़ीथी, जयवंताजी, पाछो वलियो राय गुणवंताजी ।
नृत्य सुणी उभो रह्यो, जयवंताजी, प्रजापाल तिण ठाय गुणवंताजी ।।5।।
सुख भोगवतां स्वर्गनां, जयवंताजी, दीठां स्त्री भर्तार गुणवंताजी ।
नयणे लाग्या निरखवा, जयवंताजी, चित्त चमक्यो तिणीवार गुण0 ।।6।।
तत्क्षण मयणा ओलखी, जयवंताजी, मन उपज्यो संताप गुणवंताजी ।
अवर कोई वर पेखियो, जयवंताजी, हे है प्रकट्युं पाप, गुणवंताजी ।।7।।
धिक् धिक् क्रोध तणे वशे, जय0 मैं अविचार्युं कीध गुणवंताजी ।
मयणा सरखी सुन्दरी जयवंताजी, कोढ़ी ने कर दीध गुणवंताजी ।।8।।
ए पण हुई कुल खंपणी, जय0 मुज कुल भरियो छार गुणवंताजी ।
परण्यो प्रीतम परिहरि जयवंताजी, अवर कियो भरतार गुणवंताजी ।।9।।
इणी परे उभो झूरतो जयवंताजी जब दीठो ते राय, गुणवंताजी ।
पुण्यपाल अवसर लही जयवंताजी, आवी प्रणमें पाय, गुण0 ।।10।।
राज पधारो मुज घरे, जयवंताजी, जुओ जमाई रूप गुणवंताजी ।
सिद्धचक्र सेवा फली, जयवंताजी, ते कह्युं सकल स्वरूप गुण0 ।।11।।

राये आवी ओलख्यो जयवंताजी, मुख इंगित आकार, गुणवंताजी ।
मन चिंते महिमा नीलो, जयवंताजी, जैनधर्म जगसार गुणवंताजी ।।12।।
मयणा ते सांची कही, जयवंताजी, सभा मांहे सवि वात, गुणवंताजी ।
मैं अज्ञान पणे कर्युं, जयवंताजी, ते सघलो मिथ्यात गुणवंताजी ।।13।।
मैं तुझ दुःख देवा भणी, जयवंताजी, कीधो एह उपाय गुणवंताजी ।
दुःख टली ने सुख थयुं जयवंताजी, ते तुज पुण्य पसाय गुण0 ।।14।।
मयणा कहे सुणो तातजी, जयवंताजी, इहां नहीं तुम वांक गुणवंताजी ।
जीव सयल वश कर्म ने, जयवंताजी, कुण राजा कुण रंक गुण0 ।।15।।
मान तजी मयणा तणी, जयवंताजी, राये मनावी माय गुणवंताजी ।
सजन सवि थया एक मना, जयवंताजी, उल्लट अंग न माय गुण0 ।।16।।
नयर सवि सणगारियुं, जयवंताजी, चहुँटा चोक विशाल गुणवंताजी ।
घर घर गुड़ी उछले, जयवंताजी, तोरण झाक झमाल । गुण0 ।।17।।
घरे जमाई महोत्सवे, जयवंताजी, तेड़ी आव्यो राय गुणवंताजी ।
संपूरण सुख भोगवे, जयवंताजी, सिद्धचक्र सुपसाय । गुण0 ।।18।।
नयर मांहि प्रगट थई, जयवंताजी, मुख मुख एहिज वात गुणवंताजी ।
जिन शासन उन्नति थई जयवंताजी, मयणा ए राखी ख्यात गुण0।।19।।
रास रूडो श्रीपालनो, जयवंताजी, तेहनी अगियारमी ढाल गुणवंताजी ।
विनय कहे सिद्धचक्रनी जयवंताजी, सेवा फली तत्काल, गुण0 ।।20।।

चौपाई

खण्ड खण्ड मीठो जिम खण्ड, श्री श्रीपाल चरित्र अखण्ड ।
कीर्ति विजय वाचकथी लह्यो, प्रथम खंड इम विनये कह्यो ।।

द्वितीय खंड

(मंगलाचरण)

सिद्धचक्र आराधता, पूरे वांछित कोड ।
सिद्धचक्र मुज मन वस्युं, विनय कहे कर जोड़ ।।1।।
शारद सार दया करी, दीजे वचन विलास ।
उत्तर कथा श्रीपालनी, कहेवा मन उल्लास ।।2।।
एक दिन रमवा निकल्यो, चहुँटे वुंवर श्रीपाल ।
सबल सैन्य सु परिवर्यो, यौवन रूप रसाल ।।3।।
मुख सोहे पूरण शशि, अर्ध चन्द्र सम भाल ।
लोचने अमीय कचोलड़ा, अधर अरुण प्रवाल ।।4।।
दंत जिस्या दाड़िम कली, कंठ मनोहर कंबु ।
पुर कपाट परि हृदय तट, भुज भोगल जिम लंबु ।।5।।
केड़ लंक के हरी समो, सोवन वन्न शरीर ।
फूल खरे मुख बोलतां, ध्वनि जलधर गंभीर ।।6।।
चोक चोक चहुटे मल्या, रूपे माह्या लोक ।
महेल गोख मेड़ी चढ़े, नर नारीना थोक ।।7।।
मुग्धा पूछे मायने, मां ए वुग्ण अभिराम ।
इन्द चन्द के चक्कवी, श्याम राम के काम ।।8।।
माय कहे म्होटे स्वरे, अवर म झांखो आल ।
जाय जमाई रायनो, रमवा वुंवर श्रीपाल ।।9।।
वचन सुणी श्रीपालने, चित्तमां लागी चोट ।
धिक् ससरा नामे करी, मुझ ओलखावे लोक ।।10।।
उत्तम आप गुणे सुण्या, मज्झिम बाप गुणेण ।
अधम सुण्या माउल गुणे, अधमाधम ससुरेण ।।11।।

पहली ढाल

(राग : जयश्री)

क्रीडा करी घर आवियो, चपल चित्त श्रीपालो रे ।
उच्चक मन देखी करी, बोलावे प्रजापालो रे क्री0 ।।1।।
राज कोणे आज रीसव्या, कोणे लोपी तुम आण रे ।
दीसो छो कांइ दूमणा, तुम चरणे अम प्राण रे क्री0 ।।2।।

चित्त चाहो तो आपणुं, लीजे चंपा राज रे ।
छड़े प्रयाणे चालिये, सबल सैन्य लइ साज रे क्री0 ।।3।।
वुंवर कहे ससरा तणे, बले न लीजे राज रे ।
आप पराक्रम जिहां नहीं, ते आवे कुण काज रे क्री0 ।।4।।
तेह भणी अमे चालशुं, जोशुं देश-विदेश रे ।
भुजा बले लखमी लही, करशुं सकल विशेष रे क्री0 ।।5।।
माय सुणी आवी कहे, हुं आवीश तुज साथ रे ।
घड़ीय न धीरूं एकलो, तुहिज एक मुज आथ रे क्री0 ।।6।।
वुंवर कहे परदेश मां, पग बंधन न खटाय रे ।
तिणे कारण तुम इहां रहो, दो आशीष पसाय रे क्री0 ।।7।।
जल में बसे वुमुदिनी, चंदा बसे आकास ।
जो जावेु हृदये बसे, सो वाही वेु पास ।।
मां कहे वुशला रहो, उत्तम काम करजो रे ।
भुज बले वैरी वश करी, दरिसण वहेलुं देजो रे क्री0 ।।8।।
संकट कष्ट आवी पड़े, करजो नवपद ध्यान रे ।
रयणी रहेजो जागतां, सर्व समय सावधान रे क्री0 ।।9।।
अधिष्टायक सिद्धचक्रना, जेह कह्या छे ग्रंथ रे ।
ते सवि देवी देवता, यतन करो तुम पंथ रे क्री0 ।।10।।
एम शिखामण देइ घणी, माता तिलक वधावे रे ।
शब्द शकुन होय भला, विजय मुहूरत पण आवे रे0 क्री0 ।।11।।
रास रच्यो श्रीपालनो, तेहने खण्डे रे ।
प्रथम ढाल विनये कही, धर्म उदय थिति मंडे रे क्री0 ।।12।।

दूसरी ढाल

दोहा

हवे मयणा इम विनवे, तुमशुं अविहड नेह ।
अलगी एक क्षण नहि रहुं, तिहां छाया तिहां देह ।।1।।
अग्नि सहेवो सोहिलो, विरह दोहिलो होय ।
कंत विछोही कामिनी, जलण जलंती जोय ।।2।।
कहे वुंवर सुंदरी सुणो, तुं सासु पय सेव ।
काज करी उतावलो, हुं आवुं छुं हेव ।।3।।
मन पाखे मयणा कहे, पियु तुम वचन प्रमाण ।
छे पंजर सूनुं पड्युं, तुम साथे मुज प्राण ।।4।।

ढाल

(राग : मल्हार, तर्ज कौश्या उभी आंगणे)

वालम वहेला रे आवजो, करजो माहरी सार रे ।
रखे रे विसारी मूकता, लही नव नवी नार रे, वालम0 ।।1।।
आजथी करीश एकासणुं, कर्यो सचित्त परिहार रे ।
केवल भूमि संथारशुं, तज्यां स्नान शणगार रे, वालम0 ।।2।।
ते दिन वली कदी आवशे, जिहां देखीश पियु पाय रे ।
विरहनी वेदना वारशुं, सिद्धचक्र सुपसाय रे, वालम0 ।।3।।
सज्जन वोलावी इणी परे, लेई ढाल कृपाण रे ।
चन्द्र नाड़ी स्वर पेसता, कुंवरे कीध प्रयाण रे, वा0 ।।4।।
देशपुर नगरना नव नवां, जोतो कौतुक रंग रे ।
एकली सिंह परे म्हालतो, चड्यो एक गिरि शृंग रे वालम0 ।।5।।
सरस शीतल वन-गहनमां, जिहां चंपक तरु छाह रे ।
जाप जपतो नर पेखियो, करी उर्ध्वनिज बांह रे वालम0 ।।6।।
जाप पूरो करी पुरुष ते, बोल्यो करिय प्रणाम रे ।
सु-पुरुष तू भले आवियो, सर्युं माहरूं काम रे वालम0 ।।7।।
कुंवर कहे मुज सरीखो, कहो जेह तुम काज रे ।
घणे आगे उपकार ने, दीधां देह धन राज रे वालम0 ।।8।।
ते कहे गुरु कृपा करी घणी, विद्या एक मुज दीध रे ।
घणो उद्यम कार्यो साधवा, पणं कारज न सिद्ध रे वालम0 ।।9।।
उत्तर साधक नर विना, मन रहे नहीं ठाम रे ।
तिणे तुम ए करूं विनती, अवधारिये मम स्वाम रे वालम0 ।।10।।
कुंवर कहे साध विद्या सुखे, मन करी थिर थोभ रे ।
उत्तर साधक मूज थकां, करे कोण तुज खोभ रे वालम0 ।।11।।
कुंवरना सहायथी ततखिणे, विद्या थई तस सिद्ध रे ।
उत्तम पुरुष जे आदरे, तिहां होय नव निद्ध रे वालम0 ।।12।।
कुंवर ने तेणे विद्याधरे, दीधी औषधि दोय रे ।
एक जल तरणी अवरथी, लागे शस्त्र नही कोय रे वालम0 ।।13।।
कुंवर विद्याभर दोय जणा, चाल्या पर्वत मांहि रे ।
धातु वादी रस साधता, दीठा तरु छांही रे वालम0 ।।14।।

तेह विद्याधरने कहे, तुमें विधि कह्यो जेह रे ।
तिणे विधि खप अमे बहु कर्यो, न पामे सिद्धि एह रे वालम0 ।।15।।
कुंवर कहे मुज देखतां, वली एह करो विधि रे ।
कुंवरनी नजर महिमां थकी, थई तत्क्षण सिद्धि रे वालम0 ।।16।।
धातु वादी कहे नीपनुं, कनक तुम अनुभाव रे ।
एहमांथी प्रभु लीजिये, तुम तणो जे मन भाव रे वालम0 ।।17।।
कुंवर कहे मुज खप नहीं, कुण उचके भार रे ।
अल्प तिणे अंचले बांधियुं, करी घणी मनुहार रे वालम0 ।।18।।
अनुक्रमे कुंवर आवियो, भरूअच नगर मझार रे ।
हेम खरची सजाई करी, भला वस्त्र हथियार रे वालम0 ।।19।।
सोवन मढ़िये ते औषधि, बांधी जोय निज बांही रे ।
बहुविध कौतुक देख तो, फरे भरूअच्च मांही रे वालम0 ।।20।।
खंड बीजो एह रासनो, बीजा ए तस ढाल रे ।
विनय कहे धर्म थी सुख हुए, जेम राय श्रीपाल रे वालम0 ।।21।।

तीसरी ढाल

दोहा

कोसंबी नगरी वसे, धवल सेठ धनवंत ।
लोक अनर्गल धन भणी, नाम कुबेर कहंत ।।1।।
शकट ऊँट गाड़ा भरी, करियाणा बहु जोड़ी ।
ते भरूअच्चे आवियो, लाभ लहे लख कोड़ी ।।2।।
वस्तु सकल वेची तिणे, अवर वस्तु बहु लीध ।
जल वट प्रवरण पूरवा, सकल सजाई कीध ।।3।।
एक जुंग वहाण कियुं, कुआ थंभ जिहाँ सङ्ग ।
कुआ थंभ सोले सहित, अवर जुंग अड़सङ्ग ।।4।।
वड़सफरी वहाल घणां, बेड़ा वेगड द्रोण ।
शिल्ला खूर्प आवर्त्त इम, भेद गणे तस कोण ।।5।।
इणी परे प्रवहण पांच, पूर्या वस्तु विशेष ।
बंदर मांहे आणिया, पामी नृप आदेश ।।6।।
मालिम पट पुस्तक जुए, सूखाणी सूखाण ।
धू अधिकारी धूतणी, दोरी भरे निशान ।।7।।

करे कराणी साचवण, नाखूदा ले न्याउ ।
वायु परखे पंजरी, नेजामा निज दाउ ।।8।।
खरी मसागति खारूआ, सज्ज करे सढ दोर ।
हलस हलेसा हालवे, बहु बेठा बिहुँ कोर ।।9।।
पंचवर्ण ध्वज वावटा, शिर करे चामर छत्र ।
वहाण सवि शणगारिया, माहे विविध वाजिंत्र ।।10।।
सातभूमि वाहणतणी, निविड़ नालिनी पाति ।
वयरीना वाहण तणी, करे खोखरी खांति ।।11।।
सुभट सनूरा सहस दश, बड़ा बड़ा जूंझार ।
बेठा चिहुँ दिशि मोरचे, हाथ विविध हथियार ।।12।।
इंधण जल संबल ग्रही, बहु व्यापारी लोक ।
सोहे बेठा गोखड़े, नूर दिये धन रोक ।।13।।
हवे नांगर उपाड़वा, बड़ा जुंगनी जाम ।
नाल धड़ूकी नाल सवि, हुई धड़ो धड़ ताम ।।14।।
सवि वहाणना नांगरो, करे खराखर जोर ।
पण नांगर हाले नहीं, सबल मच्यो तव शोर ।।15।।
धवल सेठ झांको थयो, चिंता चित्त न माय ।
शीकोतर पूछण गयो, हवे किम करवुँ माय ।।16।।
शीकोतर कहे सेठ सुण, वहाण थंभ्या देवी ।
छांडे बत्रीश लक्षणों, पुरुष तणो बलि लेवी ।।17।।

ढाल

(राग : श्रेणिक मन अचरिज थयो)

धवल सेठ लई भेटणुं, आव्यो नरपति पाय रे ।
कहे एक नर मुजने दियो, जेम बलि बाकुल थाय रे ।।ध0 1।।
राय कहे नर ते दियो, सगो नहीं जस कोय रे ।
बलि करजो ग्रही तेहने, जे परदेशी होय रे ।।ध0 2।।
सेवक चिहुँ दिसे सेठना, फरे नयरमां जोता रे ।
कुंवर देखी सेठ ने, बात कहे समहोता रे ।।ध0 3।।
दीठो बत्रीश लक्षणो, पुरुष एक परदेशी रे ।
कहो तो झाली आणीये, शुद्धि न को तस लेशी रे ।।ध0 4।।

धवल कहे आणो इहां, म करो घड़ीय विलंब रे ।
बली देईने चालिये, वाहर नहीं तस बूंब रे ।।ध0 5।।
सुभट सहस दस सामटा, आवे कुंवरनी पासे रे ।
अभिमानी उद्धत पणे, कडुआ कथन प्रकाशे रे ।।ध0 6।।
उठ आव्युं तुज आउखुं, धवलधिंग तुज रूठो रे ।
बलि करशे तुजने हणी, म कर मान मन झूठो रे ।।ध0 7।।
बलि नवि थाए सिंहनो, मूरख हैये विमासे रे ।
धवल पशुनो बलि थशे, वचने कांई विरासो रे ।।ध0 8।।
वचन सुणी तस वांकड़ा, सेठ ने सुभट सुणावे रे ।
सेठ विनवी राय ने, बहोलु कटक अणावे रे ।।ध0 9।।
एकलड़ो दोय सैन्य शुं, जब अतुली बल जूझेरे ।
चहुटा वच्चे धूंखल मच्यो, कायर हीयडा धूजे रे ।।ध0 10।।
वुंत तीर तलवारना, जे जे घाले घाय रे ।
कुंवर अंगे लागे नहीं, औषधीने महिमाय रे ।।ध0 11।।
वुंवर ताकी जेहने, मारे लाठी लोढे रे ।
लहबहता लांबा थई, ते पुहवी ए पोढे रे ।।ध0 12।।
भेंसा परे रण खेतमां, चिहुँ दिशि धिंगड़ धाय रे ।
जूड्या जोध वेला जिस्या, शिंगे विलगा जाय रे ।।ध0 13।।
मस्तक फूट्या केईना, पड्या केइना दांत रे ।
कोई मुखे लोही वमे, पडी सुभटोनी पांत रे ।।ध0 14।।
केई पेठा हाटमां, केई पोलमां पेठा रे ।
केई दांते तरणा देइ, गलिया थई ने बेठा रे ।।ध0 15।।
केई कहे कायर अमे, केई कहे अमे रांक रे ।
केई कहे मारो रखे, नथी अमारो वांक रे ।।ध0 16।।
केई कहे पेटारथी, अशरण अमे अनाथ रे ।
मुखे दिये दश आंगली, दे वली आड़ा हाथ रे ।।ध0 17।।
धवल सेठ ते देखता, आवी लाग्यो पाय रे ।
देव सरूपी दीसो तुमे, करो अमने सुपसाय रे ।।ध0 18।।
महिमा निधि महोटा तुमे, तुम बल शक्ति अगाध रे ।
अविनय कीध अजाणते, ते खमजो अपराध रे ।।ध0 19।।

अवधारो अम विनती, करो एक उपगार रे ।
थंभ्या प्रवहण तारवो, उतारो दुःख पार रे ।।ध0 20।।
वुंवर कहे ए कामनुं, शुं देशो मुज भाडुं रे ।
सेठ कहे लख सोनैया, खुतुं काढो गाडुं रे ।।ध0 21।।
सिद्धचक्र चित्तमां धरी, नवपद जाप न चूके रे ।
वड वाहण उपर चड़ी, सिंहनाद ते मूके रे ।।ध0 22।।
जे देवी दुश्मन हती, दुष्ट गई ते दूर रे ।
वाहण तर्या कारज सर्या, बाजे मंगल तूर रे ।।ध0 23।।
बीजे खण्डे ढाल ए, त्रीजी चित्तमां धरजो रे ।
विनय कहे वहाण परे, भवियण भवजल तरजो रे ।।ध0 24।।

चौथी ढाल

दोहा

ते देखी चिन्ते धवल, चट्यो चिंतामणि हाथ ।
बड़ो वखत जो मुज हुए, तो ए आवे साथ ।।1।।
एक लाख दीनार तस, देइ लाग्यो पाय ।
कर जोड़ीने विनवे, वात सुणो एक भाय ।।2।।
वर्ष प्रत्यो एकेकने, सहस देऊं दीनार ।
सेवा सारे सहस दश, जोध भला झुंझार ।।3।।
तुमने मुँह मांग्या दिऊं, आओ अमारी साथ ।
ए अवधारो विनती, अमने करो सनाथ ।।4।।
वुंवर कहे हूं एकलो, लेऊं सर्वनो मोल ।
ए सर्वेनुं एकलो, कारज करूं अडोल ।।5।।
ते धननुं लेखु करी, सेठ कहे कर जोड़ ।
अमे वणिक जन एकने, किम देवाए क्रोड़ ।।6।।
कुंवर कहे सेवक थई, दाम न झालूं हाथ ।
पण देशांतर देखवा, हुं आवुं तुम साथ ।।7।।
भाडुं लइ वहाणमां, दो मुज बेसण ठाम ।
मास प्रते दीनार शत, भाडुं परठिउं ताम ।।8।।

ढाल

(राग मल्हार, जी हो जाण्यु अवधि प्रयुंजने)

जी हो कुंवर बेठो गोखड़े जी हो महोटा वहाण मांहि ।
जी हो चिहुं दिशि जलधि तरंगना,
जी हो जोवे कोतुक त्यांहि, सुगुण नर, पेखो पुण्य प्रभाव ।
जी हो पुण्ये मनवांछित मले, जी० दूर टले दुःखदाव ।।सु० 1।।
जी हो सढ हंकार्या सामटा, जी हो पूर्या घण पवणेण ।
जी हो वड़ वेगे वहाण वहे, जी हो जोयण जाये खणेण ।।सु० 2।।
जी हो जल हस्ति पर्वत जिस्या, जी हो जलमां करे किल्लोल ।
जी हो मांहो मांहे झूझता, जी हो उछाले कल्लोल ।।सु० 3।।
जी हो मगर मत्स मोटा फिरे, जी हो सुसुमार केई कोड़ी ।
जी हो नक्र चक्र दीसे घणा, जी हो करता दोड़ा दोड़ी ।। सु० 4।।
जी हो इम जाता कहे पंजरी, जी हो आज पवन अनुकूल ।
जी हो जल इंधण जो जोईये, जी हो आव्युं बब्बर कूल ।।सु० 5।।
जी हो तस बंदर मांहि उतरी, जी हो इंधण लिये लोक ।
जी हो धवल सेठ कांठे रह्या, जी हो साथे सुभटना थोक ।।सु06।।
जी हो कोलाहल ते सांभली, जी हो आव्या अति सपराण ।
जी हो दाणी बब्बर रायना, जी हो मांगे बब्बर दाण ।।सु० 7।।
जी हो सेठ सुभटने गौरवे, जी हो दाण न दिये अबूझ ।
जी हो तव तिहां लाग्युं तेहने, जी हो मांहो मांहे झूझ ।।सु० 8।।
जी हो सेठ तणे सुभटे हण्या, जी हो दाणी नाठा रे जाय ।
जी हो सैन्य सबल तव सज करी, जी हो आव्यो बब्बर राय ।।सु० 9।।
जी हो राज तेज न शक्या सही, जी हो दीधी सुभटे रे पूंठ ।
जी हो मार पडी तव नासतां, जी हो बाण भरी भरी मूठ ।।सु० 10।।
जी हो बांध्युं झाली जीवतो, जी हो रूंख सरीखो सेठ ।
जी हो बांह बेहु ऊँची करी, जी हो मस्तक कीधुं हेठ ।।सु० 11।।
जी हो रखवाला मुकी तिहां, जी हो वलियो बब्बर राय ।
जी हो तव बोलावे सेठने, जी हो कुंवर करिय पसाय ।।सु० 12।।
जी हो सुभट सवे तुम किहां गया, जो हो बांध्या बांह मरोड़ ।
जी हो एवडुं दुःख न देखता, जी हो जो देता मुज कोड ।।सु० 13।।

जी हो सेठ कहे तुमे का दियो, जी हो दाधा उपर लूण ।
जी हो पड्या पछी पाटू किसी, जी हो हणे मुवाने कूण ।।सु0 14।।
जी हो कहे कुंवर वेरी गह्यां, जी हो जो वालुं ए वित्त ।
जी हो तो मुजने देज्यो किश्यु, जी हो भाखो थिर करी चित्त ।।सु0 15।।
जी हो सेठ कहे सुण साहिबा, जी हो ए मुज कारज साध ।
जी हो वहेंची वहाण पांचशे, जी हो लेजो आधो आध ।।सु0 16।।
जी हो बोल बंध साखी तणो, जी हो कुंवर पाड़ी तंत ।
जी हो धनुष तीर तरकस ग्रही, जी हो चाल्यो तेज अनंत ।।सु0 17।।
जी हो जई बब्बर बोलावियो, जी हो वल पाछो वडवीर .
जी हो शस्त्रसेन भुजबल तणो, जी हो नाद उतारूं नीर ।।सु0 18।।
जी हो तुज सरीखो जे प्राहुणो, जी हो पहोंतो अम घर आय ।
जी हो सुखड़ली मुज हाथनी, जी हो चाख्या विण किम जाय ।।सु0 19।।
जी हो महाकाल जूए फरी, जी हो दीठो एक जुवान ।
जी हो झाझानी परे झूझतो, जी हो लक्षण रुप निधान ।।सु0 20।।
जी हो तू सुन्दर सोहामणो, जी हो दीसे यौवन वेश ।
जी हो विण खूटे मरवा भणी, जी हो कांई करे उद्देश ।।सु0 21।।
जी हो कुंवर कहे संग्राम मां, जी हो वचन किश्यो व्यापार ।
जी हो जोधे जोध मल्या जिहां, जी हो तिहां शस्त्रे व्यवहार ।।सु0 22।।
जी हो महाकाल कोप्यो तिसे, जी हो हलकारे निज सेन ।
जी हो मुके शस्त्र झड़ो झड़े, जी हो राता रोष रसेन ।।सु0 23।।
जी हो वूठा तीखा तीरना, जी हो गोलीना केइ लाख ।
जी हो पण अंगे कुंवर तणे, जी हो लागे नहीं सराख ।।सु0 24।।
जी हो आकर्षी जे जे दिशे, जी हो कुंवर मूके बाण ।
जी हो सम काले दस बीस ना, जी हो तिहां छंडावे प्राण ।।सु0 25।।
जी हो सैन्य सकल महाकालनु, जी हो भागी गयो दह वट्ट ।
जी हो नृप एकाकी कुंवरे, जी हो बाध्यो बंध निधट्ट ।।सु0 26।।
जी हो बांधीने निज साथमां, जी हो पासे आण्यो जाम ।
जी हो बंधन छोड्या सेठना, जी हो रक्षक नाठा ताम ।।सु0 27।।
जी हो खड़ग लई महाकालने, जी हो मारण धायो रे सेठ ।
जी हो कहे कुंवर बेसी रहो, जी हो बल दीठो तुम ठेठ ।।सु0 28।।

जी हो बंधन बब्बर रायना, जी हो छोड़ावे तेणी वार ।
जी हो भूषण वस्त्र पहेरामणी, जी हो करे घणो सत्कार ।।सु0 29।।
जी हो सुभट जिके नाठा हता, जी हो ते आव्या सहु कोय ।
जी हो भांजे तस आजीविका, सेठ कोप करी सोय ।।सु0 30।।
जी हो कुंवरे ते सवि राखिया, जी हो दीधी तेहने वृत्ति ।
जी हो वहाण अढीसे माहरां, जी हो साचवजो एक चित्त ।।सु0 31।।
जी हो जे पण बब्बर रायनो, जी हो नाठो हतो परिवार ।
जी हो तेहने पण तेड़ी करी, जी हो आदर दिये अपार ।।सु0 32 ।।
जी हो चोथी ढाल एणी परे, जी हो बीजे खण्डे होय ।
जी हो विनय कहे फल पुण्यना, जी हो पुण्य करो सहु कोय ।।सु0 33।।

पांचमी ढाल

दोहा

महाकाल श्रीपालनुं, देखी भुजबल तेज ।
चित्त चमक्यो इम विनवे, हियडे आणी हेज ।।1।।
मुज मंदिर पावन करो, महेर करी महाराज ।
प्रगट्यां पूरव भव कर्या, पुण्य अमारां आज ।।2।।
तुम सरीखा सुपुरुष तणां, अम दर्शन दुर्लभ ।
जिम मरुधरना लोक ने, सुर-तरु कुसुम सुरभ ।।3।।
वोलावा विण एकलो, चाली न शके दिन ।
धवल सेठ तव विनवे, इणी परे थई आधीन ।।4।।
प्रभु तुमने वंछे सहु, देखी पुण्य पडूर ।
पण विलंब थाए घणुं, रत्न द्वीप छे दूर ।।5।।
वुंवर कहे नर रायनुं, दाखिण केम छंडाय ।
तिणे नयरी जोवा भणी, कुंवर कियो पसाय ।।6।।
हाट सज्यां हीरा गले, घर घर तोरण माल ।
चहुटे चहुटे चोकमां, नाटक गीत रसाल ।।7।।
पूग्ल बिछाया पूग्टरा, पंथ करी छटकाव ।
गज तुरंग शणगारिया, सोवन रूपे साव ।।8।।

पांचवीं ढाल

(राग : सिन्धूडी-चित्रोडा राजा रे)

विनती अवधारे रे, पुरमांहे पधारे रे, महोत वधारे बब्बर रायनुं रे ।
कुंवर बड़भागी रे, देखी सोभागी रे, जोवा रढ़ लागी, पगपग लोकने रे।।1।।

घर तेड़ी आव्या रे, साजन मन भाव्या रे, सोवन मंडाव्या आसन बेसणां रे ।
मिठाई मेवा रे पकवान कलेवा रे, भगति करे सेवा, बब्बर बहु परे रे ।।2।।

भोजन घृत गोल रे, उपर तंबोल रे, केसर रंग रोल करे वली छांटणा रे ।
सवि साजन साखे रे, मुखे मधुरूं भाखे रे, अंतर नवि राखे कांई रे प्रेममां रे ।।3।।

दिये कन्यादान रे, देई बहुमान रे, परणी अम मान वधारो वंशनो रे ।
तव कुंवर भाखे रे, कुल जाण्यां पाखे रे, किम चित्तनी साखे दीजे दीकरी रे ।।4।।

कहे नृप अवतंस रे, छानो नहीं हंस रे, जाण्यो तुम उत्तम वंश गुणे करी रे ।
जाणे सहु कोई रे, जे नजरे जोई रे, हीरो नवि होइ विण वेरागरे रे ।।5।।

महोत्सव मंडावे रे, साजन सहु आवे रे, धवल गवरावे मंगल नरवरु रे ।
रूपे जिसी मेना रे, गुण पार न जेना रे, मदनसेना परणावी इणी परे रे ।।6।।

मणि माणिक कोड़ी रे, मुक्ता फल जोड़ी रे, नरपति कर जोड़ी दिये दायजो रे ।
परे परे पहिरावे रे, मणि भूषण भावे रे, पार न आवे जस गुण बोलतां रे ।।7।।

नाटक नव दीधां रे, तिहां पात्र प्रसिद्धां रे, जाणे ए लीधां मोले सरग थी रे ।
बहु दासी दास रे, सेवक सुविलास रे, दीधा उल्लासे सेवा कारणे रे ।।8।।

रस भर दिन केता रे, तिहां रहे सुख वेता रे, दान याचक ने देता बहु परे रे ।
अमने वोलावो रे, हवे वार न लावो रे, कहे कुंवर जावो अम-देशांतरे रे ।।9।।

नृप मन दुःख आणे रे, केम राखुं पराणे रे, घर इम जाणे न वसे पाहुणा रे ।
पुत्री जे जाइ रे, ते नेट पराई रे, करे सजाई हवे वोलाववा रे ।।10।।

एक जुंग अलंभ रे, जे देखी अचंभ रे, चोसठ कुवा थंभे सुन्दर सोहतुं रे ।
कारीगरे घड़ियारें, मणि माणिक जडिया रे, थंभ ते अड़िया जइ गयणांगणे रे ।।11।।

सोवन चित्राम रे, चित्रित अभिराम रे, देखिये ठाम ठाम तिहां गोखड़ा रे ।
धज मोटा झलके रे मणि तोरण चलके रे, ढ़लके चामर चिहुँ दिशे रे ।।12।।

भूइ सातमीए रे, तिहां चढ़ी विशमीए रे, बेसीने रमिये सोवन सोगठे रे ।
बहु छंदे छाजे रे, बाजा घणां बाजे रे, वहाण गाजे रह्युं समुद्रमां रे ।।13।।

पूरे ते रतने रे, राजा बहु जतने रे, सासर वासो मन मोटो करे रे ।
वोलावी बेटी रे, हियड़ा भरी भरी भेटी रे, शीख गुण पेटी दीधी बहु परे रे ।।14।।

साजन सोहाव्या रे, मिलणा बहु लाव्या रे कांठे सवि आव्या आंसू पाड़ता रे।
वर वहु वोलाव्या रे, मावितर दुःख पाव्या रे, तूर बजड़ाव्या हवे प्रयाणनां रे ॥15॥
नांगर उपड़ाव्या रे, सढ़ दोर चढाव्या रे, वहाण चलाव्या वेगे खलासिये रे।
नित नाटक थावे रे, गुणिजन गुण गावे रे, वर वहू सोहावे बेहू गोखड़े रे ॥16॥
मन चिंते सेठ रे, में कीधी वेठ रे, सायर ठेठ फल्यो जुओ एहने रे।
जे खाली हाथे रे, आव्यो मुझ साथे रे, आज ते आथें संपूरण थयो रे ॥17॥
जल इंधण माटे रे, आव्या इणे वाटे रे, परण्यो रण साटे जुओ सुंदरी रे।
लखमी मुझ आधी रे, इणे मुहियां लाधी रे, दोलत वाधी देखो पलकमां रे ॥18॥
कीम मांगु भाडुं रे, खत पत्र देखाडुं रे, देशे के आडुं अवलुं बोलशे रे।
कुंवर ते जाणी रे, मुख मोटी वाणी रे, भाडुं तस आणी आपे दश गणुं रे ॥19॥
पाम्या अनुकरमे रे, नरभव जिनधरमे रे, वहाण रयणदिवे खेमे सहु रे।
नागर जल मेल्या रे, सढडोर संकेल्या रे, हलवे हलवे लोक सहु त्यां उतर्या रे ॥20॥
बीजे इम खण्डे रे, जुओ पुण्य अखंडे रे, एकण पिंडे उपार्जन करी रे।
कुंवरश्रीपाल रे, लह्या भोग रसाल रे, पांचवीं ढाल इसी विनये कही रे ॥21॥

छट्ठी ढाल

दोहा

दाण वलावी वस्तुनां, भरी अनेक वखार।
व्यापारी व्यापारनां, उद्यम करे अपार ॥1॥
लाल किनायत जरकसी, चंदरवा चोसाल।
ऊँचा तंबु ताणिया, पंचरंग पटशाल ॥2॥
सोवन पट मंडप तले, रयण हिंडोला खाट।
तिहां बेठा कुंवर जुए, रस भर नव रस नाट ॥3॥
धवलसेठ आवी कहे, वस्तु मूल्य बहू आज।
ते वेचावो कां नहीं, भर्या अढीसो जहाज ॥4॥
कुंवर पभणे सेठ ने, घड़ो वस्तुना दाम।
अवर वस्तु विणजो वली, करो अमारुं काम ॥5॥
काम भलाव्युं अम भले, हरख्यो दुष्ट किराड।
आरत ध्याने जिम पड्यो, पामी दूध बिलाड ॥6॥
इण अवसर आव्यो तिहां, अवल एक असवार।
सुगुण सुरूप सुवेष जस, आप समो परिवार ॥7॥

वुंवर तेडी आदरे, बेसाडचो निज पास ।
अद्भुत नाटक देखतां, ते पाम्यो उल्लास ।।8।।
हवे नाटक पूरो थये, पूछे वुंवर तास ।
कुण कारण कुण ठामथी, पाउ धार्या अम पास ।।9।।

ढाल

(राग : झांझरिया मुनिवर धन धन तुम अवतार)

तेह पुरुष हवे वीनवेजी, रत्नद्वीप ए सुरंग ।
रतनसानु पर्वत इहां जी, वलयाकार उत्तंग ।।
प्रभु ! चित्त धरीने, अवधारो मुज वात ।।1।।
रतनसंचया तिहां वसे जी, नयरी पर्वत मांह ।
कनककेतु राजा तिहां जी, विद्याधर नरनाह ।।प्रभु0 ।।2।।
रतन जिसी रलियामणिजी, रतनमाला तस नार ।
सुरसुन्दर सोहमणाजी, नंदन छे तस चार ।।प्रभु0 ।।3।।
ते उपर एक इच्छतां जी, पुत्री हुई गुणधाम ।
रूपकला रति आगली जी, मदनमंजूषा नाम ।।प्रभु0 ।।4।।
पर्वत शिर सोहामणीजी, तिहां एक जिन प्रासाद ।
राय पिताए करावियोजी, मेरूसुं मंडे वाद ।।प्रभु0 ।।5।।
सोवनमय सोहमणा जी, तिहां रिसहेसर देव ।
कनककेतु राजा तिहांजी, अहनिश सारे सेव ।।प्रभु0 ।।6।।
भक्ते भली पूजा करे जी, राजकुंवरी त्रण काल ।
अगर उखेवे गुण स्तवेजी, गावे गीत रसाल ।।प्रभु0 ।।7।।
एक दिन जिन आंगी रचीजी, कुंवरीए अति चंग ।
कनकपत्र करी कोरणीजी, बिच बिच रतन सुरंग ।।प्रभु0 ।।8।।
आव्यो राय जुहारवाजी, देखी सुता विज्ञान ।
मन चिंते धन मुज धुआजी, चउसठ कला निधान ।।प्रभु0 ।।9।।
ए सरीखो जो वर मिलेजी, तो मुज मन सुख थाय ।
साची सोवन मुद्रड़ीजी, काच तिहां न जढाय ।।प्रभु0 ।।10।।
एम उभो सूने मनेजी चिंतातुर नृप होय ।
इण अवसर अचरिज थयोजी, ते सुणजो सहुकोय ।।प्रभु0 ।।11।।

औसरती पाछी पगेजी, जिन मुख जोती सार ।
आवी गंभारा बाहिरे जी, जब ते राजकुमारी ।।प्रभु0 ।।12।।
ताम गंभारा तेहनाजी, देवाणा दोय बार ।
हलाव्या हाले नहींजी, सरके नहीं लगार ।।प्रभु0 ।।13।।
राजवुंवरी इम चिंतवेजी, मन आणी विषवाद ।
मैं कीधी आशातनाजी, कोईक धरी प्रमाद ।।प्रभु0 ।।14।।
धिक् मुज जिन जोवा तणोजी, अपनो एह अन्तराय ।
दोष सयल मुज सांसहोजी, स्वामी करी सुपसाय ।।प्रभु0 ।।15।।
दादा दरिसण दीजियेजी, ए दुःख मे न खमाय ।
छोरु होय कछोरुओजी, छेह न दाखे माय ।।प्रभु0 ।।16।।
राय कहे वत्स सांभलो जी, दोष नहीं तुझ एह ।
दोष इहां छे माहरो जी, आणी तुझ पर नेह ।।प्रभु0 ।।17।।
वरनी चिंता चिंतवी जी, जिणहर मांही जेण ।
ते लागी आशातना जी, बार देवाणा तेण ।।प्रभु0 ।।18।।
जिनवर तो रुषे नहीं जी, वीतराग सुप्रसिद्ध ।
पण एक कोईक अधिष्ठायके जी, ए मुज शिक्षा दीध ।।प्रभु0 ।।19।।
ए कवाड़ रिण उघड़े जी, जाऊँ नहीं आवास ।
सपरिवार नृपने तिहांजी, त्रण हुआ उपवास ।।प्रभु0 ।।20।।
त्रीजे दिन निशि पाछली जी, वाणी हुई आकाश ।
दोष नथी इहां कोई नो जी, कांइ करे विषाद ।।प्रभु0 ।।21।।
जेहनी नजरे देखतां जी, उघड़शे ए बार ।
मदनमंजूषा तणो थशे जी, तेहज नर भरतार ।।प्रभु0 ।।22।।
ऋषभदेवनी किंकरी जी, हूं चक्केसरी देवी ।
एक मास मांहे हवे जी, आवुं वरने लेवी ।।प्रभु0 ।।23।।
सुणी तेह हरख्या सहुजी, राय ने अति आणंद ।
प्रेमे कीधा पारणा जी, दूर गया दुःख दंद ।।प्रभु0 ।।24।।
दिन गणतां ते माससमां जी, ओछो छे दिन एक ।
तिणे जुए सहु वाटड़ी जी, करे विकल्प अनेक ।।प्रभु0 ।।25।।
पुत्र सेठ जिनदेव नो जी, हुं श्रावक जिनदास ।
प्रवहण आव्या सांभली जी, आव्यो इहां उल्लास ।।प्रभु0 ।।26।।

सुणी नाद नाटक तणोजी, देखण आव्यो जाम ।
मनमोहन प्रभु तुम तणोजी, दरिसण दीदुं ताम।।प्रभु0 ।।27।।
जाणु देवी चक्केसरी जी, तुमे आण्यो अम पास ।
जिणहर बार उघाडतांजी, फलशे सहुनी आश ।।प्रभु0 ।।28।।
पूज्य पधारो देहरे जी, जुहारो श्री जगदीश ।
उघडशे ते बारणां जी, जाणु विसवा वीश ।।प्रभु0 ।।29।।
बीजे खण्डे इणी परेजी, सुणतां छट्ठी ढाल ।
विनय कहे श्रोता घरे जी, होजो मंगल माल ।।प्रभु0 ।।30।।

सातवीं ढाल

दोहे

तव हरखे कुंवर भणे, धवलसेठ ने तेडी ।
जईये देव जुहारवा, आवो दुर्मति फेड़ी ।।1।।
सेठ कहे जिनवर नमी, नवरा तमे निचिंत ।
विण उपराजे जेहनी, पहोंचे मननी खंत ।।2।।
अमने जमवानो नहीं, घड़ी एक परवार ।
सीरामण वालु जीमण, करिये एकज वार ।।3।।
हवे कुंवर जावा तिहां, जव थाए असवार ।
हरख्यो हेषारव करे, तेजी ताम तुखार ।।4।।
साथे लई जिनदास ने, अवल अवर परिवार ।
अनुक्रमे आव्या कुंवर, ऋषभदेव दरबार ।।5।।
एकेकको आवो जई, सहु गंभारा पास ।
कुंवर पछी पधारशे, इम बोले जिनदास ।।6।।
जिम निर्णय करी जाणिये, बार उघारण हार ।
गंभारे आव्या जई, सहु को करे जुहार ।।7।।
हवे कुंवर करी धोतिया, मुख बांधी मुखकोश ।
जिणहर मांहे संचरे, मन आणी संतोष ।।8।।

ढाल

(राग : मल्हार)

कुंवर गंभारो नजरे देखतांजी, बेहु उघडिया बार रे ।
देव कुसुम वरसे तिहाँजी, हुवो जय जयकार रे ।।कुं0 ।।1।।

रायने गई तुरंत वधामणीजी, आज सफल सुविहाण रे ।
देवी दियो वर इहाँ आवियोजी, तेजे झलामण भाण रे ।।कुं0 ।।2।।
सोवन भूषण लाख वधामणीजी, देई पंचाग पसाय रे ।
सकल सज्जन जन परवर्योजी, देहरे आवे नरराय रे ।।कुं0 ।।3।।
दीठो कुंवर जिन पूजतोजी, केशर कुसुम घनसार रे ।
चैत्यवंदन चित्त उल्लसेजी, स्तवन कहे इम सार रे ।।कुं0 ।।4।।
दीठो नंदन नाभिनरिंदनो रे, देवनो देव दयाल रे ।
आज महोदय में लह्योजी, पाप गया पायाल रे ।।कुं0 ।।5।।
देव पूजीने कुंवर आवियाजी, रंग मंडप मांहि जाम रे ।
राय सज्जन ने परवर्याजी, बेठा करिय प्रणाम रे ।।कुं0 ।।6।।
जिनवर बार उघाडतां जी, अचरिज कीधी तुमे वात रे ।
देव स्वरूपी दीसो आपणांजी, वंश प्रकाशो कुल जात रे ।।कुं0 ।।7।।
न कहे उत्तम नाम ते आपणुं जी, नविकरे आप रे आप वखाण रे ।
उत्तर न दीधो तेणे रायने जी, कुंवर सयल गुण जाण रे ।।कुं0 ।।8।।
देखो अचंभी इणे अवसरे जी, हुओ गयणे उद्योत रे ।
ऊँचे वदने जोवे तब सहु जी, ए कुण प्रकटी ज्योत रे ।।कुं0 ।।9।।
विद्याचरण मुनि आवियाजी, देव घणां तस साथ रे ।
जइ गंभारे जिन वांदिया जी, थुण्या श्री जगन्नाथ रे ।।कुं0 ।।10।।
देव रचित वर आसने जी, बेठा तिहां मुनिराय रे ।
दिये मधुर ध्वनि देशना जी, भविक श्रवण सुखदाय रे ।।कुं0 ।।11।।
नवपद महिमा तिहाँ वरणवेजी, सेवो भविक सिद्धचक्र रे ।
इह भव पर भव लहिये एहथी जी, लीला लहेर अथक रे ।।कुं0 ।।12।।
दुःख दोहग सवि उपशमे जी, पग पग पामे ऋद्धि रसाल रे ।
ए नवपद आराधतांजी, जिम जग कुंवर श्रीपाल रे ।।कुं0 ।।13।।
प्रेमे सयल पूछे परषदाजी, ते कुण वुंवर श्रीपाल रे ।
मुनिवर तब धुर थी कहे जी, तेहनुं चरित्र रसाल रे ।।कुं0 ।।14।।
ते तुम पुण्ये इहां आवियोजी, उघाड्या चैत्य दुवार रे ।
तेह सुणीने नृप हरखियोजी, हरख्यो सवि परिवार रे ।।कुं0 ।।15।।
एम कही ने मुनिवर उतपत्याजी, गयण मारग ते जाय रे ।
उभा थई ऊँचे मुखेजी, वंदे सहु तस पाय रे ।।कुं0 ।।16।।

ढाल सुणी इम सातमीजी, खंड बीजानी एह रे ।
विनय कहे सिद्धचक्रनीजी, भक्ति करो गुण गेह रे ।कुं0 ।।17।।

आठवीं ढाल

दोहा

बेठा जिणहर बारणे, मुख मंडप सहु कोय ।
कुंवर निरखी रायनुं, हैडुं हरखित होय ।।1।।
धन रिसहेसर कल्पतरु, धन चक्केसरी देवी ।
जास पसाये मुज फल्यां, मनोवांछित तत खेवी ।।2।।
तिलक वधावी कुंवर ने, देई श्रीफल पान ।
सज्जन साथे प्रेम करी, दीधुं कन्या दान ।।3।।
श्रीफल फोफल सयण ने, देई घणां तंबोल ।
तिलक करीने छांटणा, कीधा केशर घोल ।।4।।
निज डेरे कुंवर गया, मंदिर पहोता राय ।
बेहु ठामे विवाहनां, घणां महोत्सव थाय ।।5।।
वड़ी वडारण दे वड़ी, पापड़ घणा वणाय ।
केलविये पकवान बहु, मंगल धवल गवाय ।।6।।
वाघा सीवे नव नवा, दरजी बेटा बार ।
जड़िया मणि माणेक जड़े, घाट घड़े सोनार ।।7।।
राये मंडाव्यो मांडवो, सोवन मणिमय थंभ ।
थंभ थंभ मणि पूतली, करती नाटारंभ ।।8।।
तोरण चिहुं दिशि बारणे, नील रयण मय पान ।
झूमे मोती झूमका, जाणे सरग विमान ।।9।।
पंच वरण ने चंद्रवे, दीपे मोती दाम ।
मानु तारा मंडले, आवी कियो विशराम ।।10।।
चौरी चिहुं पखें चीतरी, सोवन माणिक कुंभ ।
फूल माल अति फूटरी, महके सबल सुरंभ ।।11।।

ढाल

(राग : खंभायती करडो तिहां कोटवाल)

हवे श्रीपालकुमार, विधि पूर्वक मज्जन करे जी ।
पहेरे सवि श्रृंगार, तिलक निलाड़े शोभा धरे जी ।।1।।

सिर सुणालो खूंप, मणि-माणेक मोती जड्यो जी ।
हसे हीराने तेज, जाणे हुं नृप शिर चड्यो जी ।।2।।
काने कुण्डल दोय, हार हैये सोहे नवलखो जी ।
जड्या कंदोरे रतन, बांहे बाजुबंद बेरखां जी ।।3।।
सोवन वींटी वेढ, दश आंगुलीये सोहियेजी ।
मुख तंबोल सुरंग, नर नारी मन मोहिये जी ।।4।।
कर धरी श्रीफळ पान, वरघोडे जब संचर्या जी ।
सांबेला श्रीकार, सहस गमे तव परवर्या जी ।।5।।
बाजे ढोल निशान, शरणाई भुंगल घणी जी ।
रथ बेसी सय बद्ध, गाये मंगल जानड़ी जी ।।6।।
साव सोनेरी साज, हयवर हीसे नाचतां जी ।
शिर सिंदूर सोहंत, दीसे मयगल माचतां जी ।।17।।
चहुँटे चहुँटे लोक, जुवे महोत्सव नवनवे जी ।
इम मोटे मंडाण, मोहन आव्या मांडवे जी ।।8।।
पोखी आण्या मांहि, सासुए उलट घणे जी ।
आणी चोरी मांहि, हर्ष घणो कन्या तणे जी ।।9।।
कर मेलावो कीध, वेद पाठ बांभण भणे जी ।
सोहव गाये गीत, बीहुं पखें आप आपणे जी ।।10।।
करी अग्निनी साख, मंगल चारे वरतिया जी ।
फेरा फरतां ताम, दान नरिंदे बहु दिया जी ।।11।।
वेल्लवियो वंसार, सरस सुगंधे महमहे जी ।
कवल ठवे मुख मांहि, मांहोमांहि मन गहगहे जी ।।12।।
मदनमंजूषा नारी, प्रेमे परणी इणीपरे जी ।
बिहुँ नारी सुं भोगे, सुख विलसे ससुरा घरे जी ।।13।।
ऋषभदेव प्रासाद, उच्छव पूजा नित करेजी ।
गीत गान बहु दान, वित्त घणुं तिहां वावरे जी ।।14।।
चैत्र मासे सुख बास, आंबिल ओली आदरे जी ।
सिद्धचक्रनी सार, लाखिणी पूजा करे जी ।।15।।
वरतावी अमारि, अड्ढाई महोत्सव घणो जी ।
सफल करे अवतार, लाहो लिये लखमी तणो जी ।।16।।

एक दिन जिनहर मांहि, कुंवर बेठा मली जी ।
नृत्य करावे सार, जिनवर आगल मन रलीजी ।।17।।
इण अवसर कोटवाल, आवी अरज करे इसी जी ।
दाण चोरीये चोर, पकड्यो तस आज्ञा किसी जी ।।18।।
वली भांगी तुम आण, बल बहुलुं इणे आदर्युं जी ।
अमे देखाड्या हाथ, तव मोढुं झांखुं कर्युं जी ।।19।।
राजा बोले ताम, दंड चोरनो दीजिये जी ।
जिणहर मां ए वात, कहे कुंवर किम कीजिये जी ।।20।।
नजरे करी हजुर, पहेलां कीजे पारिखुँ जी ।
पछे देइजे दंड, सहुये न होय सारिखुँ जी ।।21।।
आण्यो जिसे हजुर, धवलसेठ तव जाणियो जी ।
कहे कुंवर महाराज, चोर भलो तुम आणियो जी ।।22।।
ए मुज पिता समान, हुं ए साथे आवियो जी ।
कोटि ध्वज सिरदार, वहाण इहां घणां लावियो जी ।।23।।
छोड़ावी तस बंध, तेड़ी पासे बेसाडियो जी ।
गुनहा करावी माफ, रायने पाय लगाडियो जी ।।24।।
रांय कहे अपराध, एहनो परमेश्वरे सह्यो जी ।
अजरामर थयो एह, जेह तुमे बाह्यें ग्रह्यो जी ।।25।।
एक दिन आवी सेठ, कुंवर ने इम विनवे जी ।
वेची वहाणनी वस्तु, पूर्या करियाणे नवे जी ।।26।।
तमे अमने इण ठाण, कुशल क्षेमे जिम आणिया जी ।
तिम पहोंचाड़ो देश, तो सुख पामे प्राणिया जी ।।27।।
कुंवरे जणाव्यो भाव, निज देश जावा तणो जी ।
तव नृप ने चित्त मांहि, असंतोष उपज्यो घणो जी ।।28।।
मांग्या भूषण जेह, ते उपर ममता किसी जी ।
परदेशी सुं प्रीत, दुःखदायी होये इसी जी ।।29।।
सासु ससरा दोय, करजोड़ी आदर घणे जी ।
आंसू पडते धार, कुंवर ने इणी परे भणे जी ।।30।।
मदनमंजूषा एह, अम उत्संगे उछरी जी ।
जन्म थकी सुख मांहि, आज लगी लीला करी जी ।।31।।

वहाली जीवित प्राय, तुम हाथे थापण ठवि जी ।
एहने म देशो छेह, जो पण परणो नव नवी जी ।।32।।
पुत्री ने कहे वत्स, क्षमा घणी मन आणजो जी ।
सदा लगी भरतार, देव करीने जाणजो जी ।।33।।
सासु ससरा जेठ, लज्जा विनय म चूकशो जी ।
परिहरजो परमाद, कुल मरजादा म मूकशो जी ।।34।।
कंत पहेली जाग, जागतां नहीं उंघिये जी ।
शोक बहिन करी जाण, वचन न तास उल्लंघिये जी ।।35।।
कंत सयल परिवार, जम्या पछी भोजन करे जी ।
दास दासी जन ढोर, खबर सहुनी चित्त धरी जी ।।36।।
जिन-पूजा गुरुभक्ति, पतिव्रता व्रत पालजो जी ।
शी कहिये तुम सीख, इम अम कुल अजवालजो जी ।।37।।
रयण ऋद्धि परिवार, देई नृप वहाण भर्या जी ।
मयणमंजूषा धूअ, वोलावा सहु निसर्या जी ।।38।।
कांठे सयल कुटम्ब, हैडा भर भेटी मल्या जी ।
तस मुख वारो वार, जोतां ने रोतां पाछा वल्या जी ।।39।।
वुंवर वहाण मांहि, बेठा साथे दोय बहू जी ।
काम अने रति प्रीति, मलिया एम जाणे सहु जी ।।40।।
बीजे खण्डे एह, ढाल थुणी इम आटमी जी ।
विनय कहे सिद्धचक्रनी, भक्ति करो सुर-तरु समी ।।41।।

चौपाई

खण्ड खण्ड मधुरो जिम खण्ड, श्री श्रीपाल-चरित्र अखण्ड ।
कीर्तिविजय वाचक थी लह्यो, बीजो खण्ड इम विनये कह्यो ।।

तीसरा खंड

पहली ढाल

दोहा

सिद्धचक्रना गुण घणा, केहतां नावे पार ।
वांछित पूरे दुःख हरे, वंदुं वारंवार ।।1।।

सभा कहे श्रीपाल ने, समुद्र उतारो पार ।
अमने उत्कंठा घणी, सुणावा म करो वार ।।2।।

कहे कवियण आगल कथा, मीठी अमीय समान ।
निद्रा विकथा परिहरी, सुणजो देई कान ।।3।।

धवल सेठ झूरे घणुं, देखी वुंवरनी ऋद्ध ।
एकलड़ो आव्यो हतो, है है देव शुं कीध ।।4।।

वहाण अढी से माहरा, लीधा सिर मां देई ।
जोऊँ घर किम जाय छे, ऋद्धि एवडी लई ।।5।।

एक जीव छे एहने, नाखुं जलधि मझार ।
पंछी सयल ए माहरुं, रमणी ऋद्धि परिवार ।।6।।

देखी न शके पारकी, ऋद्धि हिये जस खार ।
सायर थाए दुबलो, गाजंते जल धार ।।7।।

वरषाले वनराइ जे, सवि नव पल्लव थाय ।
जाय जवासानुं किस्युं, जे उभो सुकाय ।।8।।

जे किरतारे बड़ा किया, तेशुं केही रीस ।
दांत पड्या गिरि पाड़ता, कुंजर पाड़े चीस ।।9।।

ढाल

(राग मल्हार, शीतल तरुवर छांय के)

देखी कामिनी दोय के, कामे व्यापियो रे, के कामे व्यापियो रे ।
वली घणो धन लोभ के, वाध्यो पापीयो रे, के वाध्यो पापियो रे ।।
लागा दोय पिशाच के पीडे अति घणुं रे, के पीड़े अति घणुं रे ।
धवलसेठनुं चित्त के, वश नहीं आपणु रे, के वश नहीं आपणु रे ।।1।।

उदक न भावे अन्न के, नावे नींद्रड़ी रे, के नावे नींद्रड़ी रे ।
उल्लस वालस थाय के, जक नहीं एक घड़ी रे, के जक नहीं एक घड़ी रे ।।
मुख मूके निसास के, दिन दिन दूबलो रे, के दिन दूबलो रे ।
रात दिवस नवि जाय के, मन बहु आमलो रे, के मन बहु आमलो रे।।2।।

चार मल्या तस मित्र के, पूछे प्रेम सूं रे, के पूछे प्रेम सूं रे ।
कोण थयो तुम रोग के, झूरो एम शुं रे, के झूरो एम शुं रे ।।
के चिन्ता उत्पन्न के, कोईक आकरी रे, के कोईक आकरी रे ।
भाई थाओ धीर के, मन काटुं करी रे, के मन काटुं करी रे ।।3।।

दुःख कहो अम तास के, उपाय विचारिये रे, के उपाय विचारिये रे ।
चिंता सायर एह के, पार उतारिये रे, के पार उतारिये रे ।।
लज्जा मूकी सेठ के, कहे मन चिंतव्युं रे, के कहे मन चिंतव्युं रे ।
तव चारे कहे मित्र के, धिक् ए शुं लव्युं रे, के धिक् ए शुं लव्युं रे ।।4।।

परनारी के पाप के, भवो भव बूड़ीए रे, के भवो भव बूड़ीए रे ।
किम सुरतरुनो डाल के, कुहाड़े झुड़िये रे, के कुहाड़े झुड़िये रे ।।
पर उपगारी एह के, जिस्यो जग केवड़ो रे, के जिस्यो जग केवड़ो रे ।
दीठो प्रत्यक्ष जास के, महिमा एवड़ो रे, के महिमा एवड़ो रे ।।5।।

छोडाव्या दोय वार के, इणे तुम जीवतां रे, के इणे तुम जीवतां रे ।
उगरिया धन माल जो, पासे ए हता रे, जो पासे ए हता रे ।।
तार्या थंभ्या वहाण, इणे आगले रे, इणे आगले रे ।
एहवो पुरुष रतन्न के, जग बीजो नहीं रे, के जग बीजो नहीं रे ।।6।।

करी एह शुं द्रोह के, विरुओ ताकशो रे, के विरुओ ताकशो रे ।
तो अण खूटे किहा इक के, अंते थाकशो रे, के अंते थाकशो रे ।।
भाग्य लाधी ऋद्धि, इणे जो एवड़ी रे, कइणे जो एवड़ी रे ।
पडीं कांई दुर्बुद्धि, गले तुम जेवड़ी गले रे, के तुम जेवड़ी रे ।।7।।

त्रण मित्र हित सीख ते, एम देई गया रे, ते एम देई गया रे ।
चोथा कहे सुण सेठ के, वैरी ए थया रे, के वैरी ए थया रे ।।
गणिये पाप न पुण्य के, लक्ष्मी जोड़िये रे, के लक्ष्मी जोड़िये रे ।
लक्ष्मी होय जो गांठ, तो पाप बिछोड़िये रे, के पाप बिछोड़िये रे ।।8।।

उपराजि इणे ऋद्धि ते, काजे ताहरे रे, ते काजे ताहरे रे ।
धणी थाये भाग्यवन्त, कमाई कोई मरे रे, कमाई कोई मरे रे ।
करशुं इश्यो उपाय, के ए दोलत घणी रे, के ए दोलत घणी रे ।
अने सुन्दरी दोय, के थाशे तुम तणी रे, के थाशे तुम तणी रे ।।9।।

जिम पामे विश्वास, मलो तिम एह शुं रे, मलो तिम एह शुं रे ।
मुखे मीठी करो वात, के जाणे नेह शुं रे, के जाणे नेह शुं रे ।।
मीठी लागी वात, के सेठ ने मन वसी रे, के सेठ ने मन वसी रे ।
आव्यो फीटण काल, के मति तेहनी खसी रे, के मति तेहनी खसी रे ।।10।।

दूध ज देखे डांग, न देखे मांकड़ो रे, के न देखे मांकड़ो रे ।
मस्तक लागे चोट, थाए तव रांकड़ो रे, के थाए तव रांकड़ो रे ।।
रोगी करे कुपथ्य, ते लागे मीठडुं रे, के ते लागे मीठडुं रे ।
वेदना व्यापे जाम ते, थाए अनीठडुं रे, के ते थाए अनीठडुं रे ।।11।।

बेसे कुंवर पास, के विनय घणो करे रे, के विनय घणो करे रे ।
तूं प्रभु जीव आधार, के मुख इम उच्चरे रे, के मुख इम उच्चरे रे ।।
पूरव पुण्य पसाय, के तुम सेवा मली रे, के तुम सेवा मली रे ।
पग पग तुम पसाय, के अम आशा फली रे, के अम आशा फली रे ।।12।।

जोतां तुम मुख चंद, के सवि सुख लेखिये रे, के सवि सुख लेखिये रे ।
राखे तुमारी वात, के विरुई देखिये रे, के विरुई देखिये रे ।।
कुंवर सघली वात ते, साची सद्दहे रे, रे, के साची सद्दहेरे ।।
दुर्जननी गति भांति, ते सज्जन नवि लहे रे, ते सज्जन नवि लहे रे ।।13।।

जे वहाणनी कोर, के माचा बांधिया रे, के माचा बांधिया रे ।
दोर तणे अवलम्ब, ते उपर सांधिया रे, ते उपर सांधिया रे ।।
तिहाँ बेसीने सेठ, ते कुंवरने कहे रे, ते कुंवरने कहे रे ।
देखी अचरिज एह, के मुज मन गह गहे रे, के मुज मन गह गहे रे ।।14।।

मगर एक मुख आठ, के दीसे जुजुआ रे, के दीसे जुजुआ रे ।
एवा रूप सरूप, न होशे न हुआ रे, न होशे न हुआ रे ।।
जोवा इच्छो साहेब, के तो आवो वही रे, के तो आवो वही रे ।
पछी काढशो वांक, जे कांई कह्युं नहीं रे, जे कांई कह्युं नहीं रे ।।15।।

कुंवर मांचे ताम, चड्यो उतावलो रे, के चड्यो उतावलो रे ।
उतरीयो नव शेठ, धरी मन आमलो रे, के धरी मन आमलो रे ।।
बिहुं मित्रे बिहुं पासे, दोर ते कापिया रे, के दोर ते कापिया रे ।
करतां एहवा कर्म, न बीहे पापीया रे, न बीहे पापीया रे ।।16।।

पडतां सायरमांही, के नवपद मन धरे, के नवपद मन धरे रे ।
सिद्धचक्र प्रत्यक्ष के, सवि संकट हरे रे, के सवि संकट हरे रे ।।
मगर मत्स्य नी पूंठ के, बेठो थिर थई रे, के बेठो थिर थई रे ।
वहाण तणी परे तेह के, पहोंतो तट जई रे, के पहोंतो तट जई रे ।।17।।

औषधी ने महिमांय, के जल भय निस्तरे रे, जल भय निस्तरे रे ।
सिद्धचक्र परभावे, के सुर सानिध्य करे रे, के सुर सानिध्य करे रे ।।
त्रीजे खण्डे ढाल, ए पहिली मन धरो रे, ए पहिली मन धरो रे ।
विनय कहे भवि लोक, के भव सायर तरो रे, के भव सायर तरो रे ।।18।।

दूसरी ढाल

दोहा

कोकण कांठे उतर्यो, पहोंतो एक वन मांहि ।
थाक्यो निद्रा अनुसरे, चंपक तरुवर छांहि ।।1।।
सदा लगे जे जागतो, धर्म मित्र समरथ ।
कुंवर नी रक्षा करे, दूर करे अनरथ ।।2।।
दावानल जलधर हुए, सर्प हुए पूलमाल ।
पुण्यवंत प्राणी लहे, पग पग ऋद्धि रसाल ।।3।।
वेर कष्टमां पाड़वा, दुर्जन कोड़ी उपाय ।
पुण्यवंतने ते सवे, सुखनां कारण थाय ।।4।।
थल प्रकटे जलनिधि विचे, नयर रान मां थाय ।
विष अमृत थई परिणमे, पूरव पुण्य पसाय ।।5।।

ढाल

(राग : मधु मादन, जिन ताहरी वाणी अमिय रसाल,
सुणतां मुझ आशा फली जीरे जी)

जीरे महारे, जाग्यो कुंवर जाम, तव देखे दोलत मली, जी रे जी ।
जीरे महारे, सुभट भला सें बद्ध, करे विनंती मन रली, जी रे जी ।।1।।

जीरे महारे, स्वामी अरज अम एक, अवधारो आदर करी, जी रे जी ।
जीरे महारे, नयरी ठाणा नाम, वसे जिसी अलकापुरी, जी रे जी ।।2।।

जीरे महारे, तिहां राजा वसुपाल, राज्य करे नर राजियो, जी रे जी ।
जीरे महारे, कोकण देश नरिंद, जस महिमा जग गाजियो, जी रे जी ।।3।।

जीरे महारे, एक दिन सभा मझार, निमित्तियो एक आवियो, जी रे जी ।
जीरे महारे, प्रश्न पूछवा हेत, राय तणे मन भावियो, जी रे जी ।।4।।

जीरे महारे, कहो जोशी अम धूअ, मदनमंजरी गुणवती, जी रे जी ।
जीरे महारे, तेह तणो भरतार, कोण थाशे भलो भूपति, जी रे जी ।।5।।

जीरे महारे, किम मलशे अम एह, शे अहिनाणे जाणशुं, जी रे जी ।
जीरे माहरे, कोण दिवस कोण मास, घर तेडीने आवशुं, जी रे जी ।।6।।

जीरे माहरे, सकल कहो ए वात, जो तुम विद्या छे खरी, जी रे जी ।
जीरे माहरे, शास्त्र तणे परमाण, अम चिन्ता टालो परी, जी रे जी ।।7।।

जीरे माहरे, जोशी कहे निमित्त, शास्त्रतणे पूरण बले, जी रे जी ।
जीरे माहरे, पूरव गत आम्नाय, ध्रुव तणी परे नवि चले, जी रे जी ।।8।।

जीरे माहरे, सुदी दसम वैशाख, अढी पहोर दिन अतिक्रमे, जी रे जी ।
जीरे मांहरे, रयणायर उपकंठ, जई जोज्यो तेणे समे, जी रे जी ।।9।।

जीरे माहरे, नवनंदन वन मांहि, शयन कीध चंपातले, जी रे जी ।
जीरे माहरे, जो जो तस अहिनाण, तरुवर छांया नवि चले, जी रे जी ।।10।।

जीरे माहरे, राय न मानी वात, एम कहे ए शुं केवली, जी रे जी ।
जीरे माहरे, अमने मोकलिया आंहि, आज वात ते सवि मली, जी रे जी ।।11।।

जीरे माहारे, प्रभु थाओ असवार, अश्व रत्न आगल धर्यो जी रे जी ।
जीरे माहरे, कुंवर चाल्यो ताम, बहु असवारे परवर्यो, जी रे जी ।।12।।

जीरे माहरे, आगल जई असवार, नृपने दिये वधामणी, जी रे जी ।
जीरे माहरे, सन्मुख आव्यो राय, साथे लई दोलत घणी, जी रे जी ।।13।।

जीरे माहरे, शणगार्या गजराज, अंबाड़ी अंबर अड़ी, जी रे जी ।
जीरे माहरे, घण्टा घूंघर माल, पाखरमणि रयणे जड़ी, जी रे जी ।।14।।

जीरे माहरे, सोवन जड़ित पलाण, तेजाला तेजी घणां, जी रे जी ।
जीरे माहरे, जोतरिया केकाण, रथ जाणे दिनकर तणां, जी रे जी ।।15।।

जीरे माहरे, बेहड़ा धरी शीश, सामी आवे बालिका, जी रे जी ।
जीरे माहरे, मोती सोवन फूल, वधावे गुण मालिका, जी रे जी ।।16।।

जीरे माहरे, राज वाहन चक डोल, रयण सुखासन पालखी, जी रे जी ।
जीरे माहरे, सांबेला सें बद्ध, केतु पताका नवलखी, जी रे जी ।।17।।

जीरे माहरे, वाजे बहु वाजिंत्र, नाचे पात्र ते पग पगे, जी रे जी ।
जीरे माहरे, शणगार्या घर हाट, पाट सावटू जगमगे, जी रे जी ।।18।।

जीरे माहरे, एम महोटे मंडाण, पेसारो महोच्छव करे, जी रे जी ।
जीरे माहरे, राय सकल गुण जाण, कुंवर पधराव्या घरे, जी रे जी ।।19।।

जीरे माहरे, जोशी तेड़ाव्या जाण, लगन तेहिज दिन आवियुं, जी रे जी ।
जीरे माहरे, देई बहुला दान, राय लगन वधावियुं, जी रे जी ।।20।।

जीरे माहरे, तेहिज रयणी मांहि, धूआ मदनमंजरी तणो जी रे जी ।
जीरे माहरे, राये कर्यो विवाह, साजन मन उलट घणो, जी रे जी ।।21।।

जीरे माहरे, गज रथ घणां भंडार, दीधां कर मेलावड़े, जी रे जी ।
जीरे माहरे, जइये महिमा देखी, सिद्धचक्रने भामणे, जी रे जी ।।22।।

जीरे माहरे, पडिया सायर मांहि, एकज दुःखनी यामिनी, जी रे जी ।
जीरे माहरे, बीजी रात्रे जोय, इणी परे परण्या कामिनी, जी रे जी ।।23।।

जीरे माहरे, नृपे दीधां आवास, त्यां सुख भर लीला करे, जी रे जी ।
जीरे माहरे, मदनमंजरी सुं नेह, दिन दिन अधिकेरो धरे, जी रे जी ।।24।।

जीरे माहरे, नृप दिये बहु अधिकार, कुंवर न वंछे ते हीये जी रे जी ।
जीरे माहरे, थयो थगीधर आप, पान तणा बीड़ा दिये, जी रे जी ।।25।।

जीरे माहरे, जे कोई अति गुणवंत, मान दिये नृप जेहने, जी रे जी ।
जीरे माहरे, तेहने बीड़ा पान, देवरावे कुंवर कने, जी रे जी ।।26।।

जीरे माहरे, त्रीजे खण्डे एह, बीजी ढाल सोहामणी, जी रे जी ।
जीरे माहरे, सिद्धचक्र गुण श्रेणि, भवि सुणजो विनये भणी, जी रे जी ।।27।।

तीसरी ढाल

दोहा

वहाण मांही जे हुई, हवे सुणो ते वात ।
धवल नाम कालो हिये, हरख्यो साते धात ।।1।।

मन चिंते मुज भाग्य थी, महोटी थई समाधि ।
पलक मांही विण औषधी, विरुई गई विराधि ।।2।।

ए धन ने दोय सुन्दरी, एह सहेली साथ ।
परमेसर मुज पाधरूं, दीधुं हाथो हाथ ।।3।।

वूड़ी माया वेल्लवी, दोय रीझवुं नार ।
हाथे लई मन एहनां, सफल करूं संसार ।।4।।

दुःखिया थईये तस दुःखे, वयण सुकोमल रीति ।
अनुक्रमे वश कीजिये, न होये पराणे प्रीति ।।5।।

धूर्त इम चित्तमां धरी, करे अनेक विलाप ।
मुखे रुवे हयड़े हसे, पाप विगोवे आप ।।6।।

ढाल

(राग : रहो रहो रथ फेरवो रे)

जीव जीवन प्रभु किहां गया रे, दियो दरिसण एक वार रे ।
सुगुणा साहेब तुम बिना रे, अमने कोण आधार रे ।। जीव0 ।।1।।

सिर वूटे पीटे हियुं रे, मूवे महोटी पोक रे ।
हाल कल्लोल थयो थयो रे, भेला हुआं घणां लोक रे ।।जी0 ।।2।।

कौतुक जोवाने चड्यो रे, मांये वहाणनी कोर रे ।
है है देव ! ए शुं थयुं रे, त्रूटयां जूना दोर रे ।।जी0 ।।3।।

जब बेहु मयणा तणे रे, काने पड़ी ते वात रे ।
धसक पड्यो तव धासको रे, जाणे वज्रनो घात रे ।।जी0 ।।4।।

थई अचेतन धरणी ढले रे, करती कोड़ विखास रे ।
सही सहेली सवि मली रे, नाके जुए निसास रे ।।जी0 ।।5।।

छांट्या चंदन कम कमा रे, कर्या विंझाणे वाय रे ।
चेत वल्यु तव आरड़े रे, हैये दुःख न माय रे ।।जी0 ।।6।।

कांई प्राण पाछा वल्या रे, जो रुठो किरतार रे ।
पीयरिया अलगा रह्या रे, मुकी गया भरतार रे ।।जी0 ।।7।।

माय बापने परिहरी रे, कीधो जेहनो साथ रे ।
फिट हियड़ा फूटे नहीं रे, विछड्यो ते प्राणनाथ रे ।।जी0 ।।8।।

धवल सेठ तिहां आवियो रे, कूड़ा करे विलाप रे ।
शुं कीजे ए दैवने रे, किश्या दीजे शराप रे जीव0 ।।9।।

दुःख सह्यां माणस कह्यां रे, भूख सह्यां जिम ढोर रे ।
धीरज आप न मूकिये रे, करिये हृदय कठोर रे जीव0 ।।10।।

मणि माणिक मोति खरा रे, जेहनां गुण अभिराम रे ।
जिहां जाशे तिहां तेहने रे, मुकुट हार शिर ठाम रे जीव0 ।।11।।

व्यंग वचन एहवुं सुणी रे, मन चिंते ते दोय रे ।
एह करम एणे कर्युं रे, अवर न वैरी कोय रे जीव0 ।।12।।

धन रमणीनी लालचे रे, कीधो स्वामी द्रोह रे ।
मीठो थइ आवी मले रे, खांड गलेफियु लोह रे जीव0 ।।13।।

शील हवे किम राखशुं रे, ए करशे उपघात रे ।
करीये कंत तणी परे रे, सायर झंपापात रे जीव0 ।।14।।

सम काले बेहु जणी रे, मन धारी ए वात रे ।
इण अवसर तिहाँ उपनो रे, अति विसमो उत्पात रे जीव0 ।।15।।

हाल कल्लोल सायर थयो रे, वाये उभड़ वाय रे ।
घोर घना घन गाजियो रे, बिजली चिहुं दिशि थाय रे जीव0 ।।16।।

कुवा थंभा कड़ कड़ रे, उड़ी जाय सढ डोर रे ।
हाथे हाथ सूझे नहीं रे, थयुं अंधारु घोर रे जीव0 ।।17।।

डम डम डमरू डमकते रे, मुख मुके हुंकार रे ।
खेत्रपाल तिहां आवियां रे, हाथे लई तलवार रे जीव0 ।।18।।

वीर बावन्ने परवर्या रे, हाथे विविध हथियार रे ।
छड़ीदार दोड़े घणां रे, चार चतुर पड़िहार रे जीव0 ।।19।।

बेठी मृगपति वाहने रे, चक्र भमाड़े हाथ रे ।
चक्केसरी पाउ धारिया रे, देव देवी बहु साथ रे जीव0 ।।20।।

हण्यो कुबुद्धि मित्र ने रे, जिणे वांकी मति दीध रे ।
क्षेत्रपाले तव ते ग्रही रे, खण्ड खण्ड तनु कीध रे जीव0 ।।21।।

ते देखी बीहतो घणुं रे, मयणा शरण पइट्ठ रे ।
सेठ पशु परे धूजतो रे, देवी चक्केसरी दीट्ठ रे जीव0 ।।22।।

जा मुक्यो जीवतो रे, सती शरण सुपसाय रे ।
अंते जईश जीवथी रे, जो मन धरीश अन्याय रे जीव0 ॥23॥

मयणाने चक्केसरी रे, बोलावे धरी प्रेम रे ।
वत्स कांई चिंता करो रे, तुम पियुने छे खेम रे जीव0 ॥24॥

मास एक मांही सही रे, तमने मलशे तेह रे ।
राज रमणी ऋद्धि भोगवे रे, नरपति ससरा गेह रे जीव0 ॥25॥

बेहुने कंठे ठवी रे, फूल अमुलख माल रे ।
कहे देवी महिमा सुणो रे, एहनो अतिही रसाल रे जीव0 ॥26॥

शीयल जतन एहथी थशे रे, दिन प्रते सरस सुगंध रे ।
जेह कुमीटे जोयशे रे, ते नर थासे अंध रे जीव0 ॥27॥

एम कही चक्केसरी रे, उतपतिया आकाश रे ।
सयल देवशुं परिवर्या रे, पहोतां निज आवास रे जीव0 ॥28॥

तव उतपात सवि टल्या रे, वहाण चाल्या जाय रे ।
चिंता भागी सर्वनी रे, वाया वाय सुवाय रे जीव0 ॥29॥

मित्र त्रण कहे सेठने रे, दीठी प्रत्यक्ष वात रे ।
चोथो मित्र अधर्मथी रे, पाम्यो वेगे घात रे जीव0 ॥30॥

ते माटे ए चित्त थी रे, काढ़ी मूको साल रे ।
पर लखमी परनारने रे, हवे म पड़शो ख्याल रे जीव0 ॥31॥

पण दुर्बुद्धि सेठनुं रे, चित्त न आव्युं ठाय रे ।
जइवि कपूरे वासिये रे, लसण दुर्गंध न जाय रे जीव0 ॥32॥

हैड़ा करने वधामणां रे, अंश न दुःख धरेश रे ।
जो बच्यो छुं जीवतो रे, तो सवि काज करेश रे ॥33॥ जीव0

जो मुज भाग्ये एवडुं रे, विघ्न थयुं विसराल रे ।
तो मलशे ए सुंदरी रे, समशे विरहनी झाल रे जीव0 ॥34॥

एम चिंती दुती मुखे रे, कहावे हुं तुम दास रे ।
नेक नजर करी निरखिये रे, मानो मुज अरदास रे जीव0 ॥35॥

दूतीने काढी परी रे, देई गलहत्थो कंठ रे ।
तो ही निर्लज्ज लाज्यो नहीं रे, वली थयो उल्लंठ रे जीव0 ॥36॥

वेश करी नारी तणों रे, आव्यो मयणा पास रे ।
दृष्टि गई थयो आंधलो रे, काढ्यो करी उपहास रे जीव0 ।।37।।

उतरियो उत्तर तटे रे, वहाण चलावो वेग रे ।
पण सन्मुख होय वायरो रे, सेठ करे उद्वेग रे जीव0 ।।38।।

अवर देश जावा तणों रे, कीधो कोडी उपाय रे ।
पण वहाण कोंकण तटे रे, आणी मूक्या वाय रे जीव0 ।।39।।

त्रीजे खण्डे इम कही रे, विनये त्रीजी ढाल रे ।
सिद्धचक्र गुण बोलतां रे, लहिये सुख विशाल रे जीव0 ।।40।।

चौथी ढाल

दोहा

कोकण कांठे नागर्या, सवि वहाण तिण वार ।
नृपने मलवा उतर्या, सेठ लई परिवार ।।1।।

आव्यो नरपति पाउले, मिलणा करे रसाल ।
बेठो पासे रायने, तव दीठो श्रीपाल ।।2।।

देखी कुंवर दीपतो, हैये उपनी हूँफ ।
लोचन मींचाई गया, रवि देखी जिम घूक ।।3।।

नृप हाथे श्रीपाल ने, देवरावे तंबोल ।
सेठ भली परे ओलखी, चित्त थयुं डमडोल ।।4।।

है, है ! अटारडो, एह किश्यो उतपात ।
नाखी हती खारे जले, प्रकट थई ते वात ।।5।।

सभा विसरजी राय जब, पहोतो महेल मझार ।
तब सेठे पडिहारने, पूछ्यो एह विचार ।।6।।

एह थगीधर कोण छे, नवलो दीसे कोय ।
तेह कहे गति एहनी, सुणतां अचरिज होय ।।7।।

वनमां सुतो जागवी, घर आण्यो भली भांत ।
परणावी निज कुंवरी, पूछी न नात के जात ।।8।।

सेठ सुणी रीझ्यो घणो, चित्त मां करे विचार ।
एहने कष्ट पाड़वा, भलुं देखाड्युं बार ।।9।।

देई कलंक कुजातिनुं, पाडुं एहनी लाज ।
राजा हणशे एहने, सहजे सरशे काज ।।10।।

जो पण जे जे में कर्या, एहने दुःख ना हेत ।
ते ते सवि निष्फल थया, मुज अभिलाष समेत ।।11।।

तो पण वाज न आविये, मन करिये अनुकूल ।
उद्यमथी सुख संपजे, उद्यम सुखनुं मूल ।।12।।

वैरीने वाध्यो घणो, ए मुज खणशे कंद ।
प्रथमज हणवा एहने, करवो कोईक फंद ।।13।।

इम चिंतवतो ते गयो, उतारे आवास ।
पलक एक तस जक नहीं, मुख मूके निसास ।।14।।

ढाल

(राग : भिक्षा ने ममता थका हो लाल)

इण अवसर एक डूंबनुं रे, आव्युं टोलुं एक रे चतुरनर,
उभा ओलगड़ी करे हो लाला । तेड़ी महत्तर डूंबने रे,
सेठ कहे अविवेक रे, चतुरनर, काज अमारुं एक करो हो लाल ।।1।।

एह जमाई रायनो रे, तेहने कहो तुमे डूंब रे चतुरनर,
लाख सोनैया तुमने आपशुं हो लाल ।
धाई ने वलगो गले रे, सघलुं मली कुटुंब रे चतुरनर,
पाड़ घणों अमे मानशुं हो लाल ।।2।।

डूंब कहे स्वामी सुणो रे, करश्यां ए तुम काम रे चतुरनर,
मुजरो माहरो मानजो हो लाल ।
केलवशुं कूड़ी कला रे, लेशुं परद्या दाम रे चतुरनर,
साबासी देजो पछे हो लाला ।।3।।

डूंब मली सवि ते गया रे, रायतणे दरबारे, चतुर नर, गाये उभा घूमता हो लाल ।
राग आलापे टेकशुं रे, रीझ्यो राय अपार रे, चतुर नर, मांगो कांई मुख इम कहे हो लाल ।।4।।

डूंब कहे अम दीजिये रे, मोहत वधारी दान रे चतुरनर,
मोहत अमे वांछुं घणुं हो लाल ।
तव नरपति कुंवर कने रे, देवरावे तस पान रे चतुरनर,
तेहनुं मोहत वधारवा हो लाल ।।5।।

पान देवा जब आवियो रे, कुंवर तेहनी पास रे चतुरनर,
हसित वदन जोतो हसी हो लाल ।
बड़ो डूंब विलगो गले रे, आणी मन उल्लास रे चतुरनर,
पुत्र आज भेट्यो भलो हो लाले ।।6।।

एहवे आवी डूंबड़ी रे, रोई लागी कंठ रे चतुरनर,
अंगो अंगे भेटती हो लाल ।
बहेन थई एक मली रे, आणी मन उत्कंठ रे चतुरनर,
वीरा जाऊं तुम भामणे हो लाल ।।7।।

एक कहे मुज माउलो रे, एक कहे भाणेज रे चतुरनर,
एवड़ा दिन तुमे किहां रह्या हो लाल ।
एक काकी एक फई थई रे, देखाड़े घणुं हेत रे चतुरनर,
वाट जोतां हता ताहरी हो लाल ।।8।।

डूंब कहे नर रायने रे, ए अम कुल आधार रे चतुरनर,
रीसाई चाल्यो हतो हो लाल ।
तुम पसाय भेलो थयो रे, सवि माहरो परिवार रे चतुरनर,
भाग्यां दु:ख विछोहनां हो लाल ।।9।।

राजा मन चिंते इस्युं रे, सुणी तेहनी वाच रे चतुरनर,
वात घणी विरुई थई हो लाल ।
एह कुटुंब सवि एहनुं रे, दीसे परतक्ख साचरे चतुरनर
धिक् मुज वंश विटालियों हो लाल ।।10।।

निमित्तियो तेड़ावियो रे, मे तुज वचन विश्वास रे चतुरनर,
पुत्री दीधी एहने हो लाल ।
किम मातंग कह्यो नहीं रे, ते दीधो गले पाश रे, चतुरनर,
निमित्तियुं वलतुं कहे हो लाल ।।11।।

मुज निमित्त झूठुं नहीं रे, सुणजो सांची वात रे चतुरनर,
ए बहु मातंग नो धणी हो लाल ।

राय अरथ समझे नही रे, कोप्यो चित्ते घात रे चतुरनर,
कुंवर निमित्तिया उपरे हो लाल ।।12।।

ते बेउ जणने मारवा रे, राये कीध विचार रे चतुरनर,
सुभट घणां तिहां सज्ज किया हो लाल ।
मदनमंजरी ते सुणी रे, आवी तिहाँ ते वार रे चतुरनर,
रायने इणी परे विनवे हो लाल ।।13।।

काज विचारी कीजिये रे, जिम नवि होय उपहास रे चतुरनर,
जग मां जश लहिये घणुं हो लाल ।
आचारे कुल जाणिये रे, जोईये हिये विमास रे चतुरनर,
दुर्बल कन्ना नावि होइये हो लाल ।।14।।

कुंवर ने नरपति कहे रे, प्रगट कहो तुम वंश रे चतुरनर,
जिण संसो दूर टले हो लाल ।
कहे कुंवर किम उच्चरे रे, उत्तम निज परशंस रे चतुरनर,
कामे कुल ओलखावशुं हो लाल ।।15।।

सैन्य तमारुं सज्ज करो रे, मुज कर दो तलवार रे चतुरनर,
तव मुज कुल प्रकट थशे हो लाल,
माथुं मुंडाव्या पछी रे, पूछे नक्षत्र वार रे चतुरनर,
ए उखाणो सांचव्यो हो लाल ।।16।।

अथवा प्रवहणमां अछे रे, दाय परणी मुज नार रे चतुरनर,
तेडी पूछो तेहने हो लाल ।
तेह कहेशे सवि माहरो रे, मूल थकी अधिकार रे चतुरनर,
इणी परे कीजे पारखुं हो लाल ।।17।।

तेहने तेडवा मोकल्या रे, राये निज परधान रे चतुरनर,
ते जइने तिहां विनवे हो लाल ।
तव मयणा मन हरखिया रे, पामी आदर मान रे चतुरनर,
सही वंशते तेडाविया हो लाल ।।18।।

बेसी रयण सुखासने रे, आव्यां राय हजूर रे चतुरनर,
भूपति मन हरखित थयुं हो लाल ।
नयणे नाह निहालतां रे, प्रकट्यो प्रेम अंकुर रे चतुरनर,
साचे झूठ नसाडियो हो लाल ।।19।।

विद्याधर पुत्री कहे रे, सघलो तस विरतंत रे,
विद्याधर मुनिवर कह्यो हो लाल । पापी सेठे नाखियो रे,
सायर मां अम कंत रे चतुरनर, वखते आज अमे लह्यो हो लाल ।।20।।

ते सुणतां जब ओलख्यो रे, तव हरख्यो मन राय रे चतुरनर,
पुत्र सगी भगिनी तणो हो लाल ।
अविचार्युं कीधुं हतुं रे, आव्यो सवि ठाय रे चतुरनर,
भोजन मांही घी ढल्युं हो लाल ।।21।।

नरपति पूछे डूंबने रे, कहो ए किस्यो विचार रे चतुरनर,
तव ते बोले वंपतो हो लाल ।
सेठे अमने विगोइया रे, लोभे थया खुवार रे चतुरनर,
वूरुडुं कपट अमे वेलव्युं हो लाल ।।22।।

तव राजा रीसे चड्यो रे, बांधी अणाव्यो सेठ रे चतुरनर,
डूंब सहित हणवा धर्यो हो लाल ।
तव कुंवर आड़ो वल्यो रे, छोडाव्यो ते सेठ रे चतुरनर,
उत्तम नर एम जाणीये हो लाल ।।23।।

निमित्तियो तव बोलियो रे, सांचु मुज निमित्त रे चतुरनर,
ए बहु मातंग नो धणी हो लाल ।
मातंग कहिये हाथिया रे, तेहनो प्रभु वड़ चित रे चतुरनर,
ए राजेसर-राजियो हो लाल ।।24।।

निमित्तियाने नृप दिये रे, दान अने बहुमान रे चतुरनर,
विद्यानिधि जग मां बड़ा हो लाल ।
कुंवर निज घर आविया रे, करतां नवपद ध्यान रे चतुरनर,
मयणा त्रणे एकठी मली हो लाल ।।25।।

वुंवर पुरवनी परे रे, पाले मननी प्रीत रे चतुरनर,
पासे राखे सेठने हो लाल ।
ते मनथी छंडे नहीं रे, दुर्जननी कुल रीत रे चतुरनर,
जे जेहवा ते तेहवा हो लाल ।।26।।

बेहु हाथ भूंइ पड्या रे, काज न एको सिद्ध रे चतुरनर,
सेठ इस्युं मन चिंतवे हो लाल ।

पी न शक्यो ढोली शकुं रे, एहवो निश्चय कीध रे चतुरनर,
एहने निज हाथे हणुं हो लाल ।।27।।

कुंवर पोढ्यो छे जिहां रे, सातमी भूइए आप रे चतुरनर,
लेई कटारी तिहां चड्यो हो लाल ।
पग लपट्यो हेठे पड्यो रे, आवी पहोतुं पाप रे चतुरनर,
मरी नरवेः गयो सातमी हो लाल ।।28।।

लोक प्रभाते तिहां मिल्यां रे, बोले धिक् धिक् वाण रे चतुरनर,
स्वामी द्रोही ए थयो हो लाल ।
जेह कुंवर ने चिंतव्युं रे, आप लह्युं निरवाण रे चतुरनर,
उग्र पाप तुरतज फले हो लाल ।।29।।

मृत कारज तेहनां करे रे, कुंवर मन धरे सोग रे चतुरनर,
गुण तेहना संभारतो हो लाल ।
सोवन घणुं तपाविये रे, अग्नितणे संयोग रे चतुरनर,
तोही रंग न पालटे हो लाल ।।30।।

माल पांच से वहाणनो रे, सवि संभाली लीध रे चतुरनर,
लखमीनुं लेखुं नहीं हो लाल ।
मित्र त्रण जे सेठना रे, ते अधिकारी कीध रे चतुरनर,
गुणनिधि उत्तम पद लहे हो लाल ।।31।।

इन्द्रतणां सुख भोगवे रे, तिहाँ कुंवर श्रीपाल रे चतुरनर,
मयणा त्रणे परिवर्यो हो लाल ।
त्रीजे खंडे इम कही रे, विनये चोथी ढाल रे चतुरनर,
सिद्धचक्र महिमा फल्यो हो लाल ।।32।।

पांचवी ढाल

दोहा

एक दिन रथवाड़ी चड्यो, रमवाने श्रीपाल ।
साथ बहु त्यां उतर्यो, दीठो ऋद्धि विशाल ।।1।।

सार्थवाह लई भेटणुं, आव्यो कुंवर पाय ।
तव तेहने पूछे इस्युं, कुंवर करी सुपसाय ।।2।।

कवण देशथी आवीया, किहां जावा तुम भाव ।
सार्थवाह तव वीनवे, कर जोड़ी सद्भाव ॥3॥

आव्या कांति नयरथी, कंबु दीव उद्देश्य ।
कुंवर कहे कोईक कहो, अचरिज दीठ विशेष ॥4॥

तेह कहे अचिरज सुणो, नयर एक अभिराम ।
कोश इहांथी चारसो, कुंडलपुर तस नाम ॥5॥

मकरकेतु राजा तिहाँ, कपूरतिलका कंत ।
दोय पुत्र उपर हुई, सुता तास गुणवंत ॥6॥

नामे ते गुणसुंदरी, रूपे रंभा समान ।
जगमां जस उपमा नहीं, चौसठ कला निधान ॥7॥

राग रागिनी रूप स्वर, ताल तंत्र वितान ।
वीणा तस ब्रह्मा सुणे, थिर करी आठे कान ॥8॥

शास्त्र सुभाषित काव्य रस, वीणा नाद विनोद ।
चतुर मले जो चतुर ने, तो उपजे परमोद ॥9॥

डहेरो गायतणे गले, खटके जेम कुक्कड्ड ।
मूरख सरखी गोठड़ी, पग पग हीयड़े हट्ट ॥10॥

जो रूठो गुणवंत ने, तो देजे दुःख पोठी ।
दैव न देजे एक तु, साथ गमारा गोठी ॥11॥

रसिया शुं वासो नहीं, ते रसिया एक ताल ।
झूरीने झाखर हुए, जिम विछड़ी तरु डाल ॥12॥

उक्ति युक्ति जाणे नहीं, सूझे नहीं जस सोज ।
इत उत जोई जंगली, जाणे आव्यो रोझ ॥13॥

रोझ तणुं मन रीझवी, न सके कोई सुजाण ।
नदी मांही निशदिन वसे, पलड़े नाहीं पाषाण ॥14॥

मरम न जाणे मांहिलो, चित्त नहीं इक ठोर ।
जिहां तिहां माथुं घालतो, फरे हरायुँ ढोर ॥15॥

वली चतुर शुं बोलतां, बोली इक दो बार ।
ते सहेली संसार मां, अवर एकज अवतार ॥16॥

रसियाने रसिया मिले, केलवतां गुण गोठ ।
हिये न माये रीझ रस, कहेणी नावे होठ ।।17।।

परख्या पाखे परणताँ, भुच्छ मिले भरतार ।
जाय जन्मारो झूरताँ, किश्युँ करे किरतार ।।18।।

तिण कारण ते कुंवरी, करे प्रतिज्ञा सार ।
वीणा वादे जीतशे, जे मुज ते भरतार ।।19।।

ढाल

(राग : थारा मारा मोहलां उपर मेह, झरुखे बीजली)

तेह प्रतिज्ञा वात, नयरमां घर घरे हो लाल, नयरमां० ।
पसरी लोक अनेक, बनावे परें परें हो लाल, बनावे० ।।
राजकुमार असंख्य ते, शीखण सज्ज थया हो लाल, शीखण० ।
लई वीणा साज ते, गुरु पासे गया हो लाल, ते गुरु० ।।1।।

त्रण ग्राम स्वर सात के, एकवीस मूर्छना हो लाल, के एक० ।
तान ओगणपचास, घणी विध घोलना हो लाल, घणी० ।।
विद्याचारण एक, सधावे शीखवे हो लाल, सधावे० ।
करे अभ्यास जुवान, ते उजम नवनवे हो लाल, उजम० ।।2।।

शास्त्र संगीत विचक्षण, देश विदेशनां हो लाल, देश० ।
करे सभा मांहे वाद, ते नाद विशेषनां हो लाल, ते नाद० ।।
मास मास प्रति होय, तिहां गुण पारिखां हो लाल, तिहां०
सुणताँ कुंवरी वीण, सवे पशु सारिखाँ हो लाल, सवे० ।।3।।

चहुटा माँहे वीण, बजावे वाणिया हो लाल, बजावे० ।
न करे कोई व्यापार, ते होंसी प्राणिया हो लाल, ते होंसी ।
इणी परे वर्ण अढार, घरो घर आँगणे हो लाल, घरो घर०
सघले मेडी माले, वीणा रण रण-झणे हो लाल, के वीणा० ।।4।।

गायो चारे गोवालीया, ते वीण वजाड़ताँ हो लाल, ते वीण० ।
राजकुंवरी विवाह, मनोरथ भावताँ हो लाल, मनोरथ० ।।
सूनाँ मूकी क्षेत्र, मिले बहु करसणी हो लाल, मिले० ।
सीखे वीण बजावण, होंस हिये घणी हो लाल, होंस० ।।5।।

तेह नयर मांही एहवुं, कौतुक थई रह्युं हो लाल, कोतुक० ।
दीठे वीण ते वात, न जाये पण कही हो लाल, न लाये० ॥
सुणी कुंवर ते वात, हिये रीझ्यो घणुं हो लाल, हियरे० ।
सारथवाहने सार, दीए वधामणुं हो लाल, दीये० ॥6॥

आव्यो निज आवास, कुंवर मन चिंतवे हो लाल, कुंवर० ।
नय रह्युं ते दूर, तो किम जास्युं हवे हो लाल, तो किम० ॥
देत विधाता पांख तो माणस रुअडां हो लाल, तो माणस० ।
फरी फरी कोतुक जोत, जुवे जिम सूअड़ां हो लाल, जुवे जिम० ॥7॥

सिद्धचक्र मुज एह मनोरथ पूरशे हो लाल, मनोरथ० ।
एहिज मुज आधार, विघन सवि चूरशे हो लाल, विघन० ॥
थिर करी मन वच काय, रह्या इक ध्यानसुँ हो लाल, रह्यो० ।
तन्मय तत्पर चित्त, थयुँ तस ज्ञान सुं हो लाल, थयुं० ॥8॥

ततखिण सोहम वासी, देव ते आवियो हो लाल, देव ते० ।
विमलेसर मणिहार, मनोहर लावियो हो लाल, मनोहर० ॥
थई घणो सुप्रसन्न, कुंवर कंठे ठवे हो लाल, कुंवर० ।
तेह तणो करी जोड़ी, महिमा वरणवे हो लाल, महिमा० ॥9॥

जेहवुँ वंछे रूप, ते थाए ततखीणे हो लाल, ते थाए० ।
ततखिण वांछित ठाम, जाये गयणांगणे हो लाल, जाये० ॥
आवे विण अभ्यास, कला जे चित्तधरे हो लाल, कला० ।
विषना विषम विकार, ते सघला संहरे हो लाल, ते सघला० ॥10॥

सिद्धचक्रनो सेवक, हुँ छुं देवता हो लाल, हुँ छुं० ।
केई उद्धरिया धीर, में एहने सेवतां हो लाल, एहने० ॥
सिद्धचक्रनी भक्ति, घणी मन धारजो हो लाल, घणी० ।
मुजने कोईक काम, पड़े संभारजो हो लाल, पड़े० ॥11॥

एम कहीने देव, ते निज थानक गयो हो लाल, ते निज० ।
कुंवर पड्यो सेज, निचिंतो मन थयो हो लाल, निचिंतो० ॥
जाग्यो जिसे प्रभात, तिसे मन चिंतवे हो लाल, तिसे० ।
कुण्डलपुर नयर मझार, जई बेसुं हवे हो लाल, जई० ॥12॥

नयण उघाड़ी जाम, विलोके आगले हो लाल, विलोके० ।
देखे उभो आप, नयरनी भागले हो लाल, नयरना० ।।
दीठा तिहां दरवाण, ते वीण बजावतां हो लाल, ते वीण० ।
राजकुंवरीना रूप, कला गुण गावतां हो लाल, कला० ।।13।।

चित्त मांही चिंती रूप, करे तिहां कूबडूं हो लाल, करे० ।
उभड़ शीश निलाड़, वदन जिस्युं तूंबडूं हो लाल, वदन० ।।
चूए चूंची आँख, दांत सवि सोखला हो लाल, दांत० ।
वांका लांबा होठ, रहे ते मोकला हो लाल, रहे० ।।14।।

चिहु दिशि बेठुं नाक, कान जिम ठीकरा हो लाल, कान० ।
पूंठ ऊँची अति खूंध, हिये बहु टेकरा हो लाल, हिये० ।।
कोट केड़ उर पेट, मिली गयां ढूंकड़ा हो लाल, मिली० ।
टूंकी साथल जंघ, हाथ पग टूंकड़ा हो लाल, हाथ० ।।15।।

टक टक टवतो पाय, नयर मांहि नीकल्यो हो लाल, नयर० ।
तेह निहाली लोक, खलक जोवा मिल्यो हो लाल, खलक० ।।
जिहां शीखे छे वीण-कला तिहाँ आवियो हो लाल, कला० ।
आव्या राजकुमार, मली बोलावियो हो लाल, मली० ।।16।।

आवो आवो जुहार, पधारो वामणा हो लाल, पधारो० ।
दीसा सुंदर रूप, घणुं सोहामणा हो लाल, घणुं० ।।
किहांथी पधार्या राज, कहो कुण कारणे लाल, कहो० ।
केहने देशो मोहत, जई घर बारणे हो लाल जई० ।।17।।

कुब्ज कहे अमे दूर, थकी आव्या अहो हो लाल, थकी० ।
हांसु करतां वात, तुम्हें सांची कही हो लाल, तुम्हें० ।।
वीणा गुरुनी पास, अमे पण साधशुं हो लाल, अमे० ।
करशे जो जगदीश, तो तुमथी वाधशुं हो लाल, तो० ।।18।।

विद्याचारज पास, जई इम विनवे हो लाल, जई० ।
वीणानो अभ्यास, करावो मुज हवे हो लाल, करावो० ।।
खड़ग अमूलिक एक, कर्युं तस भेटणुं लाल, कर्युं० ।
तव हरख्या गुरू महोत, दिये तस अति घणुं हो लाल, दिये० ।।19।।

वीणा एक अनूपम, दीधी तस करे हो लाल, दीधी० ।
देखाड़े स्वर नाद, ठेकाणां आदरे हो लाल, ठेकाणां ।।

त्रट त्रट तूटे तांत, गमा जाए खसी हो लाल, गमा ।
ते देखी विपरीत, सभा सघली हंसी हो लाल, सभा0 ।।20।।

हवे परीक्षा हेत, सभा महोटी मली हो लाल, सभा0 ।
चतुर संगीत विचक्षण, बेठा मन रली हो लाल, बेठा0 ।।
आवी राजकुमारी, कला गुण वरसती हो लाल, कला0 ।
वीणा पुस्तक हाथ, जे परतख सरसती हो लाल, जे पर0 ।।21।।

दरवानें दरबार, कुबज जब रोकीयो हो लाल, कुबज0 ।
दीधुं भूषण रत्न, पछे नवी टोकीयो हो लाल, पछे0 ।।
आव्या कुंवरी पास, इच्छा रूपी बड़ो हो लाल, इच्छा ।
कुंवरी देखे सरूप, बीजा सवि कुबड़ो हो लाल, बीजा0 ।।22।।

सा चिंते मुज एह, प्रतिज्ञा पूरशे हो लाल, प्रतिज्ञा0 ।
सकल जनम तो मानशुं, दुर्जन झूरशे हो लाल, दुर्जन0 ।।
जो एहथी नवि भांजशे, मननुं आंतरुं हो लाल, मननुं0 ।
करी प्रतिज्ञा वयर, वसाव्युं तो खरुं हो लाल, वसाव्युं0 ।।23।।

दाखे गुरु आदेशे, निज वीणा कला हो लाल, निज0 ।
जाम कुमार कुमार, सभा मद आकुला हो लाल, सभा0 ।।
ताम कुमारी दाखे, निज गुण चातुरी हो लाल, नि0 ।
लोके भाख्युं अंतर, ग्राम ने सुरपुरी हो लाल, ग्राम0 ।।24।।

कुंवरी कला आगे हुई, कुंवर तणी कला हो लाल, कुंवर0 ।
चंद्र कला रवि आगे, ते छाशने बाकुला हो लाल, ते छाश0 ।।
लोक प्रशंसा सांभली, वामन आवियो हो लाल, वामन0 ।
कहे कुण्डलपुर वासी, भलो जन भावियो हो लाल, भलो0 ।।25।।

कुंवरी संकीतेण वीणा, दिये तसु करे हो लाल, वीणा0 ।
कहे कुमार अशुद्ध छे, ए वीणा धुरें हो लाल, ए वीणा0 ।।
वीण सगर्भ ने दाधो, दण्ड गले ग्रह्युं हो लाल, दण्ड0 ।
तुंबड तेणे अशुद्धपणुं, में तस कह्युं हो लाल, पणुं0 ।।26।।

दाखी दोष समारी, वीण ते आलवे हो लाल, वीण0 ।
होई ग्रामनी मूर्छना, किंपि न को चले हो लाल, किंपि0 ।।
सूता लोकनां लेइ, मुकुट मुद्रामणी हो लाल, मुकुट0 ।
वस्त्राभरण लेइ करी, राशि ते अति घणी हो लाल, राशि0 ।।27।।

जाग्या लोक अछेरु, देखी एहवुं हो लाल, देखी0 ।
पूर्ण प्रतिज्ञा कुमारी, चित्त हरखित थयुं हो लाल, चित्त0 ।।
वीणानाद विनोद, ते रीझी खरी हो लाल के0 ते0,0 ।
कंठे ठवे वरमाल, तेहने कुंवरी हो लाल, के कुंवरी0 ।।28।।
वामन वरियो जाणी, नृपादिक दुःख धरे हो लाल, नृपादिक ।
ताम कुमार स्वभावनुं, रूप ते आदरे हो लाल, रूप0 ।।
शशि रजनी हर गौरी, हरि कमला जिश्यो हो लाल, हरि0 ।
योग्य मेलावो जाणी, सवि चित्त उल्लस्यो हो लाल, सवि0 ।।29।।
निज बेटी परणावी, राजा भली परे हो लाल, राजा0 ।
दिये हय गय धण, कंचण पूरे तस घरें हो लाल, पूरे0 ।।
पुण्य विशाल भुजाल, तिहां लीला करे हो लाल, तिहां0 ।
गुणसुंदरीनी साथ, श्रीपाल ते सुख वरे हो लाल, श्रीपाल0 ।।30।।
त्रीजे खंडे ढाल रसाल, ते पांचमी तो लाल, रसाल0 ।
पूरी ए अनुकूल सुजन, मन संक्रमी हो लाल, सुजन0 ।।
सिद्धचक्रगुण गातां, चित्त न कुण तणो हो लाल, चित्त0 ।
हरषे वरसे अमिय, ते विनय सुजश घणो हो लाल, विनय0 ।।31।।

(इस ढाल की रचना पूरी होने के पूर्व ही महोपाध्याय विनय विजयजी म. का कालधर्म हो गया था, बाकी रही रचना की पूर्ति महोपाध्याय श्रीमद् यशोविजयजी म. ने की थी ।)

छट्ठी ढाल

दोहा

पुण्यवंत जिहाँ पग धरे, तिहाँ आवे सवि ऋद्धि ।
तिहाँ अयोध्या राम जिहाँ, जिहाँ साहस तिहाँ सिद्धि ।।1।।
पुण्यवंत ने लक्ष्मीनो, इच्छा तणो विलंब ।
कोकिल चाहे कंठरव, दिये लुंब भर अंब ।।2।।
पुण्यवंत परिणति होय भली, पुण्ये सुगुण गरिट्ठ ।
पुण्ये अलिय विघन टले, पुण्ये मिले ते इट्ठ ।।3।।

ढाल

(राग : सुण सगुण सनेही रे साहिबा)

एक दिन एक परदेशियो, कहे कुंवर ने अद्भुत ठाम रे ।
सुणा जोयण त्रणसे उपरे, छे नयर कंचनपुर नाम रे ।
जुओ जुओ अचिरज अति भलुं ।।1।।

तिहाँ वज्रसेन छे राजियो, अरिकाल सबल करवाल रे ।
तस कंचनमाला छे कामिनी, मालती माला सुकमाल रे ।।जु0 ।।2।।

तेहने सुत चारनी उपरे, त्रैलोक्यसुंदरी नाम रे ।
पुत्री छे वेदनी उपरे, उपनिषद यथा-अभिराम रे ।।जु0 ।।3।।

रंभादिक जे रमणी करी, ते तो एक घडवा कर लेख रे ।
विधिने रचना बीजी तणी, एहनो जय जस उल्लेख रे ।।जु0 ।।4।।

रोमाग्र निरखे तेहने, ब्रह्मा द्वय अनुभव होय रे ।
स्मरण अद्वय पूरण दर्शने, तेहने तुल्य नहीं कोय रे ।।जु0 ।।5।।

नृपे तस वर सरिखो देखवा, मंडप स्वयंवर कीध रे ।
मूल मंडप थंभे पूतली, मणि कंचनमय सुप्रसिद्ध रे ।।जु0 ।।6।।

चिहुं पास विमाणावली समी, मंचातिमंचनी श्रेणी रे ।
गौरव कारण कण राशि जे, झीपीजे गिरिवर तेणी रे ।।जु0 ।।7।।

तिहाँ प्रथम पक्ष आषाढ़नी, बीजी छे वरण मुहूर्त रे ।
शुभ बीज ते काल छे, पुण्यवन्त ने हेतु आयत्त रे ।।जु0 ।।8।।

एम निसुणी सोवन सांकलुं, कुंवरे तस दीधुं ताव रे ।
घरे जई ते कुबजाकृति धरी, तिहां पहोंतो हार प्रभाव रे ।।जु0 ।।9।।

मंडपे पइसंतो वारियो, पोलियाने भूषण देई रे ।
तिहाँ पहोंचो मणिमय पूतली, पासे बेइठो सुख सेई रे ।।जु0 ।।10।।

खरदंता नाक ते नानडुं, होठ लांबा ऊँची पीठ रे ।
आँख पीली केश ते काबरा, रह्यो उभो मांडवा हेठ रे ।।जु0 ।।11।।

नृप पूछे केई सोभागिया, वली वागिया जागिया तेज रे ।
कहो कुण कारण तुमे आविया, कहे जिण कारण तुम हेज रे ।।जु0।।12।।

तव ते नरपति खड़ खड़ हसे, जुओ जुओ ए रूप निधान रे ।
एहने जे वरशे सुन्दरी, तेहनां काज सर्या वत्यो वान रे ।।जु0।।13।।

इण अवसरे नरपति कुंवरी, वर अंबर शिबिकारूढ़ रे ।
जाणिये चमकती बीजली, गिरि उपर जलधर गूढ़ रे ।।जु0 ।।14।।

मुत्ताफल हारे शोभती, वरमाला कर मांहे लेई रे ।
मूल मंडप आवी कुंवरने, सहसा सूची रूपी पलोई रे ।।जु0 ।।15।।

जे सहज स्वरूप विभावमां, देखे ते अनुभव योग रे ।
इण व्यतिकरें ते हरखित हुइ, कहे हुओ मुज इष्ट संयोग रे ।।जु0।।16।।

तस दृष्टि सराग विलोकतो, विचें विचें निज वामन रूप रे ।
दाखे ते कुमरा सुवत्लही, परि परि परखे करी चूंप रे ।।जु0 ।।17।।

सा चिंते नट नागर तणी, बाजी बाझी प्लुतें जेम रे ।
मन राजी काजी शुं करे, आजीवित एहशुं प्रेम रे ।।जु0 ।।18।।

हवे वरणवे जे जे नृप प्रते, प्रतिहारी करी गुण पोष रे ।
ते ते हिले कुवरी दाखवी, वय रूपने देशनां दोष रे ।।जु0 ।।19।।

वरणवां जस मुख उजलुं, हेलंता तेहनुं श्याम रे ।
प्रतिहारी थाकी कुंवरने, सा निरखे रति अभिराम रे ।।जु0 ।।20।।

छे मधुर यथोचित शेलडी, दधि मधुर साकरने द्राख रे ।
पण तेहनुं मन जिहाँ वेधियुं, ते मधुर न बीजा लाख रे ।।जु0 ।।21।।

इण अवसरे थंभनी पूतली, मुखें अवतरी हारनो देव रे ।
कहे गुण ग्राहक जो चतुर छे, वामन वर ततखेव रे ।।जु0 ।।22।।

ते सुणी वरियो ते कुंवरीए, दाखे निज अति ही कुरूप रे ।
ते देखी निभर्त्स कुब्ज ने, तव रूठा राणा भूप रे ।।जु0 ।।23।।

गुण अवगुण मुग्धा नवि लहे, वरे कुब्ज तजी वर भूप रे ।
पण कन्यारत्न न कुब्ज नुं, उकरड़े शो वर धूप रे ।।जु0 ।।24।।

तज माल मराल अमे कहुँ, तू काग छे अति विकराल रे ।
जो न तजे तो ए ताहरुँ, गल नाल लूणे करवाल रे ।।जु0 ।।25।।

तव हसिय भणे वामन इस्युं, तुम जो नवि वरिया एण रे ।
तो दुर्भग रूसो मुझ किस्युं, रूसो न विधि शुं केण रे ।।जु0 ।।26।।

पर-स्त्री अभिलाषनां पातकी, हवे मुज असिधारा तिथ्थ रे ।
पामी तुमे शुद्ध थाओ सवे, देखो मुज कहेवा हथ्थ रे ।।जु0 ।।27।।

एम कही कुब्जे विक्रम तिस्युं, दाख्युं जेणे नरपति नट्ट रे ।
चित्त चमक्या गगने देवता, तेणे संतति कुसुमनी वुट्ट रे ।।जु0 ।।28।।

हुओ वज्रसेन राजा खुशी, कहे बल परे दाखवो रूप रे ।
तेणे दाख्युं रूप स्वभावनुं, परणावे पुत्री भूप रे ।।जु0 ।।29।।

दियो आवास उत्तंग ते तिहां, विलसे सुख श्रीपाल रे ।
निज तिलकसुन्दरी नारी सुं, जिम कमला सुं गोपाल रे ।।जु0 ।।30।।

त्रीजे खंडे पूरण थई, ए छट्ठी ढाल रसाल रे ।
जस गातां श्री सिद्धचक्रनो, होय घर घर मंगल माल रे ।।जु0 ।।31।।

सातवी ढाल

दोहा

विलसे धवल अपार सुख, सोभागी सिरदार ।
पुण्य बले सवि संपजे, वंछित सुख निरधार ।।1।।

सामग्री कारज तणी, प्रापक कारण पंच ।
इष्ट हेतु पुण्यज वडुं, मेले अवर प्रपंच ।।2।।

तिलकसुन्दरी श्रीपालनो, पुण्ये हुओ संबंध ।
हवे श्रृंगारसुन्दरी तणो, कहीशुं लाभ प्रबंध ।।3।।

ढाल

(राग : साहिबा मोतीड़ो हमारो)

एक दिन राजसभाए आव्यो, चर कहे अचरिज मुझ मन भाव्यो ।
साहिबा रंगीला हमारा, मोहना रंगीला ।
दलपत्तननो छे महाराजा, धरापाल जस पख बिहु ताजा ।।सा0मो0 ।।1।।

रानी चोरासी तस गुण खाणी, गुणमाला छे प्रथम वखाणी ।
पांच बेटा उपर गुण पेटी, श्रृंगारसुन्दरी छे तस बेटी ।।सा0मो0 ।।2।।

पल्लव अधर हसित सित फूल, अंग चंग कुचफल बहु भूल ।
जंगम ते छे मोहन वेली, चालती चाल जिसी गज गेली ।।सा0मो0 ।।3।।

पंडिता विचक्षणा प्रगुणा नामें, निपुणा दक्षा सम परिणामें ।
तेहनी पांच सखी छे प्यारी, सहुनी मति जिन धर्मे सारी ।।सा0मो0 ।।4।।

ते आगल कहे कुंवरी साचुं, आपणनुं म होजो मन काचुं ।
सुख कारण जिन मतनो जाण, वर वरवो बीजो अप्रमाण ।।सा0 मो0 ।।5।।

जाण अजाण तणो जे जोग, केल कंथेरनो ते संयोग ।
व्याधि मृत्यु दारिद्र वनवास, अधिको कुमित्र तणो सहवास ।।सा0मो0 ।।6।।

हेम मुद्राए अकीक न छाजे, श्यो जलधर जे फोकट गाजे ।
वर वरवो परखीने आप, जिम न होय कर्म कुजोड़ालाप ।।सा0मो0 ।।7।।

कहे पंडिता परनुं चित्त, भाव लखीजे सुणीय कवित्त ।
सीथें पाक सुभट आकारे, जिस जाणी जे शुद्ध प्रकारे ।।सा0मो0 ।।8।।

करिय समस्या पद तुमे दाखो, जे पूरे ते चित्त मांहि राखो ।
इम निसुणी कहे कुंवरी तेह, वरूं समस्या पूरे जेह ।।सा0 मो0 ।।9।।

तेह प्रसिद्धि सुणीने मलिया, बहु पंडित नर बुद्धे बलिया ।
पण मतिवेग तिहाँ नवि चाले, वायुवेगे नवि डुंगर हाले ।।सा0मो0 ।।10।।

पंच सखी युत ते नृप बेटी, चित्त परखे करी समस्या मोटी ।
सुणिय कहे जन केम पूरीजे, पर मन द्रह किम थाह लहीजे ।।सा0 मो0 ।।11।।

सुणिय कुमार चमक्यो आवे, घर कहे हो मुझ हार प्रभावे ।
दलपतनगर जिहां नृप कन्या, तिहां पहोंतो सखी युत जिहां धन्या ।।सा0मो0 ।।12।।

देखी कुंवर अमर सम तेह, चित चमकी कहे जो मुझ एही ।
पूरे समस्या तो हूं धन्य, पूरी प्रतिज्ञा होय कय पुण्य ।।सा0 मो0 ।।13।।

पूछे कुंवर समस्या कोण, कुंवरी संकेत राखी कहे गौण ।
शीषे कुंवर दिये कर पूरे, पुत्तल तेह रहे न अधूरे ।।सा0 मो0 ।।14।।

पूरे कुंवरे समस्या सारी, आनन्दित हुई नृपति कुमारी ।
वरे कुमार ते त्रिभुवन सार, गुणनिधान जीवन आधार ।।सा0 मो0 ।।15।।

पूतल मुख समस्या पूरावी, राजा प्रमुख जन सवि हुओ भावि ।
ए अचरिज तो कहिये न दीठुं, जिम जोइये तिम लागे मीठुं ।।सा0मो0 ।।16।।

राजा निज पुत्री परणावे, पंचसखी संजुत मन भावे ।
पाणिग्रहण मह सबलो कीधो, दान अतुल मनवांछित दीधो ।।सा0मो0 ।।17।।

सातमी ढाल ए त्रीजे खंडे, पूरण हुई गुण राग अखंडे ।
सिद्धचक्रनां गुण गाइजे, विनय सुजस सुख तो पाइजे ।।सा0 मो0।।18।।

आठवीं ढाल

दोहा

अंगभट्ट इण अवसरे, देखी कुंवर चरित्र ।
कहे सुणो एक माहरूं, वचन विचार पवित्र ।।1।।

कोल्लागपुरनो राजियो, अछे पुरंदर नाम ।
विजयाराणी तेहनी, लवणिम लीला धाम ।।2।।

सात पुत्र उपर सुता, जयसुन्दरी छे तास ।
रंभा लघु ऊंची गई, जोड़ी न आवे जास ।।3।।

लवणिम रूप अलंकरी, ते देखी कहे भूप ।
ए सरीखो वर कुण हशे, पाठक ! कहो स्वरूप ।।4।।

सौ कहे इण भणतां कला, राधावेध स्वरूप ।
पूछ्युं ते में वरणव्युं, साधन ने अनुरूप ।।5।।

आठ चक्र थंभ उपरे, दक्षिण ने वाम ।
अर विवरोपरी पूतली, काठनी राधा नाम ।।6।।

तेल कढ़ा प्रतिबिंब जोई, मुके अधोमुख बाण ।
वेधे राधा वाम अच्छि, राधावेध सुजाण ।।7।।

धनुर्वेदनी ए कला, चार वेद थी उड्ढ ।
उत्तम नर साधी सके, नवि जाणे कोइ मूढ ।।8।।

ते सुणी तुज पुत्री नृपति, करे प्रतिज्ञा एम ।
वरशुं राधावेध करी, बीजो वरवा नेम ।।9।।

महोटा मंडप मांडिये, राधावेधनो संच,
करिये जिम वर पामिये, पाठक कहे प्रपंच ।।10।।

मंडप नृप मंडाविया, राधावेध विचार ।
पण नवि को साधी सके, पण साधशो कुमार ।।11।।

इम निसुणी ते भट्टने, वुंडल देई कुमार ।
रयणी निज वासे वसी, चाल्यो प्रातः उदार ।।12।।

पहोंतो ते कोल्लागपुर, कुंवर दृष्टि सब साखी ।
साध्यो राधावेध तिहां, हार महिम गुण दाखी ।।13।।

जयसुन्दरीये ते वर्यो, करे भूप विवाह,
तास दत्त आवासमां, रहे सुजश उच्छाह ।।14।।

ढाल

(राग : बन्यो रे कुंवरजी रो सेहरो)

हवे माउल नृप पेसिया, आव्या नर आणा काज रे । विनीत । लीलावन्त कुंवर भलो
कुंवरे पण निज सुन्दरी, तेड़ावी अधिके हेज रे ।।वि0ली0 ।।1।।

सैन्य मल्युं तिहाँ सामटुं, हय गय रथ भड़ चतुरंग रे ।।वि0।।
तिण संयुत कुंअर ते आवियो, ठाणाभिध-पुर अति चंग रे ।।वि0ली0 ।।2।।

आणंदियो माउल नरपति, तस सिरिवर सुन्दरी देखि रे ।।वि0।
थापे राज श्रीपाल ने, करे विधि अभिषेक विशेष ।।वि0ली0 ।।3।।

सिंहासन बेठो सोहिये, वर हाट किरीट विशाल रे ।।वि0।
वर चामर छत्र शिरे धर्यो, मुख कज अनुसरत मराल रे ।।वि0ली0 ।।4।।

सोले सामंते प्रणमिये, हय गय मणि मोतिये भेट रे ।।वि0।
चतुरंगी सेनाए परवर्यो, चाले जननी नमवा नेट रे ।।वि0 ली0 ।।5।।

गाम ठाणे आवंतड़ो, प्रणामितो भूप सुपवित्त रे ।।वि0।
भेटिजंतो बहु भेटणें, सोपारय नगर पहुंत रे ।।वि0ली0 ।।6।।

ते परिसर सैन्ये परिवर्यो, आवासे ते श्रीपाल रे ।।वि0।
कहे भगति शक्ति नवि दाखवे, शुं सोपारक नरपाल रे ।।वि0 ली0 ।।7।।

कहे परधान नवि एहनो, अपराध अछे गुणवंत रे ।।वि0 ।
नाम महसेन छे ए भलो, तारा राणी मन कंत रे ।।वि0ली0 ।।8।।

पुत्री तस बुंख्खे ऊपनी, छे तिलकसुन्दरी नाम रे ।।वि0।
ते तो त्रिभुवन तिलक समी बनी, हरे तिलोत्तमानुं धाम रे ।।वि0 ली0 ।।9।।

ते तो सृष्टि छे चतुर मदनतणी, अंगे जीत्या सवि उपमान रे ।।वि0 ।
श्रुति जड़ जे ब्रह्मा तेहनी, रचना छे सकल समान रे ।।वि0 ली0 ।।10।।

दिह पीठे दंसी सा सुता, कीधा बहुविध उपचार रे ।।वि0।
मणिमंत्र औषध, बहु आणिया, पण न थयो गुण ते लगार रे ।।वि0ली0।।11।।

ते माटे दुःखे पीडियो, महसेन नृपति तस तात रे ।।वि0 ।
नवि आव्यो इहां ए कारणे, मत गणजो बीजो घात रे ।।वि0 ली0 ।।12।।

राजा कहे किहां छे दाखवो, तो कीजे तस उपगार रे ।।वि0 ।
एम कही तुरगारूढे तिणे, दीठा जाता बहु नरनार रे ।।वि0 ली0 ।।13।।

समशाने लई जाती जाणी, तिहां पहोंतो नरनाह रे ।।वि0।
कहे दाखो मुझ हुं सज करूं, मूर्छितने म दियो दाह रे ।।वि0 ली0 ।।14।।

महियत मूकी ते थानके, करी हार नवण अभिषेक रे ।।वि0।
सज करी सवि लोकना चित्त शुं, थई बेठी धरिय विवेक रे ।।वि0ली0 ।।15।।

महसेन मुदित कहे राजियो, वत्स तुजने ए शुं होत रे ।।वि0 ।
जो नावत ए बड़भागियो, न करत उपगार उद्योत रे ।।वि0ली0 ।।16।।

तुझ प्राण दिया छे एहने, तू प्राण अधिक छे मुझ रे ।।वि0।
एहने तु देवी मुझ घटे, ए जाणे हृदयनो गुंझ रे ।।वि0ली0 ।।17।।

स्निग्ध मुग्ध दृग देखतां, एम कहेतां ते श्रीपाल रे ।।वि0 ।
मन चिंते महारा प्रेमनी, गति एह शुं छे असराल रे ।।वि0ली0 ।।18।।

जो प्राण कहुं तो तेहथी, अधिको किम लखिये प्रेम रे ।।वि0।
कहुं भिन्न तो अनुभव किम मिले, अविरुद्ध उभय गति केम रे ।।वि0ली0 ।।19।।

इम स्नेहल सा निज अंगजा, श्रीपाल करें दिये भूप रे ।।वि0 ।
परणी सा आठे तस मली, दयिता अति अद्भुत रूप रे ।।वि0ली0 ।।20।।

अड़ दिट्ठीं सहित पण विरतीने, जिम वंछे समकित वंत रे ।।वि0।
अड़ प्रवचनमात सहित मुनि, समताने जिम गुणवंत रे ।।वि0ली0 ।।21।।

अड़ बुद्धि सहित पण सिद्धि ने, अड़ सिद्धि सहित पण मुक्ति रे ।।वि0 ।
प्रिया आठ सहित पण प्रथम ने, नित ध्यावे ते इण युक्ति रे ।।वि0ली0।।22।।

उत्कंठित चित तेहशुं, वली जननीने नवमा हेज रे ।।वि0।
श्रीपाल प्रयाणे पूरियुं, देवरावे ढक्का तेज रे ।।वि0ली0 ।।23।।

हय गय रह भड मणि कंचणे, सत्य वत्थ बहु मूल रे ।।वि0।
पग पग भेटीजे नृपवरे, तेहनुं चक्रवर्ती सम सूल रे ।।वि0ली0 ।।24।।

तस सैन्य भरे भारित मही, अहिपति फण मणि गत प्रोत रे ।।वि0 ।
तेणे गिरिपण जाणुं नवि गिरिया, तेणे शशि-सूरनयण विधि जोत रे ।।वि0ली0।।25।।

महरठ सोरठ मेवाडना, वली लाट भोटना भूप रे. ।।वि0।
ते आव्यो सघला साधतो, मालव देशे रवि रुप रे ।।वि0ली0 ।।26।।

आगमन सुणी परचक्रनुं, चरमुख थी मालवराय रे ।।वि0।
भयभीत ते गढ़ने सज करे, तेहनुं नवि तेज खमाय रे ।।वि0ली0 ।।27।।

कप्पड़, चुप्पड़, तृण कण घणा, संग्रहे ते इंधण नीर रे ।।वि0।
संनद्ध होय ते सुभट बड़ा, कायर कंपे नहीं धीर रे ।।वि0ली0 ।।28।।

एम उज्जेणी हुई नगरने, लोक संकीर्ण समीप रे ।।वि0 ।
वींटी श्रीपाल सुभटे तदा, जिम जलधि अंतरद्वीप रे ।।वि0ली0 ।।29।।

डेरा दीधां सवि सैन्यनां, पहेलो हुओ रजनी जाम रे ।।वि0।
जननी घर पहोंतो प्रेमसुं, नृप हार प्रभावे ताम रे ।।वि0ली0 ।।30।।

ढाल पूरी थई आठमीं, पूरण हुओ त्रीजो खंड रे ।।वि0।
हाय नवपद विधि आराधतां, जिन विनये सु-यश अखंड रे ।।वि0ली0 ।।31।।

चौपाई

खंड खंड मिठाई घणी, श्री श्रीपाल चरित्रे भणा ।
ए वाणी सुरतरु बेलड़ी, किसी द्राखने किसी शेलड़ी ।।

चौथा खण्ड

पहली ढाल

दोहा

त्रीजे खंडे अखंड रस, पूरण हुओ प्रमाण ।
चोथो खंड हवे वर्णवुं, श्रोता सुणो सुजाण ।।1।।

शीश धुणावे चमकियो, रोमांचित करे देह ।
विकसित नयन वदन मुदा, रस दिये श्रोता तेह ।।2।।

जाणज श्रोता आगले, वक्ता कला प्रमाण ।
ते आगे धन शुं करे, जे मगसेल पाषाण ।।3।।

दर्पण अंधा आगले, बहिरा आगल गीत ।
मूरख आगल रसकथा, त्रणे एकज रीत ।।4।।

ते माटे सज थई सुणो, श्रोता दीजे कान ।
बूझे तेहजे रीझवुं, लक्ष न भूले ज्ञान ।।5।।

आगे आगे रस घणों, कथा सुणंता थाय ।
हवे श्रीपाल चरित्रनां, आगे गुण कहेवाय ।।6।।

ढाल

(राग : धन दिन वेला, धन घड़ी तेह)

रहियो रे आवास दुवार, वयणा सुणे श्रीपाल सुहामणो जी ।
कमलप्रभा रे कहे एम, मयणां प्रति चित्त ए दुःख घणों जी ।।1।।

विटी छे ए परचक्र, नगरी सघलोइ लोक हिल्लोलिया जी ।
शी गति होशे इण ठाम, सुतने सुख होजो बीजी धोलियो जी ।।2।।

घणां रे दिवस थया तास, वालिम तुज जे गयो देशांतरे जी ।
हजीय न आवी कोई सुद्धि, जीवे रे माता दुःखणी किम नवि मरे जी ।।3।।

मयणा रे बोले म करो खेद, म धरो रे भय मनमां परचक्रनो जी ।
नवपद ध्याने रे पाप पलाय, दुरित न चारो छे ग्रह वक्रनो जी ।।4।।

अरि करि सागर हरि ने व्याल, ज्वलन जलोदर बंधन भय सवे जी ।
जाय रे जपतां नवपद जाप, लहे रे संपत्ति इह भवे परभवे जी ।।5।।

बीजा रे खोजे कोण प्रमाण, अनुभव जाग्यो मुझ ए वातनो जी ।
हुओ रे पूजानो अनुपम भाव, आज रे संध्याए जग तातनो जी ।।6।।

तद्गत चित्त समय विधान, भावनी वृद्धि भव भय अति घणो जी ।
विस्मय पुलक प्रमोद प्रधान, लक्षण ए छे अमृत क्रिया तणो जी ।।7।।

अमृतनो लेश लह्यो इक बार, बीजुं रे औषध करवु नवि पड़े जी ।
अमृत क्रिया तिम लही इक बार, बीजुं रे साधन विण शिव नवि अड़े जी ।।8।।

एहवो रे पूजामां मुज भाव, आव्यो रे भाव्यो ध्यान सोहामणो जी ।
हजिय न माय मन आणंद, खिण खिण होये पुलक नि:कारणो जी ।।9।।

फरके रे वाम नयन उरोज, आज मिले छे वालिम माहरो जी ।
बीजुं रे अमृत क्रिया सिद्धि रूप, तुरत फले छे तिहां नवि आंतरो जी ।।10।।

कमलप्रभा कहे वत्स साच, ताहरी रे जीभे अमृत वसे सदा जी ।
ताहरुं रे वचन होशे सुप्रमाण, त्रिविध प्रत्यय छे ते साध्यो मुदाजी ।।11।।

करवा रे वचन प्रियानुं साच, कहे रे श्रीपाल ते बार उघाडिये जी ।
कमलप्रभा कहे ए सुतनी वाणी, मयणां कहे जिनमत न मुधा हुये जी ।।12।।

उघाडियां बार नमे श्रीपाल, जननीना चरण सरोज सुहंकरु जी ।
प्रणमी रे दयिता विनय विशेष, बोलावे तेहने प्रेम मनोहरु जी ।।13।।

जननी रे आरोपी निज खंध, दयिता रे निज हाथ लेई रागसुं जी ।
पहोंता रे हार प्रभावे राय, शिविर आवासे उलसित वेगसुं जी ।।14।।

बेसाड़ी रे भद्रासने नरनाथ, जननी प्रेमे इणी परे विनवे जी ।
माताजी देखो ए फल तास, जपियां में नवपद जे सुगुरु दीया जी ।।15।।

बहु रो रे आठे लागी पाय, सासुने प्रथम प्रिया मयणा तणे जी ।
तेहनी रे शीस चड़ावी आशीश, मयणा रे आगे वात सकल भणे जी ।।16।।

पूछे रे मयणा ने श्रीपाल, ताहरो ते तात अणावुं किण परे जी ।
सा कहे कंठे धरीये कुहाड़, आवे तो कोई आशातना नवि करे जी ।।17।।

कहेवराव्युं दूत मूके तिण वार, श्रीपाले ते राजा ने वयणडुं जी ।
कोप्यो रे मालव राय ताम, मंत्री रे कहे नवि कीजे एवडुं जी ।।18।।

चोथे रे खंडे पहिली ढाल, खण्ड साकरथी मीठी ए भणी जी ।
गाये जे नवपद सुजस विलास, कीरति वाधे जगमां तेह तणी जी ।।19।।

दूसरी ढाल

दोहा

मंत्री कहे नवि कोपिये, प्रबल प्रतापी जेह ।
नाखीने शुं कीजिये, सूरज सामी खेह ।।1।।

उद्धत उपरे आथड्यु, पसरंतु पण धाम ।
उल्हाए जिम दीपनुं, लागे पवन उद्दाम ।।2।।

जे किरतारे बड़ा किया, तेहशुं न चाले रीश ।
आप अदाजे चालिये, नामी जे तस शीश ।।3।।

दूत कहे ते कीजिये, अनुचित करे बलाय ।
जेहनी वेला तेहनी, रक्षा एहज न्याय ।।4।।

एहवा मंत्री वयण सुणी, धरी कुहाड़ो कंठ ।
मालव नरपति आवियो, शिविर तणे उपकंठ ।।5।।

ते श्रीपाल छोड़ावियो, पहिराव्यो अलंकार ।
सभा मध्ये तेड्यो नरपति, आप्युं आसन सार ।।6।।

तव मयणा निज तातने, कहे बोल जे मुज्ज ।
कर्म वशे वर तुमे दियो, तेहनुँ जुओ ए गुज्ज ।।7।।

तव विस्मित मालव नरपति, जमाउल प्रणमंत ।
कहे न स्वामी तु ओलख्यो, गिरुओ बहु गुणवंत ।।8।।

कहे श्रीपाल न माहरो, एहवो एह बनाव ।
गुरु दर्शित नवपद तणो, ए छे प्रबल प्रभाव ।।9।।

ते अचरिज निसुणी मिल्यो, तिहाँ विवेक उदार ।
सौभाग्यसुंन्दरी रूपसुन्दरी, प्रमुख सयल परिवार ।।20।।

स्वजन वर्ग सघलो मल्यो, वर्त्यो आनन्द पूर ।
नाटक कारण आदिशे, श्री श्रीपाल सनूर ।।11।।

ढाल

(राग : हो जी लुंबे झुंबे वरसेलो मेह, आज दिहाड़ो धरणी तीजरो हो लाल)

हो जी पहेलुं पेडुं ताम, नाचवा उटे आपणी हो लाल ।
हो जी मूल नटी पण एक, नवि उठे बहु परें मणी हो लाल ।।1।।

हो जी उठाड़ी बहु कष्ट, पण उत्साह न सा धरे हो लाल ।
हो जी हाँ हाँ करी सविषाद, दुहो एक मुखे उच्चरे हो लाल ।।2।।

किहां मालव किहाँ शंखपुर, किहाँ बब्बर किहाँ नट्ट ।
सुरसुन्दरी नचाविये, दैवे दल विमरट्ट ।।3।।

हो जी वचन सुणी तव तेह, जननी जनकादिक सवे हो लाल ।
हो जी चिंते विस्मित चित्त, सुरसुंदरी किम संभवे हो लाल ।।4।।

हो जी जननी कंठ विलग्ग, पूछी जनके रोवती हो लाल ।
हो जी सघलो कहे वृत्तांत, जे ऋद्धि तुमे दीधी हती हो लाल ।।5।।

हो जी हुँ तो ऋद्धि समेत, शंखपुरीने परिसरे हो लाल ।
हो जी पहोंती मुहूरत हेत, नाथ सहित रही बाहिरे हो लाल ।।6।।

हो जी सुभट गया केइ गेह, छो छे साथे निशा रही हो लाल ।
हो जी जामाता तुज नट्ट, घाड़ी पड़ी तिहाँ हूँ ग्रही हो लाल ।।7।।

हो जी वेची मूल्ये घाड़ी, सुभटे देश नेपालमां हो लाल ।
हो जी सारथ वाहे लीध, फले लख्युं जे भालमां हो लाल ।।8।।

हो जी तेणे पण बब्बरकूल, महाकाल नगरे धरी हो लाल ।
हो जी हाटे वेची वेश, कोई शिखावी नटी करी हो लाल ।।9।।

हो जी नाटक प्रिय महाकाल, नृप नट पेटक सुं ग्रही हो लाल ।
हो जी विविध नचावी दीध, मयणसेना पतिने सही हो लाल ।।10।।

हो जी नाटक करता तास, आगे दिन केता गया हो लाल ।
हो जी देखो आप कुटुम्ब, उलस्युं दुःख तुम हुइ दया हो लाल ।।11।।

हो जी मयणां दुःख तव देखी, निज गुरु अत्तण मद कियो हो लाल ।
हो जी ते मयणा पति दास, भावे अब मुझ सलकियो हो लाल ।।12।।

हो जी एकज विजयपताक, मयणा सयणांमां लहे हो लाल ।
हो जी जेहनुं शील सलील, महिमाये मृग मद मह महे हो लाल।।13।।

हो जी मयणाने जिनधर्म, फलियो बलियो सुरतरु हो लाल ।
हो जी मुझ मने मिथ्याधर्म, फलियो विषफल विषतरु हो लाल ।।14।।

हो जी एकज जलधि उत्पन्न, अमिय विषे जे आंतरो हो लाल ।
हो जी अम बिहुं बहेनी मांही, तेह छे मत कोई पांतरो हो लाल ।।15।।

हो जी मयणा निज कुल लाज, उद्योतक मणि दीपिका हो लाल ।
हो जी हुं छुं कुल मल हेतु, सघ निशानी झीपिका हो लाल ।।16।।

हो जी मयणा दीठे होय, समकित शुद्धि सोहामणी हो लाल ।
हो जी मुज दीठे मिथ्यात, धीठाई होय अति घणी हो लाल ।।17।।

हो जी एहवा बोली बोल, सुरसुन्दरीये उपाइयो हो लाल ।
हो जी जे आनन्द न तेह, नाटक शतके पण कियो हो लाल ।।18।।

हो जी श्रीपाले वड़वेग, हवे अरिदमन अणावियो हो लाल ।
हो जी सुरसुन्दरी तसु दीध, बहु ऋद्धे वोलावियो हो लाल ।।19।।

हो जी ते दंपती श्रीपाल, मयणाने सुपसाउले हो लाल ।
हो जी पामे समकित शुद्धि, अध्यवसाये अतिभली हो लाल ।।20।।

हो जी कुष्टी पुरुष शत सात, मयणा वयणे लही दया हो लाल ।
हो जी आराधी जिन धर्म, निरोगी सघला थया हो लाल ।।21।।

हो जी ते पण नृप श्रीपाल, प्रणमे बहुले प्रेमसुं हो लाल ।
हो जी राणिम दिये नृप तास, वदन कमल नित उलस्युं हो लाल ।।22।।

हो जी आवी नमे नृप पाय, मतिसागर पण मंत्रवी हो लाल ।
हो जी पूरव परे नर नाह, तेह अमात्य कियो कवि हो लाल ।।23।।

हो जी ससरा साला भूप, माउल बाजा पण घणां हो लाल ।
हो जी तेहने दिये बहुमान, नृप आदरनी नहीं मणा हो लाल ।।24।।

हो जी भाल मिलित कर पद्म, सवि सेवे श्रीपालने हो लाल ।
हो जी इक दिन विनवे मंत्री, मतिसागर भूपालने हो लाल ।।25।।

हो जी चौथे खण्डे ढाल, बीजी हुई सोहामणी हो लाल ।
हो जी गुण गातां सिद्धचक्र, जस कीर्ति वाधे घणी हो लाल ।।26।।

तीसरी ढाल

दोहा

मति सागर कहे पितृ पदे, ठवियो बालपण जेण ।
उठावियो तो तुज अरि, ते सही दित्त भएण ।।1।।

अरिकरगत जे नवि लिये, शक्ति छिते पितृ रज्ज ।
लोक हसे बल फोक तस, जिम शारद घन गज्ज ।।2।।

ए बल ए ऋद्धि ए सकल, सैन्य तणो विस्तार ।
शुं फलशे जो लेशो नहीं, ते निज राज उदार ।।3।।

नृप कहे साचुं ते कह्युं, पण छे चार उपाय ।
सामे होय तो दण्ड श्यो, साकरे पण पित्त जाय ।।4।।

अहो बुद्धि मंत्री भणे, दूत चतुरमुख नाम ।
भूप शिखावी मोकल्यो, पहोंतो चंपा ठाम ।।5।।

तीसरी ढाल

(राग : बंगला, किसके चेले किसके पूत)

अजितसेन छे तिहाँ भूपाल, ते आगल कहे दूत रसाल, साहिब सेविये ।
कला शीखवा जाणी बाल, जे ते मोकलीयो श्रीपाल, सा० ।।1।।

सकल कला तेणे शीखी सार, सेना लई चतुरंग उदार, सा० ।
आव्यो छे तुज खंधनो भार, उतारे छे ए निरधार, सा० ।।2।।

जीरण थंभ तणो जे भार, नवि ठवीजें ते निरधार, सा० ।
लोके पण जुगतुं छे एह, राज देई दाखो तुमे नेह, सा० ।।3।।

बीजुं पयपंकज तस भूप, सेवे बहु भक्ति अनुरुप, सा० ।
तुमे नवि आव्या उपायो विरोध, नवि असमर्थ छें तेहसुं शोध, सा० ।।4।।

किहां सरसव किहां मेरू गिरिंद, किहां तारा किहां शारदचन्द, सा० ।
किहां खद्योत, किहां दिनानाथ, किहां सायर किहां छिल्लर पाथ, सा०।।5।।

किहां पंचानण, किहां मृगबाल, किहां ठींकर किहां सोवनथाल, सा० ।
किहां कोद्रव किहां कूर कपूर, किहां कूकश ने, किहां घृतपूर, सा०।।6।।

किहां शुन्य वाड़ी, किहां आराम, किहां अन्यायी, किहां नृप राम, सा० ।
किहां वाघ ने, किहां वली छाग, किहां दया धरम किहां वली याग, सा० ।।7।।

किहां झूठ ने, किहां वलि साच, किहां रतन, किहां खंडित कांच, सा० ।
चढ़ते ओठे छे श्रीपाल, पड़ते तुम सरिखा भूपाल, सा० ।।8।।

जो तू नवि निज जीवित रूच्छ तो प्रणमी करे तेहज तुट्ठ, सा०।
जो गर्वित छे देखो रज्ज, तो रण करवा थाये सज्ज, सा०।।9।।

तस सेना सागर मांहि जाण, तुज दल साथु चूर्ण प्रमाण, सा०।
मोटासुं नवि कीजे जूझ, सवि कहे एहवुं बूझ, सा० ।।10।।

बोली एम रह्यो जब दूत, अजितसेन बोल्यो थई भूत राज नहीं मले ।
कहजे तू तुझ नृपने एम, दूत पणानो जो छे प्रेम, राज नहि मले
चम्पानगरीनो राय, राजा नहीं मले ।।11।।

आदि मध्य अंते छे जाण, मधुर आम्ल कटु जेह प्रमाण, राज नहीं मले ।
भोजन वचने सम परिणाम, तिणे चतुरमुख ताहरुं नाम । राज नहीं मले ।।12।।

निज नहीं तेह अमारो कोउ, शत्रु भाव वहिये छे दोउ । रा0
जीवतो मुक्यो जाणी रे बाल, तेणे अमे निर्बल, सबल श्रीपाल । राज नहीं मले ।।13।।

निज जीवितने हुं नहीं रुठ, रुठ्यो तस जमराय अपूठ । राज नहीं मले ।
जेणे जगाव्यो सूतो सिंह, मुझ कोपे तस न रहे लीह । राज नहीं मले ।।14।।

जस बल सायर साथु प्राय, जेहना बलते बीजा राय । राज नहीं मले ।
तेहमाँ हुं वड़वानल जाण, सवि ते सोपुं न करुं काण, राज नहीं मले ।।15।।

जो कहेजे दूत तू वेगो जाई, आवुँ छुं तुझ पूठे धाई, राज नहीं मले ।
बल परखीजे रण मैदान, खड़गनी पृथ्वी ने विद्यानुं दान, राज नहीं मले ।।16।।

चौथे खंडे त्रीजी ढाल, पूरण हुई ए राग बंगाल, राज नहीं मले ।
सिद्धचक्र गुण गावे जेह, विनय सुजस सुख-पावे तेह, राज नहीं मले ।।17।।

चौथी ढाल

दोहा

वचन कहे वैरी तणाँ, दूत जई अति वेग ।
कडुआँ काने ते सुणी, हुओ श्रीपाल सतेग ।।1।।

उच्च भूमि तटिनी तटे, सेना करी चतुरंगी ।
चंपादिशी जई तिणे दिया, पट आवास उत्तंग ।।2।।

सामो आव्यो सबल तव, अजितसेन नरनाह ।
माँहो माँही दल बिहुं मल्या, स-गरव अधिक उत्साह ।।3।।

ढाल

(राग : कड़खा)

चंग रण रंग मंगल हुआ अति घणा, भूरि रण तूर अविदूर बाजे ।
कौतुकी लाख देखण मल्या देवता, नाम दुंदुभी तणे गयण गाजे ।।चं0 ।।1।।

उग्रता करण रणभूमि तिहाँ शोधिये, रोधिये अवधि करी शस्त्र पूजा ।
बोधिये सुभट कुल वंश शंसा करी, योधिये कवण विण तुज्ज दूजा ।।चं0 ।।2।।

चरचिये चारु चंदन रसे सुभट तनु, अरचिये चंपके मुकुट सीसे ।
सोहिये हत्थ वरवीर वलये तथा, कल्पतरु परि बन्या सुभट दीसे ।।चं ।।3।।

कोई जननी कहे जनक मत लाजवे, कोई कहे माहरुं बिरुद राखे ।
जनक पति पुत्र तिहुं वीर जस उजला, सोहि धन जगतमां अणिय आंखे ।।चं ।।4।।

कोई रमणी कहे हसिय तु सहिश किम, समर करवाल शर कुंत धारा ।
नयण बाणे हण्यो तुज्ज में वश कियो, तिहां न धीरज रह्यो कर विचारा ।।चं0 ।।5।।

कोई कहे माहरो मोह तुं मत करे, मरण जीवन तुझ न पीठ छांडुं ।
अधररस अमृतरस दोय तुझ सुलभ छे, जगत जय हेतु हो अचल खांडुं ।।चं0 ।।6।।

इम अधिक कौतुके वीर रस जागते, लागते वचन हुआ सुभट ताता ।
सुरपण क्रूर हुई तिमिर दल खंडवा, पूर्व दिशि दाखवे किरण राता ।।चं0 ।।7।।

रोपी रण थंभ संरंभ करि अति घणो, दोई दल सुभट तव सबल जूझे ।
भूमिने भोगता जोई निज योग्यता, अमल आरोगता रण न मूंझे ।।चं0 ।।8।।

नीर जिम तीर वरसे तदा योध धन, संचरे बग परे धवल नेजा ।
गाजदलसाज ऋतु आई पाउस तणी, बीज जिम कुंत चमके सतेजा ।।चं0 ।।9।।

भंड ब्रह्मांड शत खंड जे करि शके, उच्छले तेहवा नाल गोला ।
वरसता अग्नि रणमगन रोषे भर्या, मानुए यम तणा नयणडोला ।।चं0 ।।10।।

केई छेदे शरे अरितणां शिर सुभट, आवता केई अरिबाण झाले ।
केई असि छिन्न करि कुंभ मुक्ता फले, ब्रह्मरथ विहग मुखग्रास घाले ।।चं0 ।।11।।

मद्य रस सद्य अनवद्य कवि पद्य भर, बंदि जन बिरुदथी अधिक रसिया ।
खोज अरि फोजनी मोज धरी नवि करे, चमकभर धमकदइ मांही धसिया ।।चं0 ।।12।।

वाल विकराल करवाल हत सुभट शिर, वेग उच्छलित रवि राहु माने ।
धूलि धोरणी मिलित गगन गंगाकमल, कोटि अंतरित रथ रहत छाने ।।चं।।13।।

केई भट भार परि सीस परिहार करी, रण रसिक अधिक जूझे कबंधे ।
पूर्ण संकेत हित हेत जय जय रवें, नृत्य मनु करत संगीत बध्धें ।।14।।

भूरि रणतूर पूरे गयण गड़गड़े, रथ सबल शर चकचूर भांजे ।
वीर हक्काय गय हय पुले चिहुं दिशे, जे हुवे शूरतस कोण गांजे ।।चं0 ।।15।।

तेह खिणमां हुई, रणमही घोर तर, रुधिर कर्दम भरी अंतपुरी ।
प्रीति हुई पूर्ण व्यन्तर तणा देवने, सुभट ने होंश नवि रही अधूरी ।।चं0 ।।16।।

देखी श्रीपाल भट भांजियुं सैन्य निज, उठवे तव अजितसेन राजा ।
नाम मुझ राखवो जो फरी दाखवो, सुभट विमल कुल तेज ताजा ।।चं0 ।।17।।

तेह इम बुझतो सैन्य सजी जुझतो, वींटिया जत्ति सयसात राणे ।
ते वदे नृपति अभिमान तजि हजिय तूं, प्रणमी श्रीपाल हित एह जाणे ।।चं0 ।।17।।

मान धन जास माने न ते हित वचन, तेह शुं जूझतो नविय थाके ।
बांधियो पाड़ि करि तेह सत सय भटे, हुओ श्रीपाल यश प्रकटवो के ।।चं0 ।।18।।

पाय श्रीपाल ने आणियो तेह नृप, तेणे छोड़ावियो उचित जाणी ।
भूमि सुख भोगवो तात मन खेद करो, वदत श्रीपाल इम मधुर वाणी ।।चं0 ।।19।।

खंड चौथे हुई ढाल चौथी भली, पूर्ण कड़खा तणी एह देशी ।
जेह गावे सुजश एम नवपद तणो, ते लहे ऋद्धि सवि शुद्ध लेशी ।।चं0 ।।20।।

पाँचवी ढाल

दोहा

अजितसेन चिंते कर्युं, अविमास्यु में काज ।
वचन न मान्युं दूतनुं, तो न रही निज लाज ।।1।।

आप शक्ति जाणे नहीं, करे सबल शुं जूझ ।
सुहित वचन माने नहीं, आपे पडे अबूझ ।।2।।

किहां वृद्ध पण हुं सदा, पर द्रोह करवा पाप ।
किहां बाल पण ए सदा, पर उपकार स्वभाव ।।3।।

गोत्र द्रोह कीरति नहीं, राज द्रोह नवि नीति ।
बाल द्रोह सद्गति नहीं, ए त्रणे मुझ भीति ।।4।।

को न करे ते में कर्युं, पातिक निठुर निजाण ।
नहीं बीजुं बहु पापने, नरक बिना मुझ ठाण ।।5।।

एवा पण सहु पापने, उद्धरवा दिये हत्थ ।।
प्रवज्या जिनराजनी, छे इक शुद्ध समत्थ ।।6।।

ते दुःख वल्ली वन दहन, ते शिव सुख तरु कन्द ।
ते कुल घर गुण गण तणुं, ते टाले सवि दंद ।।7।।

ते आकर्षण सिद्धिनुं, भव निकर्षण तेह ।
ते कषाय गिरि भेद पवि, नोकषाय दव मेह ।।8।।

प्रवज्या गुण इम ग्रहे, देखे भवजल दोष ।
मोह महामद मिट गयो, हुओ भावनो पोष ।।9।।

भेदाणी बहु पापथिति, कर्मे विवरज दीध ।
पूरव भव तस सांभर्यो, रंगे चारित्र लीध ।।10।।

ढाल

(राग : थारे माथे पचरंगी पाग)

हुओ चारित्र जुत्तो, समिति ने गुत्तो, विश्वनो तारूजी
श्रीपाल ते देखी, सुखी सुगुण गवेषी, मोहियो बारूंजी ।।
प्रणमें परिवारे, भक्ति उदारे, विश्वनो तारूजी ।
कहे तुज गुण थुणिये, पातक हणिये, आपनां वारूंजी ।।1।।

उपसम असिधारे क्रोधने मारे, विश्वनो तारूजी ।
तू महव वज्जे मदगिरि भज्जे, मोटका वारूंजी ।।
माया विषवेली मूल उखेड़ी, विश्वनो तारूजी ।
ते अज्जव कीले सहज सलीले सामटी वारूंजी ।।2।।

मूर्छा जल भरियो गहन गुहरियो, विश्वनो तारूजी ।
ते तरियो दरियो मुत्ति तरीषुं, लोभनो वारूंजी ।।
ए चार कषाया भव तरु पाया, विश्वनो तारूजी ।
बहुभेदे खेदे सहित निकंदी, तू जयो वारूंजी ।।3।।

कंदर्पे दर्पे सवि सुर जीत्या, विश्वनो तारूजी ।
तें तें इक धक्के विक्रम पक्के, मोड़ियो वारूंजी ।।
हरि नादे भाजे गज नवि गाजे, विश्वनो तारूजी ।
अष्टापद आगल, ते पण छागल, सारिखो वारूंजी ।।4।।

रति अरति निवारी, भय पण भारी, विश्वनो तारूजी ।
ते मन नवि धरियो, तेहज डरियो, तुज्जथी वारूंजी ।।
ते तजिय दुगंछा, शी तुज वंछा, विश्वनी तारूजी ।
ते पुग्गल अप्पा, बिहुं पखे थप्पा, लक्षणे वारूंजी ।।5।।

परिसहनी फोजे, तू निज मोजे, विश्वनो तारूजी ।
नवि भागो लागो, रण जिम नागो एकलो वारूंजी ।।

उपसर्ग ने वर्गे, तू अपवर्गे विश्वनो तारूजी ।
चालतां नड़ियो, तू नवि पड़ियो पाशमां वारूंजी ।।6।।

दोय चोर उटंता, विषम व्रजंता विश्वनो तारूंजी ।
धीरज पविदंडे, तेज प्रचंडे ताड़िया वारूंजी ।।
नई धारण तरतां, पार उतरतां, विश्वनो तारूजी ।
नवि मारग लेखा, विगत विशेषा देखिये वारूंजी ।।7।।

तिहां जोग नालिका, समता नामे विश्वनो तारूजी ।
ते जोवा मांडी, उत्पथ छांडि उद्यमें वारूंजी ।।
तिहां दीठी दूरे, आनन्द पूरे, विश्वनो तारूजी ।
उदासीनता शेरी, नहीं भव फेरी वक्र छे वारूंजी ।।8।।

ते तू नवि मूके, जोग न चूके विश्वनो तारूजी ।
बाहिर ने अन्तर, तुज निरन्तर सत्य छे वारूंजी ।।
नय छे बहुरंगा, तिहाँ न एकंगा विश्वनो तारूजी ।
तुमे नय पक्षकारी, छो अधिकारी मुक्तिना वारूंजी ।।9।।

तुमे अनुभव जोगी, निजगुण भोगी विश्वनो तारूजी ।
तुमे धर्म सन्यासी, शुद्ध प्रकाशी तत्त्वना वारूंजी ।।
तुमे आतम दरसी, उपशम वरसी विश्वनो तारूजी ।
तीजो गुण वाडी, थाये ते जाडी पुण्य शुं वारूंजी ।।10।।

अप्रमत्त प्रमत्त, न द्विविध कहीजे विश्वनो तारूजी ।
जाणंग गुण ठाणंग, एकज भाव ते ते ग्रह्यो वारूजी ।।
तुमे अगम अगोचर, निश्चय संवर, विश्वनो तारूजी ।
फरस्युं नवि तरस्युं, चित्त तुम केरूं स्वप्नमां वारूंजी ।।11।।

तुज मुद्रा सुन्दर, सुगुण पुरंदर विश्वनो तारूजी ।
सूचे अति अनुपम, उपशम लीला चित्तनी वारूंजी ।।
जे दहन गहन होय, अन्तर चारी विश्वनो तारूजी ।
तो किम नव पल्लव, तरुवर दीसे सोहतो वारूंजी ।।12।।

वैरागी त्यागी, तुं सोभागी विश्वनो तारूजी ।
तुझ शुभ मति जागी, भावठ भागी मूलथी वारूंजी ।।
जगपूज्य तुं मारो, पूज्य छे प्यारो विश्वनो तारूजी ।
पहेलां पण नमियो, हवे उपशमियो आदर्यो वारूंजी ।।13।।

एम चौथे खंडे, राग अखंडे संथुण्यो विश्वनो तारूजी ।
जे मुनि श्रीपाले, पंचमी ढाले ते कह्यां वारूंजी ।।
जे नवपद महिमा, महिमाये मुनि गावशे विश्वनो तारूजी ।
ते विनय सुजस गुण, कमला विमला पामशे वारूंजी ।।14।।

दोहा

अजितसेन मुनि इम थुणी, तेहने पाट विशाल ।
तस अंजन गज गति सुमति, थापे नृप श्रीपाल ।।1।।
कारज कीधा आपणां, आरजने सुख दीध ।
श्रीपाले बल पुण्यने, जे बोल्युं ते कीध ।।2।।

छट्ठी ढाल

(राग : बलद भला छे सोरठी रे लाल)

विजयकरी श्रीपालजी रे लाल, चंपानगरीये करे प्रवेश रे सोभागी ।
टाल्या लोकना सकल क्लेश रे, सो0 चंपानगरी ते बनी सु-विशेष ।।
शणगार्या हाट अशेष रे सो0 पटकूले छाया प्रदेश रे सो0
जय जय भणे नर नारियो रे लाल ।।1।।

फरके ध्वजा तिहाँ चिहुं दिशे रे लाल, पग पग नाटारंभ रे सो0 ।
मांड्या ते सोवन थंभ रे सो0 गावे गोरी आदंभ रे सो0 ।।
जेणे रूपे जीती छे रंभ रे सो0 बंभ ने पण होय अचंभ रे सो0 ज0 ।।2।।

सुरपुरी झंपा जे करी रे लाल, चंपा हुई तेण बार रे सो0 ।
मदमोह समुद्रमां सार रे सो0 फल्यो साहस मानुं उदार रे सो0 ।।
तिहां आव्यो हरि अवतार रे सो0 श्रीपाल ते कुल उद्धार रे सो0 ज0 ।।3।।

मोतीय थाल भरी करी रे लाल, वधावे वर नार रे सो0 ।
कर कंकण ना रणकार रे सो0 पग झांझरना झमकार रे सो0 ।।
कटि मेखला खलकार रे सो0 वाजे मादलना धौंकार रे सो0ज0 ।।4।।

सकल नरेसर तिहां मली रे लाल, अभिषेक करे फरी तास रे सो0 ।
पितृ पट्टे थापे उल्लास रे सो0 मयणा अभिषेक विशेष रे सो0 ।।
लघु पट्टे आठ जे शेष रे सो0 सीधो जे कीधो उद्देश रे सो0ज0 ।।5।।

एक मंत्री मतिसागरु रे लाल, तीन धवल तणा जे मित्त रे सो0 ।
ए चारे मंत्री पवित्त रे सो0 श्रीपाल करे शुभ चित्त रे सो0 ।।
ए तो तेजे हुओ आदित्त रे सो0 खरचे बहुलो निज वित्त रे सो0ज0 ।।6।।

कोसंबी नयरी थकी रे लाल, तेड़ाव्यो धवलनो पुत्त रे सो0 ।
तेनु नाम विमल छे युत रे सो0 तेह सेठ कर्यो सुमुहूत्त रे सो0 ।
सोवन पट्ट बंध संयुत्त रे सो0 कीधा कोष ते अखय सुगुत्त रे सो0ज0 ।।7।।

उत्सव चैत्य अठाइयाँ रे लाल, विरचाये विधि सार रे सो0 ।
सिद्धचक्रनी पूजा उदार रे सो0 करे जाणी तस उपगार रे सो0 ।।
तेनो धर्मी सहु परिवार रे सो0 धर्मे उल्लसे तस दार रे सो0ज0 ।।8।।

चैत्य करावे तेहवा रे लाल, जेह स्वर्गचुं मांडे वाद रे सो0 ।
विधुमंडल अमृत आस्वाद रे सो0 ध्वज जीहे लिये अविवाद रे सो0 ।।
तेणे गाजे ते गुहिरे नाद रे सो0 मोड़े कुमतिना उन्माद रे सो0 जय0 ।।9।।

पड़ह अमारी वजाविया रे लाल, दीधा दान अनेक रे सो0 ।
साचविया सकल विवेक रे, सो0 समकितनी राखी टेक रे सो0 ।।
न्याये राम कहायो ते छेक रे, सो0 ते राजहंस बीजा भेक रे सो0ज0 ।।10।।

अचरिज एक तेणे कर्युं रे लाल, मनगुप्त गृहे हुता जेह रे सो0 ।
कर्णादिक नृप ससनेह रे, सो0 छोड़ाविया सघला तेह रे सो0 ।।
निज अद्‌भुत चरित अछेह रे सो0 देखावी निज गुण गेह रे सो0ज0 ।।11।।

श्रीपाल प्रतापथी तापियो रे लाल, विधि शयन करे अरविन्द रे, सो0 ।
करे जलधि वास मुकुंद रे सो0 हर गंग धरे निस्पंद रे, सो0 ।।
फरे नाठा सूरज चन्द रे, सो0 अरि सकल करे आक्रंद रे सो0ज0 ।।12।।

तस जस छे गंगा सारिखो रे लाल, तिहाँ अरि अपजस सेवाल रे. सो0 ।
कपूर मांहे अंगार रे सो0 अरविंद मांहे अलि बाल रे सो0 ।।
अन्योन्य संयोग निहाल रे, सो0 दिये कवि उपमा ततकाल रे सो0ज0 ।।13।।

सुरतरु स्वर्ग थी उतरी रे लाल, गया अगम अगोचर ठाम रे सोभागी ।
जिहां कोई न जाणे नाम रे, सो0 तिहाँ तपस्या करे अभिराम रे सो0 ।।
जब पाम्युं अद्‌भुत ठाम रे सो0 तस कर अंगुली हुआ ताम रे सो0ज0 ।।14।।

जस प्रताप गुण आगलो रे लाल, गिरुओ ने गुणवन्त रे सो0 ।
पाले राज महंत रे सो0 वयरी नो करे अन्त रे सो0 ।।
मुख पद्म सदा विकसंत रे सो0 लीला लहेर धरंत रे सो0ज0 ।।15।।

मेरु मवे जे अंगुले रे लाल, कुश अग्रे जलनिधि नीर रे सो0 ।
फरसे आकाश समीर रे सो0 तारागण गणित गंभीर रे सो0 ।
श्रीपाल सुगुणनो तीर रे सो0 ते पण नवि पामे धीर रे, सो0 ।।16।।

चोथे खंडे पूरी थई रे लाल, ए छट्ठी ढाल अभंग रे सो0 ।
इहां उक्ति ने युक्ति सुचंग रे सो0 नवपद महिमानो रंग रे, सो0 ।।
एहथी लहीये ज्ञान तरंग रे सो0 वती विनय सुयश सुख संग रे सो0ज0 ।।17।।

सातवीं ढाल

दोहा

एहवे राय ऋद्धि भलो, अजित सेन जसु नाम ।
ओहिनाण तस उपन्युं, शुद्ध चरण परिणाम ।।1।।
तिण नगरी ते आवियो, सुणी आगम उदंत ।
रोमांचित श्रीपाल नृप, हर्षित हुओ अत्यंत ।।2।।
वंदन निमित्ते आवियो, जननी भज्ज समेत ।
मुनि नमिय करिय प्रदिक्षणा, बेठो धर्म-संकेत ।।3।।
सुणवा वंछे धर्म ते, गुरु सन्मुख सुविनीत ।
गुरु पण तेहने देशना, दे नय समय अधीत ।।4।।

ढाल

(राग : हस्तिनाग-पुर वर भलो)

प्राणी वाणी जिन तणी तुम्हे धारो चित्त मझार रे ।
मोह मुंज्या मत फिरो, मोह मुके सुख निरधार रे ।।
मोह मूके सुख निरधार, संवेग गुण पालीये पुण्यवंत रे ।
पुण्यवंत अनंत विज्ञान, वदे इम केवली भगवंत रे ।।1।।
दश दृष्टान्ते दोहिलो, मानव-भव ते पण लद्ध रे ।
आर्य क्षेत्रे जनम जे, ते दुर्लभ सुकृत संबंध रे ।।2।।
आर्य क्षेत्र जनम हुओ पण, उत्तम कुल ते दुर्लभ रे ।
व्याधादिक कुले उपनो, सुं आरज क्षेत्रे अचंभ रे शु0 सं0 ।।3।।
कुल पामे पण दुल्लहो, रुप आरोग आउ समाज रे ।
रोगी रुप-रहित घणा, हीण आउ दीसे छे आज रे, ही0 ।।4।।
ते सवि पामे पण सही, दुलहो छे सु-गुरु संयोग रे ।
सघले क्षेत्रे नही सदा, मुनि पामीजे शुभ योग रे, शु0 ।।5।।
महोटे पुण्य पामियो, जो सद्गुरु संग सुरंग रे ।
तेर काठिया तो करे, गुरु दर्शन उत्सव भंग रे, गु0संवे0 ।।6।।

दर्शन पामे गुरु तणुं, धूर्त्त व्युद्ग्राहित चित्त रे ।
सेवा करी जन नवि शके, होय खोटो भाव अमित्त रे, से0सं0 ।।7।।
गुरु सेवा पुण्ये लही, पासे पण बेठा मित्त रे ।
धर्म श्रवण तोहे दोहिलुं, निद्रादिक दिये जो भित्त रे, नि0सं0 ।।8।।
पामी श्रुत पण दुल्लही, तत्त्वबुद्धि ते नरने न होय रे ।
शृंगारादि कथा रसे, श्रोता पण निज गुण खोय रे, श्रो0 सं0 ।।9।।
तत्त्व कहे पण दुल्लही, सद्दहणा जाणो संत रे ।
कोई निज मति आगल करे, कोई डामा डोल फिरंत रे को0सं0 ।।10।।
आप विचारे पामिये, कहो तत्त्व तणो किम अन्त रे ।
आलसुओ गुरु शिष्यनो, इहाँ भाव जो मन वृत्तांत रे, म0सं0 ।।11।।
बठर छात्र गज आवतां, जिम प्राप्त अप्राप्त विचार रे ।
करे न तेहथी उगरे, तेम आप मति निरधार रे, ते0सं0 ।।12।।
आगमने अनुमानथी, वली ध्यान रसे गुण गेह रे ।
करे जे तत्त्व गवेषणा, ते पामे नहिं संदेह रे, ते0सं0 ।।13।।
तत्त्व बोध ते स्पर्श छे, संवेदन अन्य स्वरूप रे ।
संवेदन वंध्ये हुई, जे स्पर्श ते प्राप्ति रूप रे, जे0सं0 ।।14।।
तत्त्व ते दशविध धर्म छे, खंत्यादिक श्रमणनो शुद्ध रे ।
धर्मनुं मूल दया कही, ते खंति गुणो अविरुद्ध रे, ते0सं0 ।।15।।
विनय वश छे गुण सवे, ते तो मार्दवने आयत्त रे ।
जेहने मार्दव मन वस्युं, तेणे सवि गुण-गण सम्पत्त रे ते0सं0 ।।16।।
आर्जव विण नवि शुद्ध छे, नवि धर्म आराधे अशुद्ध रे ।
धर्म विना नवि मोक्ष छे, तेणे ऋजु भावी होय बुद्ध रे ते0सं0 ।।17।।
द्रव्योपकरण देहनां, वली भक्त पान शुचि भाव रे ।
भाव शौच जिम नवि चले, तिम कीजे तास बनाव रे, ति0सं0 ।।18।।
पंचाश्रव थी विरमीये, इन्द्रिय निग्रहीजे पंच रे ।
चार कषाय त्रण दंड जे, तजिये ते संयम संच रे, त0सं0 ।।19।।
बांधव धन इन्द्रिय सुख तणो, वली भय विग्रह नो त्याग रे ।
अहंकार ममकारनो, जे करशे ते महाभाग रे, ते0सं0 ।।20।।
अविसंवादन जोग जे, वली तन मन वचन अमाय रे ।
सत्य चतुर्विध जिन कह्यो, बीजे दर्शने न कहाय रे, सं0 ।।21।।

षड्विध बाहिर तप कह्युं, अभ्यन्तर षड्विध होय रे ।
कर्म तपावे ते सही, पडिसोअ वृत्ति पण जोय रे ।सं0 ।।22।।
दिव्य औदारिक काम जे, कृत कारित अनुमति भेद रे ।
योग त्रिके तस वर्जवुं, ते ब्रह्म हरे सवि खेद रे ।सं0 ।।23।।
अध्यात्म वेदी कहे, मूर्च्छा ते परिग्रह भाव रे ।
धर्म अकिंचनने भण्यो, ते कारण भवजल नाव रे ।सं0 ।।24।।
पांच भेद छे खंतिना, उवयार-वयार विवाग रे ।
वचन धर्म तिहाँ तीन छे, लौकिक दोई अधिक सोभाग रे ।।सं0 ।।25।।
अनुष्ठान ते चार छे, प्रीति भक्ति ने वचन असंग रे ।
त्रण क्षमा छे दोय मां, अग्रिम दोयमां दोय चंग रे ।।सं0 ।।26।।
वल्लभ स्त्री जननी तथा, तेहना कृत्यमां जुओ राग रे ।
पड़िक्कमणादिक कृत्यमां, एम प्रीति भक्तिनो लाग रे ।।सं0 ।।27।।
वचन ते आगम आसरी, सहेजे थाय असंग रे ।
चक्र भ्रमण जिम दंडथी, उत्तर तदभावे चंग रे ।।सं0 ।।28।।
विष गरल अननुष्ठान छे, तद्हेतु वलि अमृत होय रे ।
त्रिक तजवा दोय सेववा, ए पांच भेद पण जोय रे ।।सं0 ।।29।।
विषक्रिया ते जाणीये, जे अशनादि उद्देश रे ।
विष ततखिण मारे यथा, तेम एहज भव फल लेश रे ।।सं0 ।।30।।
परभवे इन्द्रादिक ऋद्धिनी, इच्छा करतां गरल थाय रे ।
ते कालांतर फल दीए, मारे जिम हड़कियो वाय रे ।।सं0 ।।31।।
लोक करे तिम जे करे, उठे बेसे संमूर्छिम प्राय रे ।
विधि विवेक जाणे नहीं, ते अननुष्ठान कहाय रे ।।सं0 ।।32।।
तद्हेतु ते शुद्ध राग थी, विधि शुद्ध अमृत होय रे ।
सकंल विधान जे आचरे, ते दीसे विरला कोय रे ।।सं0 ।।33।।
करण प्रीति आदर घणो, जिज्ञासा जाणनो संग रे ।
शुभ आगम निर्विघ्नता, ए शुद्ध क्रियाना लिंग रे ।।सं0 ।।34।।
द्रव्यलिंग अनन्ता धर्या, करी क्रिया फल नवि लद्ध रे ।
शुद्ध क्रिया तो संपजे, पुद्गल आवर्त्तने अद्ध रे ।।सं0 ।।35।।
मारग अनुगति भाव जे, अपुनर्बंधकता लद्ध रे ।
क्रिया नवि उपसंपजे, पुद्गल आवर्त्तने अद्ध रे ।।सं0 ।।36।।

अरिहंत सिद्ध तथा भला, आचारज ने उवज्झाय रे ।
साधु नाण दंसण चरित, तव नवपद मुगति उपाय रे ।।सं0 ।।37।।
ए नवपद ध्यातां थकां, प्रगटे निज आतम रूप रे ।
आतम दरिसण जेणे कर्युं, तेणे मूंद्यो भव कूप रे ।।सं0 ।।38।।
क्षण अर्धे जे अघ टले, ते न टले भवनी कोड़ी रे ।
तपस्या करतां अति घणी, नहीं ज्ञान तणी जोड़ी रे ।।सं0 ।।39।।
आतम ज्ञाने मगन जे, ते सवि पुद्गलनो खेल रे ।
इन्द्रजाल करी लेखवे, न मिले तिहाँ देइ मनमेल रे ।।सं0 ।।40।।
जाण्यो ध्यायो आत्मा, आवरण रहित होय सिद्ध रे ।
आतम ज्ञान ते दुःख हरे, एहिज शिव हेतु प्रसिद्ध रे ।।सं0 ।।41।।
चौथे खंडे सातमी, ढाल पूरण थई ते खास रे ।
नवपद महिमा जे सुणे, ते पामे सुजस विलास रे ।।सं0 ।।42।।

आठवी ढाल

दोहा

इणी परे देइ देशना, रह्यो जाम मुनिचंद ।
तव श्रीपाल ते विनवे, धरतो विनय अमंद ।।1।।
भगवन् ! कहो कुण कर्मथी, बाल पणे मुज देह ।
महारोग ए उपनो, कुण सुकृते हुओ छेह ।।2।।
कवण कर्मथी में लही, ठाम ठाम बहु रिद्धि ।
कवण कुकर्मे हूं पड्यो, गुणनिधि जलनिधि जलमध्य ।।3।।
कवण नीच कर्मे हुओ, डूंबपणो मुनिराय ।
मुझने ए सवि किम हुओ, कहिए करी सुपसाय ।।4।।

आठवीं ढाल

(राग : सांभली आ गुण गावा, मुज मन हीरना रे)

सांभलजो हवे कर्म विपाक कहे मुनि रे, कांई कीधुं कीधुं कर्म न जाय रे ।
कर्म वशे होय सुख दुःख जीवने रे, कर्मथी बलियो को नवि थाय रे ।।सां0 ।।1।।
भरत क्षेत्रमां नयर हिरण्यपुरे हुओ रे, महीपति महोटो श्रीकांत रे ।
व्यसन तेहने लाग्युं आहेड़ातणु रे, कांई वारे राणी एकांत रे ।।सां0 ।।2।।
राणी तेहनी जाणो सुगुणा श्रीमती रे, समकित शीलनी रेख रे ।
जिनधर्मे मति रूड़ी कूड़ी नहीं मने रे, दाखे शीख विशेष रे ।।सां0 ।।3।।

पियु तुझने आहेड़े जावुं नवि घटे रे, जेहने केड़े छे नरकनी भीति रे ।
धरणी ने परणी बे लाजे तुज थकी रे, मांडी जेणे जीव हिंसानी अनीति ।।सां0 ।।4।।
मुख तृण दीधे अरिपण मुके जीवतो रे, एहवो छे रूढ़ो क्षत्रीनो आचार रे ।
तृण आहार सदा जे मृग पशु आचरे रे, तेहने मारे जे आहेड़े ते गमार रे ।।सां0 ।।5।।
ससलां नासे पासे नहीं आयुध धरे रे, राणी जाया बाणी तेहने केड़ रे ।
जे लागे ते आगे दुःख लहेशे घणा रे, नाठासुं बल न को क्षत्री वेढ रे ।।सां0 ।।6।।
अबल कुलाशी झखने निज द्रुम पीडतां रे, खगने मृगने तृणभक्षी ने दोष रे ।
हणतां नृपने न होय इम जे उपदिशे रे, तेणे कीधो तस हिंसक कुल पोष रे ।।सां0 ।।7।।
हिंसानी ते खिंसा सघले सांभली रे, हिंसा नवि रूढी किणही हेत रे ।
आप संतापे पर संतापे पापीयो रे, आहेड़ी ते जाणो कुलमां केत रे ।।सां0 ।।8।।
जाओ रसातल विक्रम जे दुर्बल हणे रे, ए तो लेश्या-कृष्णनो घन परिणाम रे ।
मूंडी करणीथी जग अपजस पामीये रे, लीहालो खातां मुख होवे श्याम रे ।।सां0 ।।9।।
एहवां राणीए वयण कह्याँ पण रायने रे, चित्त माँहे नवि जाग्यो कोई प्रतिबोध रे।
धन वरसे पण नवि भींजे मगसेलियो रे, मूरख ने हित उपदेशे होय क्रोध रे ।।सां0 ।।10।।
अन्य दिवसे शत सात उल्लंठे परवर्यो रे, मृगया संगी आव्यो गहन वन राय रे ।
मुनि तिहाँ देखी कहे व्याधे पीड्यो कोढीयो रे, उल्लंठ ते मारे देई घनघाय रे ।।सां0 ।।11।।
जिम ताड़े ते मुनि ने तिम नृपने हुवे रे, हास्य तणो रस मुनि मन ते रस शाँत रे ।
करी उपसर्गने मृगयाथी वल्या सातशे रे, नृप साथे ते पहोंता घर मन खाँत रे ।।सां0 ।।12।।
अन्य दिवस मृग पूंठे धायो एकलो रे, राजा मृगलो पैठो नइतट रान रे ।
मूलो नृप ते देखे नइतट साधुने रे, बोले नइ जलमाँ मुनि झाली कान रे ।।सां0 ।।13।।
कांईक करुणा आवी कढाव्यो नीरथी रे, घेर आवीने राणीने कही वात रे ।
सा कहे बीजानी पण हिंसा दुःख दीये रे, जनम अनंता दुःख दिये ऋषिघात रे ।।सां0 ।।14।।
राजा भाखे नवि करशुं फरी एहवुं रे, वीता केता इम वासर जाम रे ।
गोख थकी मुनि दीठो फिरतो गोचरी रे, विसारी राणीनी शिक्षा ताम रे ।।सां0 ।।15।।
नगरी विटाली भीखे कहे नृप उल्लंठने रे, काढो बाहिर एहने झाली कंठ रे ।
राणीए दीठा गोख थकी ते काढ़ता रे, राजाने आदेशे लागा लंठ रे ।।सां0 ।।16।।
राणी रूठी राजाने कहे शुं करो रे, पोतानु बोल्युं पालो न वचन्न रे ।
मुनि उपसर्गे सर्गे जावुं दोहिलुं रे, नरके जावा लाग्युं छे तुम मन्न रे ।।सां0 ।।17।।
नृप उपशमियो नमियो मुनि तेड़ी घरे रे, राणी भाखे राजा ए अन्नाण रे ।
मुनि उपसर्गे पाप कर्युं इणे मोटकुं रे, ए छूटे ते कहिये काँई विन्नाण रे ।।सां0 ।।18।।

सज्जन जे भूंडुं करता रूडुं करे रे, तेहना जगमां रहेशे नाम प्रकाश रे ।
आंबो पत्थर मारे तेहने फल दिये रे, चंदन आपे कापे तेहने वास रे ।।सां0 ।।19।।
मुनि कहे महोटा पातकनुं शुं पालणुं रे, तो पण जो होय एहनो भाव उल्लास रे ।
नवपद जपतां तपतां तेहनु तप भलुं रे, आराधे सिद्धचक्र होय अघ नाश रे ।।सां0 ।।20।।
पूजा तप विधि सीखी आराध्युं नृपे रे, राणी साथे ते सिद्धचक्र विख्यात रे ।
उजमणा मांहे आठे राणीनी सही रे, अनुमोदे वली नृपनुं तप शत सात रे ।।सां0 ।।21।।
अन्य दिवस ते गया सिंहनृप गामड़े रे, भांजी ते वलिया लई गोवग्ग रे ।
केड़ करीने सिंहे मार्या ते मरी रे, कोढ़ी हुओ खत्री मुनि उवसग्ग रे ।।सां0 ।।22।।
पुण्य प्रभावे राजा हुओ श्रीकांत तू रे, श्रीमती राणी मयणासुंदरी तुज्ज रे ।
कुष्टिपणुं जल मज्जन डूंबपणुं तुम्हे रे, पाम्युं ए मुनि आशातना फल गुज्ज रे ।।सां0 ।।23।।
सिद्धचक्र श्रीमती वयणे आराधियुं रे, तेहथी पाम्यो सघलो ऋद्धि विशेष रे ।
आठ सखी रानीनुं तप अनुमोदियुं रे, तेणे ते लघु देवी हुई तुझ शुभ वेष रे ।।सां0 ।।24।।
सांप खाओ तुझ आठमीये कह्युं श्लोक्यने रे, तेणे सांपे दंसी न टले पाप रे ।
धर्म प्रशंसा करी राणा हुआ ते सातसें रे, घात विधुर ते सिंह लिये व्रत आप रे ।।सां0 ।।25।।
मास अणसण अजितसेन ते हुं हुओ रे, बालपणे तुज राज हर्युं ते राण रे ।
बांधी पूरव वैरे तुझ आगल धरे रे, पूरव अभ्यासे मुझ आव्युं नाण रे ।।सां0 ।।26।।
जाति संभारी संयम ग्रही लही ओहिने रे, इहाँ आव्यो जेणे जेवा कीधा कर्म रे ।
तेहने तेहवां आव्या फल सुखदुःख तणा रे, सद्गुरु पाखे जाणे कुण ए मर्म रे ।।सां0 ।।27।।
चौथे खण्डे ढाल हुई ए आठमी रे, एहमां गायो नवपद महिमा सार रे ।
श्री जिन विनय सुजस लहीजे एहथी रे, जगमां होवे निश्चे जयजय कार रे ।।सां0 ।।28।।

नवमी ढाल

दोहा

इम सांभली श्रीपाल नृप, चिंते चित्त मझार ।
अहो अहो भव नाटके, लहिये इस्या प्रकार ।।1।।
कहे गुरू प्रते हवणां नथी, मुज चरित्रनी सत्ती ।
करी पसाय तिणे उपदिसो, उचित करण पडिवत्ति ।।2।।
वलतुं मुनि भाखे नृपति, निश्चय गति तू जोय ।
करम भोग फल तुज घणुं, इह भव चरण न होय ।।3।।
पण नवपद आराधतां, पामीश नवमुं सग्ग ।
नर सुर सुख क्रमे अनुभवी, नवमें भव अपवग्ग ।।4।।
ते सुणी रोमांचित हुओ, निज घर पहोंतो भूप ।
मुनि पण विहरंतो गयो, ठाणांतर अनुरूप ।।5।।

ढाल

(राग : कंत तमाकु परिहरो)

हवे नरपति श्रीपाल ते निज परिवार संयुत्त, मेरे लाल ।
आराधे सिद्धचक्रने, विधि सहित गृहीत सुमुहुत्त मेरे लाल, मननो महोटो मोजमां ।।1।।

मयणासुन्दरी त्यारे भणे, पूर्वे पूज्युं सिद्धचक्र, मेरे लाल ।
धन तो त्यारे थोडुं हतुं, हवणां तूं ऋद्धे शक्र मेरे लाल, मननो महोटो मोजमां ।।2।।

धन महोटे छोडुं करे, धर्म उजमणुं तेह मेरे लाल ।
फल पुरु पामे नहीं, मत करजो तिहां संदेह मेरे लाल, मननो महोटो मोजमां ।।3।।

विस्तारे नवपद तणी, तिणे पूजा करी सुविवेक मेरे लाल ।
धननो लाहो लीजिये, राखी महोटी टेक मेरे लाल, मननो महोटो मोजमां ।।4।।

मयणां वयणां मन धरी, गुरु भक्ति शक्ति अनुसार मेरे लाल ।
अरिहंतादिक नव पद भलां, आराधे ते सार मेरे लाल, मननो महोटो मोजमां ।।5।।

नव जिनघर नव पड़िमा भली, नव जिर्णोद्धार करावी मेरे लाल ।
नानाविध पूजा करी, जिन आराधन शुभ भाव मेरे लाल, मननो महोटो मोजमां ।।6।।

एम सिद्ध तणी प्रतिमा तणुं, पूजन त्रिहुं काल प्रणाम मेरे लाल ।
तन्मय ध्याने सिद्धनुं, करे आराधन अभिराम मेरे लाल, मननो महोटो मोजमां ।।7।।

आदर भगति ने वंदना, वैयावच्चादिक लग्ग, मेरे लाल ।
शुश्रूषा विधि सांचवी, आराधी सूरि समग्ग मेरे लाल, मननो महोटो मोजमां ।।8।।

अध्यापक भणतां प्रति, वसनाशन ठाण बन्या, मेरे लाल ।
द्विविध भगति करतो थको, आराधे नृप उवज्झाय मेरे लाल, मननो महोटो मोजमां ।।9।।

नमन वंदन अभिगमनथी, वसही अशनादिक दान, मेरे लाल ।
करतो वैयावच्च घणुँ, आराधे मुनिपद ठाण मेरे लाल, मननो महोटो मोजमां ।।10।।

तीर्थ यात्रा करी अति घणी, संघ पूजा ने रहजत्त ।मे0 ।
आराधे दर्शनपद भलुँ, शासन उन्नति दृढ़ चित्त ।मे0म0 ।।11।।

सिद्धान्त लिखावी तेहने, पालन अर्चादिक हेत ।मे0 ।
नाण-पद आराधन करे, सज्झाय उचित मन देत ।मे0म0 ।।12।।

व्रत नियमादिक पालतो, विरतीनी भक्ति करंत ।मे0 ।
आराधे चारित्र धर्मने, रागी यतिधर्म एकंत ।मे0म0 ।।13।।

तजी इच्छा इह परलोकनी, हुई सघले अप्रतिबद्ध ।मे0।
षट् बाह्य अभ्यन्तर षट् करी, आराधे तव पद शुद्ध ।मे0म0 ।।14।।

उत्तम नवपद द्रव्य भावथी, शुभ भक्ति करी श्रीपाल ।मे0 ।
आराधे सिद्धचक्र ने, नित पामे मंगल माल ।मे0म0 ।।15।।
इम सिद्धचक्रनी सेवना, करे साढ़ा चार ते वर्ष ।मे0 ।
हवे उजमणा विधि तणो, पूरे तप उपनो हर्ष ।मे0म0 ।।16।।
चोथे खंडे पूरी थई, ढाल नवमी चढ़ते रंग ।मे0 ।
विनय सुजस सुख ते लहे, सिद्धचक्र थुणे जे चंग ।मे0म0 ।।17।।

दसवीं ढाल

दोहा

हवे राजा निज राजनी, लच्छी तणे अनुसार ।
उजमणुं तेह तपतणुं, मांडे अतिही उदार ।।1।।

ढाल

(राग : भोलीड़ा हंसा रे विषय न राचिये)

विस्तीरण जिन भवन विरचिये, पुण्य त्रिवेदिक पीठ ।
चंद्र चंद्रिका रे धवल भुवन तले, नवरंग चित्र विसीट्ठ ।।1।।
तप उजमणुं रे इणि परे कीजिये, जिम विरचे रे श्रीपाल ।
तप फल वाधे रे उजमणे करी, जेम जल पंकज नाल ।।तप0 इ0 ।।2।।
पंच वरणना रे शालि प्रमुख भला, मंत्र पवित्र करी धान्य ।
सिद्धचक्रनी रे रचना तिहां करे, संपूर्ण शुभ ध्यान ।।तप0 इ0 ।।3।।
अरिहंतादिक नवपदने विषे, श्रीफल गोल ठवंत ।
सामान्ये घृत खण्ड सहित सवे, नृप मन अधिको रे खन्त ।।तप0इ0 ।।4।।
जिनपद धवलुं रे गोलक ते ठवे, शुचि कर्केतन अट्ठ ।
चोत्रीश हीरे रे सहित बिराजतुं, गिरुओ सुगुण गरिट्ठ ।।तप0 इ0 ।।5।।
सिद्धपदे अड़ माणिक रातड़ा, वली इगतीस प्रवाल ।
घृषण विलेपित गोलक तस ठवे, मूरति राग विशाल ।।तप0 इ0 ।।6।।
पण मणि पीत छत्रीश गोमेदके, सूरिपदे ठवे गोल ।
नील रयण पचवीस पाठक पदे, ठवे विपुल रंगरोल ।।तप0 इ0 ।।7।।
रिष्ट रतन सगवीस ते मुनि पदे, पंच राज पट अंक ।
सगसट्ठि इगवन्न सित्तरी पंचास ते, मुगताशेष नि:शंक ।।तप0 इ0 ।।8।।
ते ते वरणे रे चीरादिक ठवे, नवपद तणे रे उद्देश ।
बीजी पण सामग्री मोटकी, मांडे तेह नरेश ।।तप0 इ0 ।।9।।

बीजोरां खारेक दाड़िम भलां, कोहोलां सरस नारंग ।
पूंगी-फल वली कलश कंचन तणा, रतन पुंज अतिचंग ।।तप0 इ0।।10।।
जे जे ठामे रे जे ठववुं घटे, ते ते ठवे रे नरिंद ।
ग्रह दिग्पाल पदे फल फूलडां, धरे स-वरण आनन्द ।।तप0 इ0।।11।।
गुरु विस्तारे रे उजमणुँ करी, न्हवण उत्सव करे राय ।
आठ प्रकारी रे जिन-पूजन करे, मंगल अवसर थाय ।।तप0 इ0 ।।12।।
संघ तिवारे रे तिलक माला तणुं, मंगल नृप ने करेई ।
श्री जिन माने रे संघे जे कर्युं, मंगल ते शिव देई ।।तप0 इ0 ।।13।।
तप उजमणे रे वीर्य उल्लास जे, तेहज मुक्ति निदान ।
सर्व अभव्ये रे तप पूरा कर्या, पण नाव्युँ प्रणिधान ।।तप0 इ0 ।।14।।
लघु कर्मीने रे किरिया फल दिये, सफल सु-गुरु उवएस ।
सेर होये तिहां कूप खनन घटे, नहीं तो होय किलेश ।।तप0 इ0।।15।।
सफल हुवो सवि नृप श्रीपाल ने, द्रव्य भाव जस शुद्ध ।
मत कोई राचो रे काचो मत लेई साचो बिहुं नय बुद्ध ।। तप0 इ0।।16।।
चोथे खंडे रे दशमी ढाल ए, पूरण हुई सुप्रमाण ।
श्रीजिन विनय सुजस भगति करो, पग पग होई कल्याण ।।तप0 इ0।।17।।

ग्यारहवीं ढाल

दोहा

नमस्कार कहे एहवा, हवे गंभीर उदार ।
योगीसर पण जे सुणी, चमके हृदय मझार ।।1।।

(राग : छप्पय छंद-श्री सिद्धचक्र स्तवन)

जो धुरि सिरि अरिहंत मूल, दृढ पीठ पइट्ठिओ ।
सिद्ध सूरि उवज्झाय साहु, चिहुं पास गरिट्ठिओ ।।1।।
दंसण नाण चरित्त तवहि, पड़िसाहा सुंदरु ।
तत्तक्खर सरवग्ग लद्धि, गुरु पयदल दूंबरु ।।2।।
दिसिवाल जक्ख जक्खिणि पमुह, सुरकुसुमेहिं अलंकिओ ।
सो सिद्धचक्क गुरु कप्पतरु, अम्ह मनवंछिअ फल दिओ ।।3।।

दोहा

नमस्कार कही उच्चरी, शक्रस्तव श्रीपाल ।
नवपद स्तवन कहे मुदा, स्वर पद वर्ण विशाल ।।1।।

मंगल तूर बजावते, नाचंते वर पात्र ।
गायंते बहु विध धवल, बिरुद पढंते छात्र ।।2।।
संघ पूजा साहमि-वच्छल, करो तेह नर नाथ ।
शासन जैन प्रभावतो, मेले शिवपुर साथ ।।3।।
पट-देवी परिवार अन्य, साथे अविहड राग ।
आराधे सिद्धचक्र ने, पामे भवजल ताग ।।4।।
त्रिभुवन पालादिक तनय, मयणादिक संयोग ।
नव निरुपम गुण निधि हुआ, भोगवतां सुख भोग ।।5।।
गय रह सहस ते नव हुआ, नव लख जच्च तुरंग ।
पत्ति हुआ नव कोड़ि तस, राज नीति नव रंग ।।6।।
राजनिकंटक पालता, नव शत वर्ष विलीन ।
थापी तिहुअण पाल ने, नृप हुओ नवपद लीन ।।7।।

ढाल

(राग : श्री सिमंधर साहेब आगे)

तीजेभवे वर स्थानक तप करी, जेणे बांध्युँ जिन नाम रे ।
चौसट्ठि इन्द्रे पूजित जे जिन, किजे तास प्रणाम रे ।
भविका सिद्धचक्र पद वंदो, जिम चिरकाले नंदो रे ।।भ0 सि0 ।।1।।
जेहने होय कल्याणक दिवसे, नरवेः पण अजुवालु ।
सकल अधिक गुण अतिशयधारी, ते जिन नमि अघ टालुं रे ।।भ0 सि0।।2।।
जे तिहु नाण समग्ग उप्पन्ना, भोग करम क्षीण जाणी ।
लेई दीक्षा शिक्षा दिये जनने, ते नमिये जिन नाणी रे ।। भ0 सि0 ।।3।।
महागोप, महा माहण कहिये, निर्यामक सत्थवाह ।
उपमा एहवी जेहने छाजे, ते जिन नमिये उच्छाह रे ।।भ0 सि0 ।।4।।
आठ प्रातिहारज जस छाजे, पांत्रीस गुण युत वाणी ।
जे प्रतिबोध करे जग जनने, ते जिन नमिये प्राणी रे ।।भ0 सि0 ।।5।।
समय पएसंतर अण फरसी, चरम तिभाग विशेष ।
अवगाहन लही जे शिव पहोता, सिद्ध नमो ते अशेष रे ।।भ0 सि0 ।।6।।
पूर्व प्रयोग ने गति परिणामे, बन्धन छेद असंग ।
समय एक उर्ध्व गति जेहनी, ते सिद्ध प्रणमो रंग रे ।।भ0 सि0 ।।7।।
निर्मल सिद्धशिलाने उपरे, जोयण एक लोगंत ।
सादि अनन्त तिहां स्थिति जेहनी, ते सिद्ध प्रणमो संत रे ।।भ0सि0 ।।8।।

जाणे पण न शके कहीं पुरगण, प्राकृत तिम गुण जास ।
उपमा विण नाणी भव मांहे, ते सिद्ध दियो उल्लास रे ।।भ0 सि0 ।।9।।
ज्योति शुं ज्योति मिली जस अनुपम, विरमी सकल उपाधि ।
आतमराम रमापति समरो, ते सिद्ध सहज समाधि रे ।।भ0 सि0 ।।10।।
पंच आचार जे सुधा पाले, मारग भाखे साचो ।
ते आचारज नमिये तेहशुं, प्रेम करीने जाचोरे ।।भ0 सि0 ।।11।।
वर छत्तीस गुणे करी सोहे, युगप्रधान जन मोहे ।
जग बोहे न रहे खिण कोहे, सूरि नमुं ते जोहे रे ।।भ0 सि0 ।।12।।
नित्य अप्रमत्त धर्म उवएसे, नही विकथा न कषाय ।
जेहने ते आचारिज नमिये, अकलुष अमल अमाय रे ।।भ0 सि0 ।।13।।
जे दिये सारण वारण चोयण, पड़िचोयण वली जनने ।
पटधारी गच्छ थंभ आचारज, ते मान्या मुनि मनने रे ।।भ0 सि0 ।।14।।
अत्थमिये जिन सूरज केवल, चंदे जे जगदीवो ।
भुवन पदार्थ प्रगटन पटु ते, आचारज चिरंजीवो रे ।।भ0सि0 ।।15।।
द्वादश अंग सज्झाय करे, पारग धारक तास ।
सूत्र अरथ विस्तार रसिक ते, नमो उवज्झाय उल्लास रे ।।भ0 सि0 ।।16।।
अर्थ सूत्र ने दान विभागे, आचारज उवज्झाय ।
भव त्रण्ये लहे जे शिव संपद, नमिये ते सुपसाय रे ।।भ0सि0 ।।17।।
मूरख शिष्य निपाइ जे प्रभु, पहाणने पल्लव आणे ।
ते उवज्झाय सकल जिन पूजित, सूत्र अरथ सवि जाणे रे ।।भ0 सि0 ।।18।।
राजकुंवर सरिखा गण चिंतक, आचारिज पद जोग ।
जे उवज्झाय सदा ते नमतां, नावे भव भय शोक रे ।।भ0सि0 ।।19।।
बावना चंदन रस सम वयणे, अहित ताप सवि टाले ।
ते उवज्झाय नमिजे जे वली, जिनशासन अजुआले रे ।।भ0 सि0 ।।20।।
जिम तरु फूले भमरो बेसे, पीड़ा तस न उपावे ।
लेइ रस आतम संतोषे, तिम मुनि गोचरी जावे रे ।।भ0सि0 ।।21।।
पंच इन्द्रिय ने कषाय निरूंधे, षट् कायक प्रतिपाल ।
संयम सत्तर प्रकार आराधे, वंदो तेह दयाल रे ।।भ0 सि0 ।।22।।
अढार सहस शीलांगना धोरी, अचल आचार चरित्र ।
मुनि महंत जयणा युत वांदी, कीजे जन्म पवित्र रे ।।भ0 सि0 ।।23।।

नवविध ब्रह्म गुप्ति जे पाले, बारस विह तप शूरा ।
एहवा मुनि नमिये जो प्रकटे, पूरव पुण्य अंकुरा रे ।।भ0सि0 ।।24।।
सोना तणी परे परीक्षा दीसे, दिन दिन चढते वाने ।
संयम खप करता मुनि नमिये, देश काल अनुमाने रे ।।भ0सि0 ।।25।।
शुद्ध देव गुरु धर्म परीक्षा, सद्दहणा परिणाम ।
जेह पामीजे तेह नमीजे, सम्यग्दर्शन नाम रे ।।भ0 सि0 ।।26।।
मल उपशम क्षयउपशम क्षयथी, जे होय त्रिविध अभंग ।
सम्यग्दर्शन तेह नमीजे, जिन धर्मे दृढ रंग रे ।।भ0 सि0 ।।27।।
पंचवार उपशमिय लहीजे, क्षय उपशमिय असंख ।
एकवार क्षायिक ते समकित, दर्शन नमिये असंख रे ।।भ0सि0 ।।28।।
जे विण नाण प्रमाण न होये, चारित्र तरु नवि फलियो ।
सुख निर्वाण न जे विण लहिये, समकित दर्शन बलियो रे ।।भ0 सि0 ।।29।।
सड़सट्ठ बोले जे अलंकरियो, ज्ञान चारित्रनु मूल ।
समकित दर्शन ते नित्य प्रणमुं, शिव पंथनुं अनुकूल रे ।।भ0सि0 ।।30।।
भक्ष अभक्ष न जे विण लहिये, पेय अपेय विचार ।
कृत्य अकृत्य न जे विण लहिये, ज्ञान ते सकल आधार रे ।।भ0सि0 ।।31।।
प्रथम ज्ञान ने पछी आहिंसा, श्री सिद्धान्ते भाख्युं ।
ज्ञान ने वंदो ज्ञान म निंदो, ज्ञानी ए शिव सुख चाख्युं रे ।।भ0सि0 ।।32।।
सकल क्रिया नुं मूल ते श्रद्धा, तेहनुं मूल जे कहिये ।
तेह ज्ञान नित नित वंदीजे, ते विण कहो किम रहिये रे ।।भ0 सि0 ।।33।।
पंच ज्ञान मांहे जेह सदागम, स्व पर प्रकाशक जेह ।
दीपक परे त्रिभुवन उपकारी, वली जेम रवि शशि मेह रे ।।भ0सि0 ।।34।।
लोक उरध अधो तिर्यग् ज्योतिष, वैमानिक ने सिद्ध ।
लोकालोक प्रकट सवि जेहथी, ते ज्ञाने मुज शुद्धि रे ।।भ0सि0 ।।35।।
देशविरति ने सर्वविरति जे, गृही यतिने अभिराम ।
ते चारित्र जगत जयवंतु, कीजे तास प्रणाम रे ।।भ0सि0 ।।36।।
तृण परे जे षट् खण्ड सुख छंडी, चक्रवर्ती पण वरियो ।
ते चारित्र अक्षय सुखकारण, ते में मन मांहे धरियो रे ।।भ0सि0 ।।37।।
हुआ रांक पणे जेह आदरी, पूजित इंद नरिंदे ।
अशरण शरण चरण ते वंदु, पूर्युं ज्ञान आनंदे रे ।।भ0सि0 ।।38।।

बार मास पर्याये जेह ने, अनुत्तर सुख अति क्रमिये ।
शुक्ल शुक्ल अभिजात्य ते उपर, ते चारित्रने नमिये रे ।।भ0सि0 ।।39।।
चय ते आठ कर्मनो संचय, रिक्त करे जे तेह ।
चारित्र नाम निरुते भाख्युं, ते वंदुं गुण गेह रे ।।भ0सि0 ।।40।।
जाणंता त्रिहुँ ज्ञाने संयुत, ते भव मुक्ति जिणंद ।
जेह आदरे कर्म खपेवा, ते तप शिवतरुं कंद रे ।।भ0 ।।41।।
करम निकाचित पण क्षय जाइ, क्षमा सहित जे करता ।
ते तप नमिये जेह दीपावे, जिन शासन उजमता रे ।।भ0 ।।42।।
आमोसही पमुहा बहुलद्धि, होवे जास प्रभावे ।
अष्ट महासिद्धि नव निधि प्रकटे, नमिये ते तप प्रभावे रे ।।भ0 ।।43।।
फल शिव सुख महोटुं सुर नरवर, संपत्ति जेहनुं फूल ।
ते तप सुरतरु सरीखो वंदुं, शम मकरंद अमूल रे ।।भ0 ।।44।।
सर्व मंगल मांहि पहेलु मंगल, वरणवियो जे ग्रंथे ।
तप पद त्रिहुँ काल नमीजे, वर सहाय शिव पंथे रे ।।भ0 ।।45।।
एम नवपद थुणतो तिहां लीनो, हुओ तनमय श्रीपाल ।
'सुजस' विलासे चौथे खण्डे, एह अग्यारमी ढाल रे ।।भ0 ।।46।।

दोहा

इम नवपद थुणतो थको, ते ध्याने श्रीपाल ।
पाम्यो पूरण आउखे, नवमो कल्प विशाल ।।1।।
राणी मयणा प्रमुख सवि, माता पण शुभ ध्यान ।
आउखे पूरे तिहाँ, सुख भोगवे विमान ।।2।।
नर भव अंतर स्वर्ग ते, चार बार लही सर्व ।
नवमें भव शिव पामशे, गौतम कहे निर्गर्व ।।3।।
ते निसुणी श्रेणिक कहे, नवपद उलसित भाव ।
अहो नवपद महिमा बड़ो, ए छे भव जल नाव ।।4।।
वलतु गौतम गुरु कहे, एक एक पद भक्ति ।
देवपाल प्रमुख सुख लह्या, नवपद महिमा तहत्ति ।।5।।
किं बहुना मगधेश तूं, इक पद भक्ति प्रभाव ।
होइश तीर्थंकर प्रथम, निश्चय ए मन भाव ।।6।।

गौतम वचन सुणी इस्या, उठे मगध नरिंद ।
वधामणी आवी तदा, आव्या वीर जिणंद ।।7।।
देवे समवसरण रच्युँ, कुसुम वृष्टि तिहाँ कीध ।
अंबर गाजे दुंदभि, वर अशोक सुप्रसिद्ध ।।8।।
सिंहासन माड्युं तिहां, चामर छत्र ढलंत ।
दिव्य ध्वनि दिये देशना, प्रभु भामंडलवंत ।।9।।
वधामणी देई वांदवा, आव्यो श्रेणिक राय ।
वांदी बेठो परषदा, उचित स्थानके आय ।।10।।
श्रेणिक उद्देशी कहे, नवपद महिमा वीर ।
नवपद सेवी बहु भविक, पाम्या भवजल तीर ।।11।।
आराधननुं मूल जस, आतम भाव अछेह ।
तिणे नवपद जे आतमा, नवपद मांहे तेह ।।12।।
ध्येय सभापति हुए, ध्याता ध्यान प्रमाण ।
तिणे नवपद छे आतमा, जाणे कोई सुजाण ।।13।।
लही असंग क्रिया बले, जस ध्याने जिण सिद्धि ।
तिणे तेहवुं पद अनुभव्यो, घट मांहि सकल समृद्धि ।।14।।

बारहवीं ढाल

(राग : स्वामी सीमंधर उपदिशे)

अरिहंत पद ध्यातो थको, दव्वह गुण पज्जाय रे ।
भेद छेद करी आतमा, अरिहंत रूपी थाय रे ।।1।।
वीर जिनेश्वर उपदिशे, सांभलजो चित्त लाई रे ।
आतम ध्याने आतमा, ऋद्धि मिले सवि आई रे ।।2।।वी0
रूपातीत स्वभाव जे, केवल दंसण नाणी रे ।
ते ध्याता निज आजमा, होय सिद्ध गुण खाणी रे ।।3।।वी0
ध्याता आचारज भला, महामंत्र शुभ ध्यानी रे ।
पंच प्रस्थाने आतमा, आचारज होय प्राणी रे ।।4।। वी0
तप सज्झाए रत सदा, द्वादश अंगना ध्याता रे ।
उपाध्याय ते आतमा, जगबंधव जग भ्राता रे ।।5।। वी0
अप्रमत्त जे नित्य रहे, नवि हरखे नवि शोचे रे ।
साधु सुधा ते आतमा शुं मुंडे शुं लोचे रे ।।6।। वी0

शम संवेगादिक गुणा, क्षय उपशम जे आवे रे ।
दर्शन तेहि ज आतमा, शुं होय नाम धरावे रे ।।7।। वी0
ज्ञानावरणी जे कर्म छे, क्षय उपशम तस थाय रे ।
तो हुए एहि ज आतमा, ज्ञान अबोधता जाय रे ।।8।। वी0
जाण चारित्र ते आतमा, निज स्वभावमां रमतो रे ।
लेश्या शुद्ध अलंकर्यो, मोह वने नहीं भमतो रे ।।9।। वी0
इच्छारोधे संवरी, परिणति समता योगे रे ।
तप ते एहि ज आतमा, वरते निज गुण भोगे रे ।।10।। वी0
आगम नोआगम तणो, भाव ते जाणो सांचो रे ।
आतम भावे थिर होजो, परभावे मत राचो रे ।।11।। वी0
अष्ट सकल समृद्धिनी, घट मांहे ऋद्धि दाखी रे ।
तिम नवपद ऋद्धि जाणजो, आतम राम छे साखी रे ।।12।।वी0
योग असंख्य छे जिन कह्या, नवपद मुख्य ते जाणो रे ।
एह तणे आलंबने, आत्म ध्यान प्रमाणो रे ।।13।। वी0
ढाल बारमी एहवी, चोथे खण्डे पूरी रे ।
वाणी वाचक जस तणी, कोई नये न अधूरी रे ।।14।। वी0

तेरहवीं ढाल

दोहा

वचनामृत जिन वीरना, निसुणी श्रेणिक भूप ।
आनंदित पहोता घरे, ध्यातो शुद्ध स्वरूप ।।1।।
कुमति तिमिर सवि टालतो, वर्धमान जिन भाण ।
भविक कमल पड़िबोहतो, विहरे महियल जाण ।।2।।
ए श्रीपाल नृपति कथा, नवपद महिमा विशाल ।
भणे गुणे जे सांभले, तस घर मंगल माल ।।3।।

ढाल

(राग : धनाश्री, थुणियो थुणियो रे प्रभु)

तूठो तूठो रे मुझ साहिब जगनो तूठो, ए श्रीपाल रास करंता ज्ञान अमृतरस वूठो रे ।।1।।
पायसमां जिम वृद्धिनुं कारण, गोयमनो अंगूठो ।
ज्ञान मांहि अनुभव तिम जाणो, ते विण ज्ञान ते झूठो रे ।।मु0 ।।2।।

उदकपयोमृत कल्प ज्ञान तिहां, त्रीजो अनुभव मीठो ।
ते विण सकल तृषा किम भांजे, अनुभव प्रेम गरिठो रे ।।मु0 ।।3।।
प्रेम तणी परे सीखो साधो, जोई शेलड़ी सांठो ।
जिहां गांठ तिहां रस नवि दीसे, जिहां रस तिहां नवि गांठो ।।मु0 ।।4।।
जिनही पाया तिनही छिपाया, ए पण एक छे चीठो ।
अनुभव मेरु छिपे किम महोटो, ते तो सघलो दीठो रे ।।मु0 ।।5।।
पूरव लिखित लिखे सवि लेई, मिसी कागल ने कांठो ।
भाव अपूरव कहे ते पंडित, बहु बोले ते बांठो रे ।।मु0 ।।6।।
अवयव सवि सुन्दर होय देहे, नावे दिसे चाठो ।
ग्रन्थ ज्ञान अनुभव विण तेहवुं, शुक जिस्यो श्रुत पाठो रे ।।मु0 ।।7।।
संशय नवि भांजे श्रुतज्ञाने, अनुभव निश्चय जेठो ।
वाद विवाद अनिश्चित करतो, अनुभव विण जाय हेठो रे ।।मु0 ।।8।।
जिम जिम बहु श्रुत बहु जन संमत, बहुल शिष्यनो शेठो ।
तिम तिम जिन शासननो वयरी, जो नवि अनुभव नेठो रे ।।मु0 ।।9।।
माहरे तो गुरु चरण पसाए, अनुभव दिलमांहि पेठो ।
ऋद्धि वृद्धि प्रकटी घटमांहि, आतम रति हुई बेठो रे ।।मु0 ।।10।।
उग्यो समकित रवि झलहलतो, भरम तिमिर सवि नाठो रे ।
तगतगता दुर्नय जे तारा, तेहनो बल पण धाठो रे ।।मु0 ।।11।।
मेरु धीरता सवि हर लीनी, रह्यो ते केवल भाठो ।
हरि सुरघट सुरतरु की शोभा, ते तो माटी काठो रे ।।मु0 ।।12।।
हरव्यो अनुभव जोर हतो जे, मोह मल्ल जग लूंठो ।
परि परि तेहना मर्म देखावी, भारे कीधो भूंठो रे ।।मु0 ।।13।।
अनुभव गुण आव्यो निज अंगे, मिट्यो निज रूप मांठो ।
साहिब सन्मुख सुनजरे जोता, कोण थाये उपरांठो रे ।।मु0 ।।14।।
थोड़े पण दंभे दुःख पाम्या, पीठ अने महापीठो रे ।
अनुभववंत ते दंभ न राखे, दंभ धरे ते धीठो रे ।।मु0 ।।15।।
अनुभववंत ते अदंभनी रचना, गायो सरस सुकंठो रे ।
भाव सुधारस ते घट घट पीयो, हुओ पूरण उत्कंठो रे ।।मु0 ।।16।।

कलश

(राग : धनाश्री)

तपगच्छ नंदन सुरतरु प्रगट्यो, हीरविजय गुरुराया जी ।
अकबर बादशाहे जस उपदेशे, पड़ह अमारि बजाया जी ।।1।।
हेम सूरि जिन शासन मुद्राये, हेम समान कहाया जी ।
जाचो हीरो जे प्रभु होता, शासन सोह चढ़ाया जी ।।2।।
तास पटे पूर्वाचल उदयो, दिनकर तुल्य प्रतापी जी ।
गंगाजल निर्मल जस कीरति, सघले जगमांही व्यापी जी ।।3।।
शाह सभामांहे वाद करीने, जिन मत थिरता थापी जी ।
बहु आदर जस शाहे दीधो, बिरुद सवाई आपी जी ।।4।।
श्री विजयसेन सूरि तस पटधर, उदया बहु गुणवंता जी ।
जास नाम दश दिशि छे चावुं, जे महिमाए महंताजी ।।5।।
श्री विजयप्रभ तस पटधारी, सूरी प्रतापे छाजे जी ।
एह रासनी रचना कीधी, सुंदर तेहने राजेजी ।।6।।
सूरि हीरगुरुनी बहु कीरति, कीर्तिविजय उवज्झायाजी ।
शिष्य तास श्री विनयविजयवर, वाचक विनय सुगुण सोहायाजी ।।7।।
विद्या विनय विवेक विचक्षण, लक्षण लक्षित देहाजी ।
शोभागी गीतारथ सारथ, संगत सखर सनेहाजी ।।8।।
संवत सतर अड़त्रीस वरसे, रही रांदेर चोमासे जी ।
संघतणा आग्रहथी मांड्यो, रास अधिक उल्लासेजी ।।9।।
सार्ध-सप्तशत गाथा विरची, पहोता ते सुरलोके जी ।
तेना गुण गाए छे गोरी, मिलि मिलि थोके थोके जी ।।10।।
तास विश्वास भाजन तस पूरण, प्रेम पवित्र कहायाजी ।
श्री नयविजय विबुध पय सेवक, सुजसविजय उवज्झायाजी ।।11।।
भाग थाकतो पूरण कीधो, तास वचन संकेते जी ।
तिणे वली समकित दृष्टि जे नर, तेह तणे हित हेतेजी ।।12।।
जे भावे ए भणशे गुणशे, तस घर मंगल माला जी ।
बंधुर सिंधुर सुन्दर मन्दिर, मणिमय झाकझमालाजी ।।13।।
देह सबल ससनेह परिच्छद, रंग अभंग रसालाजी ।
अनुक्रमें तेह महोदय पदवी, लहेशे ज्ञान विशालाजी ।।14।।

प्रवचन प्रभावक मरुधररत्न-हिन्दी साहित्यकार पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय श्री रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा. का बहुरंगी-वैविध्यपूर्ण साहित्य

तत्त्वज्ञान विषयक	S.No.
1. जैन विज्ञान	38
2. चौदह गुणस्थान	96
3. आओ ! तत्त्वज्ञान सीखें	79
4. कर्म विज्ञान	102
5. जीव विचार विवेचन	123
6. नव तत्त्व-विवेचन	122
7. दंडक-विवेचन	135
8. तीन-भाष्य	127
9. ध्यान साधना	153
10. लघु संग्रहणी (जैन भूगोल)	194
11. कर्मग्रंथ भाग-2	196
12. कर्मग्रंथ भाग-3	197
13. पाँचवाँ-कर्मग्रंथ	204
14. छठा-कर्मग्रंथ	205

प्रवचन साहित्य	S.No.
1. मानवता तब महक उठेगी	8
2. मानवता के दीप जलाएं	9
3. महाभारत और हमारी संस्कृति-भाग-1	18
4. महाभारत और हमारी संस्कृति-भाग-2	19
5. रामायण में संस्कृति का अमर संदेश-भाग-1-2	27-28
7. आओ ! श्रावक बनें !	45
8. सफलता की सीढ़ियाँ	53
9. नवपद प्रवचन	56
10. श्रावक कर्तव्य-भाग-1	74
11. श्रावक कर्तव्य-भाग-2	75
12. प्रवचन रत्न	78
13. प्रवचन मोती	72
14. प्रवचन के बिखरे फूल	103
15. प्रवचनधारा	67
16. आनन्द की शोध	33
17. भाव श्रावक	85
18. पर्युषण अष्टाह्निका प्रवचन	97
19. कल्पसूत्र के हिन्दी प्रवचन	104
20. संतोषी नर-सदा सुखी	87
21. जैन पर्व-प्रवचन	115
22. गुणवान बनो	126
23. सुखी जीवन की चाबियाँ	137
24. पांच प्रवचन	138
25. जीवन शणगार प्रवचन	148
26. आओ ! दुर्ध्यान छोड़े !! भाग-1	169
27. आओ ! दुर्ध्यान छोड़े !! भाग-2	170
28. गागर में सागर	173
29. श्रावकाचार-प्रवचन-भाग-1	176
30. श्रावकाचार-प्रवचन-भाग-2	177
31. नवपद आराधना	182
32. प्रवचन-वर्षा	199
33. प्रेरक-प्रवचन	203

धारावाहिक कहानी	S.No.
1. कर्मन् की गत न्यारी	6
2. जिन्दगी जिन्दादिली का नाम है	10
3. तब आंसु भी मोती बन जाते है	24
4. गौतम स्वामी-जंबूस्वामी	46
5. कर्म को नहीं शर्म	49
6. कर्म नचाए नाच	76
7. आग और पानी भाग-1-2	34-35
8. तेजस्वी सितारे	58

छोटी छोटी कहानियां	S.No.
1. मनोहर कहानियाँ	50
2. ऐतिहासिक कहानियाँ	57
3. प्रेरक-कहानियाँ	91
4. सरस कहानियाँ	111
5. मधुर कहानियाँ	98
6. सरल कहानियाँ	142
7. आदर्श कहानियाँ	198

विधि-विधान उपयोगी	S.No.
1. आओ ! प्रतिक्रमण करें	42
2. आओ ! श्रावक बनें	45
3. हंस श्राद्धव्रत दीपिका	48
4. Chaitya-Vandan Sootra	52

5. विविध-देववंदन 55
6. आओ ! पौषध करें 71
7. आओ ! पूजा पढाएँ ! 88
8. Panch Pratikraman Sootra 61
9. शत्रुंजय यात्रा 36
10. प्रतिक्रमण उपयोगी संग्रह 73
11. आओ ! उपधान-पौषध करें 109
12. विविध-तपमाला 128
13. आओ ! भावयात्रा करें भाग-1 130
14. आओ ! भावयात्रा करें भाग-2 166
15. आओ ! पर्युषण-प्रतिक्रमण करें 136
16. जैन संघ-व्यवस्था 187

पू.पंन्यासजी म.का साहित्य S.No.

1. वात्सल्य के महासागर 1
2. रिमझिम रिमझिम अमृत बरसे 15
3. अध्यात्मयोगी पूज्य गुरुदेव 44
4. बीसवीं सदी के महान् योगी 100
5. अजातशत्रु अणगार 161
6. महामंत्र की साधना 160
7. नवकार-चिंतन 168
8. बीसवीं सदी के महान् योगी की अमर-वाणी 101
9. आध्यात्मिक पत्र 146
10. परम-तत्व की साधना भाग-1 171
11. परम-तत्व की साधना भाग-2 178
12. परम-तत्व की साधना भाग-3 179
13. आत्म-उत्थान का मार्ग भाग-1 183
14. आत्म-उत्थान का मार्ग भाग-2 186
15. आत्म-उत्थान का मार्ग भाग-3 193
16. महान् योगी पुरुष 201

अन्य प्रेरक साहित्य S.No.

1. महान् ज्योतिर्धर 86
2. मिच्छामि दुक्कडम् 60
3. क्षमापना 69
4. सवाल आपके जवाब हमारे 37
5. शंका और समाधान-1 66
6. शंका-समाधान-भाग-2 118
7. शंका-समाधान-भाग-3 147
8. धरती तीरथ'री 68
9. चिंतन रत्न 114
10. महावीरवाणी 112
11. जैन शब्द कोश 157
12. नया दिन नया संदेश 158
13. तीर्थ यात्रा 159
14. रत्न संदेश भाग-1 172
15. रत्न संदेश भाग-2 174
16. बाली चातुर्मास विशेषांक 180
17. उपधान स्मृति विशेषांक 181
18. संस्मरण 190
19. विवेकी बनों ! 192
20. अमृत रस का प्याला 200

वैराग्यपोषक साहित्य S.No.

1. मृत्यु-महोत्सव 51
2. श्रमणाचार विशेषांक 54
3. सद्गुरु-उपासना 113
4. चिंतन-मोती 90
5. मृत्यु की मंगल यात्रा 16
6. शांत सुधारस-हिन्दी विवेचन भाग-1 13
7. शांत सुधारस-हिन्दी विवेचन भाग-2 14
8. भव आलोचना 124
9. वैराग्य शतक 140
10. इन्द्रिय पराजय शतक 156
11. संबोह-सित्तरि (वैराग्य का अमृत कुंभ) 191
12. समाधि-मृत्यु 195

गुजराती साहित्य S.No.

1. जीवन ने तुं जीवी जाण 62
2. शीतल नहीं छाया रे (गुज.) 25
3. आवो ! वार्ता कहुं (गुज.) 63

चरित्र-कथाएं S.No.

1. जिनशासन के ज्योतिर्धर 81
2. महासतियों का जीवन संदेश 93
3. चौबीस तीर्थंकर चरित्र-भाग-1 188
4. चौबीस तीर्थंकर चरित्र-भाग-2 189
5. आदिनाथ शांतिनाथ चरित्र 105

6. पारस प्यारो लागे	99
7. महान् चरित्र	129
8. भगवान महावीर का सचित्र जीवन	83
9. भगवान महावीर	70
10. प्रातःस्मरणीय महापुरुष-2	150
11. प्रातःस्मरणीय महापुरुष-2	150
12. प्रातःस्मरणीय महासतियाँ-1	151
13. प्रातःस्मरणीय महासतियाँ-2	152
14. श्रीपाल-रास और जीवन-चरित्र	134
15. हेमचन्द्राचार्य और कुमारपाल	184
16. महान् ज्योतिर्धर	86
17. श्रमणशिल्पी प्रेमसूरीश्वरजी	119
18. बारह चक्रवर्ती	202

प्रभु भक्ति प्रधान साहित्य	**S.No.**
1. आनंदघन चोबीसी	7
2. अंखिया प्रभुदर्शन की प्यासी	22
3. भक्ति से मुक्ति	41
4. विविध देववंदन	55
5. प्रभु दर्शन सुख संपदा	84
6. तीर्थ यात्रा	159
7. आओ ! पूजा पढाएं	88
8. विविध पूजाएं	125
9. प्रभो ! मन मंदिर पधारो !	110

युवा-युवति प्रेरक	**S.No.**
1. युवानो ! जागो	12
2. युवा संदेश	26
3. जीवन की मंगल यात्रा	17
4. तब चमक उठेगी युवा पीढी	20
5. युवा चेतना विशेषांक	23
6. जीवन निर्माण (विशेषांक)	30
7. यौवन-सुरक्षा विशेषांक	32
8. सन्नारी विशेषांक	59
9. जैनाचार विशेषांक	47
10. आहार विज्ञान विशेषांक	39
11. माता-पिता	77
10. आहार: क्यों और कैसे ?	82
13. ब्रह्मचर्य	106
14. अमृत की बूंदें	64
15. क्रोध आबाद तो जीवन बरबाद	80

अंग्रेजी साहित्य	**S.No.**
1. The Message for the Youth	31
2. How to live true life ?	40
3. The Light of Humanity	21
4. Youth will Shine then	121
5 Duties towards Parents	95
6. Pearls of Preaching	167
7. The Way of Metaphysical Life	163
8. My Parents	175

मराठी साहित्य	**S.No.**
1. राग म्हणजे आग (मराठी)	108
2. आई वडीलांचे उपकार	92
3. अध्यात्माचा सुगंध	155
4. विखुरलेले प्रवचन मोती	117
5. आई चे वात्सल्य	185

अनुवाद-विवेचनात्मक	**S.No.**
1. सामायिक सूत्र विवेचना	2
2. भाव सामायिक	107
3. चैत्यवंदन सूत्र विवेचना	3
4. भाव-चैत्यवंदन	120
5. आलोचना सूत्र विवेचना	4
6. श्रावक प्रतिक्रमण सूत्र विवेचना	5
7. भाव प्रतिक्रमण-भाग-1	132
8. भाव प्रतिक्रमण-भाग-2	133
9. चेतन ! मोहनींद अब त्यागो	11
10. श्रावक जीवन-दर्शन	29
11. श्रीमद् आनंदघनजी पद विवेचन	94
12. आओ संस्कृत सीखें भाग-1	144
13. आओ संस्कृत सीखें भाग-2	145
14. श्रावक आचार दर्शक	154
15. आओ ! प्राकृत सीखें भाग-1	164
16. आओ ! प्राकृत सीखें भाग-2	165

प्रवचन प्रभावक परम पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय **रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा.**

द्वारा आलेखित 205 पुस्तकों में से प्राप्य हिन्दी भाषा में जैन धर्म का अमूल्य खजाना

Sr. No.	पुस्तक क्र.	पुस्तक का नाम	मूल्य
1.	13-14	शांत सुधारस-हिन्दी विवेचना-भाग-1-2	140/-
2.	34-35	आग और पानी-भाग-1-2	115/-
3.	36	शत्रुंजय यात्रा (तृतीय आवृत्ति)	40/-
4.	42	भक्ति से मुक्ति (पांचवी आवृत्ति)	40/-
5.	53	श्रावक का गुण सौंदर्य	125/-
6.	61	Panch Pratikraman Sootra	60/-
7.	84	प्रभु दर्शन सुख संपदा	60/-
8.	97	पर्युषण अष्टाह्निका प्रवचन	100/-
9.	100	बीसवी सदी के महान योगी	300/-
10.	104	कल्पसूत्र के हिन्दी प्रवचन	150/-
11.	109	आओ ! उपधान पौषध करें !	45/-
12.	122	नव तत्त्व-विवेचन	60/-
13.	123	जीव विचार विवेचन	60/-
14.	128	विविध-तपमाला	100/-
15.	134	श्रीपाल-रास और जीवन-चरित्र	160/-
16.	136	आओ ! पर्युषण प्रतिक्रमण करें	90/-
17.	140	वैराग्य शतक	80/-
18.	144	आओ संस्कृत सीखें भाग-1	100/-
19.	145	आओ संस्कृत सीखें भाग-2	70/-
20.	146	आध्यात्मिक पत्र	60/-
21.	153	ध्यान साधना	40/-
22.	156	इन्द्रिय पराजय शतक	50/-
23.	161	अजातशत्रु अणगार	100/-
24.	163	The way of Metaphysical Life	60/-
25.	164	आओ ! प्राकृत सीखें भाग-1	125/-
26.	165	आओ ! प्राकृत सीखें भाग-2	85/-
27.	166	आओ ! भाव यात्रा करें !! भाग-2	60/-
28.	167	Pearls of Preaching	60/-
29.	169	आओ ! दुर्ध्यान छोड़े !! भाग-1	64/-
30.	170	आओ ! दुर्ध्यान छोड़े !! भाग-2	70/-
31.	172	रत्न-संदेश-भाग-1	150/-
32.	174	रत्न-संदेश-भाग-2	150/-
33.	178	परम-तत्व की साधना भाग-2	150/-
34.	179	परम-तत्व की साधना भाग-3	160/-
35.	183	आत्म-उत्थान का मार्ग-भाग-1	125/-
36.	186	आत्म-उत्थान का मार्ग-भाग-2	175/-
37.	190	संस्मरण	50/-
38.	191	संबोह-सित्तरि (वैराग्य का अमृत कुंभ)	70/-
39.	193	आत्म-उत्थान का मार्ग-भाग-3	150/-
40.	194	लघु संग्रहणी (जैन भूगोल)	100/-
41.	102	कर्मग्रंथ (भाग-1)	100/-
42.	196	कर्मग्रंथ (भाग-2)	70/-
43.	197	कर्मग्रंथ (भाग-3)	55/-
44.	198	आदर्श-कहानियाँ	60/-
45.	200	अमृत रस का प्याला	300/-
46.	201	महान् योगी पुरुष	85/-
47.	202	बारह चक्रवर्ती	64/-
48.	203	प्रेरक-प्रवचन	80/-
49.	204	पाँचवाँ-कर्मग्रंथ	100/-
50.	205	छठा-कर्मग्रन्थ	160/-

Shubhay 98338 35899